भारत का इतिहास

मध्य काल

भारत का इतिहास

मध्य काल

मूल लेखक

एल० मुकर्जी, एम० ए०

अनुवादक

उमापतिराय चन्देल

लखनऊ

दि अपर इंडिया पब्लिशिंग हाउस लिमिटेड

१९५७

प्रथम संस्करण १९५२
द्वितीय संस्करण १९५५
पुनर्मुद्रण १९५७

मुद्रक
अशोक प्रेस, लखनऊ

भूमिका

यह पुस्तक लेखक की सुप्रसिद्ध पुस्तक का हिन्दी रूपान्तर है। जिस परिश्रम से इसका अनुवाद और प्रकाशन किया गया है उससे हमें पूरा विश्वास है कि हिन्दी संस्करण अंग्रेजी संस्करण से भी अधिक लोकप्रिय होगा।

३०. ४. ५७
लखनऊ

—अनुवादक और प्रकाशक

विषय-सूची

१. अरबों के आक्रमण ६
२. ग़ज़नी-वंश १६
३. ग़ोर-वंश २५
४. दिल्लीकी सल्तनत (१२०६-१५२६ ई०)—
गुलाम-वंश (१२०६-१२६०) ३१
५. खि़लजी-वंश (१२६०-१३२०) ४१
६. तुग़लक़-राजवंश ५०
७. लोदी-राजवंश (१४५१-१५२६) ६६
८. दिल्ली के सुल्तानों के शासन पर एक आलोचनात्मक दृष्टि ६६
९. प्रान्तीय राज्य ७८
१०. मुग़ल साम्राज्य—बाबर, हुमायूं तथा शेरशाह ... १०१
११. अकबर (१५५६-१६०५) ११३
१२. जहांगीर तथा शाहजहां १३८
१३. औरंगज़ेब तथा मरहठे १५६
१४. औरंगज़ेब के उत्तराधिकारी १७५
परिशिष्ट १ : पूरक टिप्पणियां १६७
परिशिष्ट २ : प्रश्न-पत्र १६६

खंड १

अध्याय १

अरबों के आक्रमण

बहुत प्राचीन कालसे भारत के लुभावने मैदानोंकी समृद्धिने विदेशी आक्रमणकारियोंका ध्यान आकर्षित किया है। वर्तमान समयमें भी कई देश इसको ललचायी दृष्टिसे देख रहे हैं। प्राचीन भारत का इतिहास विदेशी आक्रमणोंसे परिपूर्ण है। मुसलमानोंके पहले जितने आक्रमण-कारी यहां आये, उनमें से अधिकांश मध्य एशिया के थे। उनकी जातियां और फ़िरक़े भी अलग-अलग थे। यद्यपि कुछ समयके लिए उनका प्रभुत्व यहां रहा, तो भी भारतीय राजनीतिक क्षेत्रमें वे अपनी कोई अलग स्थिति नहीं स्थापित कर सके। आत्मसात् करनेकी शक्ति हिन्दूधर्म में उस समय इतनी अधिक थी कि आगे चलकर उन्हें अपना अस्तित्व उसीमें विलीन कर देना पड़ा। किन्तु सबसे बादमें जो विदेशी आये और आकर एक बड़ी संख्या में यहीं बस गये, उनका इतिहास बिलकुल भिन्न है। वे आक्रमणकारी थे—मुसलमान। मुसलमानोंका भारत में आना ७१२ ई० में अरबोंकी सिन्ध-विजय से प्रारम्भ होता है। सुल्तान महमूद द्वारा पंजाब जीत लेने पर उसके सहधर्मी उस प्रान्तमें बड़ी संख्या में आ बसे; और बारहवीं सदीके अन्तमें जब मुहम्मद ग़ोरी ने सिलसिले-वार भारत को जीतना शुरू किया, तब तो यह स्वाभाविक ही था कि मुसलमानोंके लिए भारत का द्वार पूर्णतया खुल जाता। आश्रयकी खोजमें आई हुई यह नयी जाति—मुसलमान—अपनी पूर्ववर्ती अन्य जातियोंकी तरह हिन्दू-जनता में घुल-मिल नहीं गयी। यहां की परिस्थितियोंके अनुकूल उन्होंने अपनेको बना अवश्य लिया, लेकिन हिन्दुओंमें वे घुले-मिले नहीं। आज दिन तक मुसलमान अपनी विशेषता को बनाये रखकर तथा अपनी अलग बिरादरी बनाकर अपने हिन्दू-भाइयों के साथ-साथ इस देशमें रह रहे हैं।

मुस्लिम-विजय की विशेषता

मध्यकालीन भारत का इतिहास तबसे शुरू होता है, जब १२वीं सदी के अन्तमें मुसलमान मध्य एशिया से इस देशमें आये। (वस्तुतः इस्लाम की विजयिनी तलवार हिन्दुस्तान के विरुद्ध बहुत पहले ही घूम गयी थी, किन्तु अरबोंकी सिन्ध विजय और सुल्तान महमूद के आक्रमणोंने देशके

मध्यकालीन भारत का प्रारम्भ

भीतरी भागों पर कोई प्रभाव नहीं डाला। असलमें मुसलमानोंकी विजय का सिलसिला तो बारहवीं सदीके अन्तसे शुरू होता है। चूंकि इसी समय से भारत ने नयी शक्तियोंका धक्का अनुभव किया, इसलिए हम सरलता से मुसलमानोंकी भारत-विजय को भारतीय इतिहासके मध्ययुगका प्रारम्भ मान सकते हैं)।

राजपूतोंका उदय. मुसलमानों द्वारा भारत-विजय की कहानी वास्तवमें राजपूतों और मुसलमानोंके दीर्घकालीन संघर्षकी कहानी है। यह राजपूत ही थे, जिन्होंने इस विदेशी शत्रुका सबसे कड़ा मुक़ाबला किया, इसलिए यह आवश्यक है कि मध्ययुगीन इतिहासके निर्माणमें इतना महत्त्वपूर्ण भाग लेनेवाले इन युद्धप्रिय लोगोंके विषयमें थोड़ी जानकारी प्राप्त कर ली जाय।

भारतीय इतिहासका राजपूत-काल

हर्षवर्धन की मृत्यु (६४७ ई०) के बाद उत्तरी भारत की एकता भंग हो गयी। उसका साम्राज्य टुकड़े-टुकड़े हो गया; और काफ़ी लम्बे समय तक इस देशमें अराजकता और उपद्रवका साम्राज्य रहा। धीरे-धीरे जब शक्तियोंका पुनर्गठन प्रारम्भ हुआ तो राजपूतोंका हाथ सबसे ऊपर रहा और हर्षवर्धनके साम्राज्य के ढूह पर उठे लगभग सभी राज्यों में राजपूत शासक बन बैठे। दक्षिणमें भी उन्हींकी तूती बोलने लगी। इसीलिए हर्ष की मृत्यु और बारहवीं शतीके अन्तमें मुसलमानोंकी विजय के बीचके इस युगको «राज-दूत-काल» कहा जाता है। राजपूतोंकी उन्नति का यह समय प्राचीन और मध्यकालीन भारत के मध्यमें संक्रमणका युग था। इस कालमें बहुत समय तक भारत पर विदेशी आक्रमण न हुए। यों बीच-बीच में कुछ छिट-फुट हमले हुए, जैसे अरबों द्वारा सिन्ध-विजय और सुल्तान महमूद के आक्रमण, किन्तु जैसा कि हम कह चुके हैं, उन्होंने भारत की भीतरी राजनीति पर कोई प्रभाव न डाला।

राजपूतोंकी मुख्य विशेषताएं

राजपूतोंने हिन्दुओंकी सैनिक राजसत्ता स्थापित की। उनकी उत्पत्ति प्राचीनता के गर्भमें खो गयी है, किन्तु अब साधारणतया लोग इस बात को मानने लगे हैं कि उनमें से कुछ तो प्राचीन विदेशी आक्रमणकारी—हूण—गुर्जरों की सन्तान हैं और कुछ इस देशके आदि निवासियोंके वंशज हैं। कालान्तरमें वे हिन्दू जातिमें समा गये और युद्धप्रिय होनेके कारण उनकी योद्धा-जाति बन गयी। राजपूत अत्यधिक गर्वीले और शौर्य-शाली थे। उन्होंने युद्ध सम्बन्धी जिस उच्च नैतिक स्तरका निर्माण किया, वह विश्व के इतिहासमें बेजोड़ है। एक भले शत्रुके साथ उनका व्यवहार सदा मित्रवत् रहता था। उनका शासन एक प्रकारसे मध्य-कालीन यूरोप के सामन्तवादी शासनके समान था और उस प्रथा की

सारी बुराइयाँ भी उसमें थीं; जैसे—एक शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार का अभाव और प्रान्तोंके छोटे-छोटे सामन्तोंमें सदा रहनेवाले झगड़े आदि। अपनी इस भीतरी फूटके कारण ही उनको मुस्लिम-आक्रमण-कारियोंसे पराजित होना पड़ा, हालांकि वे अपने शत्रुकी अपेक्षा वीरता में और हँसते-हँसते रणभूमिमें प्राण गँवा देनेमें किसी प्रकार कम न थे।

राजपूत कई कुलोंमें बँटे हुए थे और हरेक कुलका एक वंशगत सरदार हुआ करता था। कुलके सदस्य सरदारके साथ रक्त-सम्बन्ध रखने के कारण उसके प्रति बड़ी आस्था और भक्ति रखते थे और उसके लिए सदा लड़ने-मरनेको तैयार रहते थे। राजपूत संस्कृत लोग थे, जो कला तथा साहित्यके प्रशंसक और संरक्षक थे। वे भाटों और चारणोंके गीत सुनना पसन्द करते थे, क्योंकि उससे उनकी सैनिक वृत्तिको उत्तेजना मिलती थी। क़न्नौज से परिहार राजा और दिल्ली के तोमर राजा अपनी राज-सभामें विद्वानोंको आमंत्रित करते थे और उनका खूब स्वागत-सत्कार करते थे। धार के राजा भोज तो अपने साहित्य-प्रेमके लिए इतिहास-प्रसिद्ध हो चुके हैं।

[राजपूत-राज्योंके विस्तृत अध्ययनके लिए विद्यार्थियोंको चाहिए कि वे लेखक का 'भारत का इतिहास (प्राचीन काल)' पुस्तक पढ़ें।]

अरबों की सिन्ध-विजय

आरम्भिक आक्रमण. प्राचीन समयसे ही अरब लोग भारत के पश्चिमी बन्दरगाहोंसे परिचित थे। जो व्यापारी यहांसे लौटकर जाते थे, वे यहांके धन-ऐश्वर्य और आश्चर्यजनक सभ्यताका वर्णन करते नहीं अघाते थे; अत: यह स्वाभाविक था कि अरबोंका ध्यान भारत की ओर आकृष्ट होता। उनका यह उत्साह तो उस समय और बढ़ गया, जब मुहम्मद शाह के चलाये गये मजहबने मूर्ति-पूजाके प्रति उनमें घृणा का संचार करके उन्हें भड़का दिया। इसलिए खलीफ़ा उमर (६३७ ई०) के शासन-कालमें सिन्धु-तट पर अरबोंके आक्रमणके समाचार मिलने लगे। इसके बाद भी मुसलमानोंने आक्रमण किये, किन्तु उनका मुख्य कार्य समुद्री डकैती तक ही सीमित रहा, इसलिए उनके आक्रमणोंका कोई महत्त्वपूर्ण परिणाम न निकला। स्थल-मार्गसे अरबोंका एक ही बड़ा हमला हुआ और वह मक़रान से, किन्तु वह भी असफल रहा।

मुहम्मद-इब्न-क़ासिम का आक्रमण. खलीफ़ा वलीद के शासन-कालमें अरबोंने पूरी लगनसे भारत की ओर मुँह फेरा। एक अरब

आक्रमणका बहाना यह था कि एक अरब जहाज पकड़ लिया गया है

जहाज सिन्ध के दैबुल (देवल) नामक बन्दरगाहमें पकड़ लिया गया था। सिन्ध के हिन्दू राजा दाहिर से उसे लौटानेकी मांग की गई। उसने यह कहकर कि देवल उसके अधिकारमें नहीं है, इस मांगको माननेसे इनकार कर दिया। इस उत्तरसे रुष्ट होकर चालदी (मेसोपोटामिया) के शासक अलहज्जाज ने अपने चचेरे भाई मुहम्मद-इब्न-क़ासिम के सेनापतित्वमें दाहिर को दंड देनेके लिए एक सेना भेजी। यह वीर युवक सेनापति अपने ६ हजार चुने हुए घुड़सवारोंके साथ मक़रान होता हुआ सन् ७१२ ई० में दैबुल आ पहुँचा। दैबुल पर अधिकार करके उसके निवासियोंका क़त्ले आम किया गया और स्त्री-बच्चोंको ग़ुलाम बना लिया गया। इसके बाद क़ासिम की सेना सिन्धु नदीके दाहिने किनारे पर पहुँची और रावर नामक स्थान पर उसने नदी पार की। यहां पर उसे राजा दाहिर की हिन्दू-सेनाका सामना करना पड़ा। दाहिर वीरतापूर्वक लड़ता हुआ मारा गया। उसकी पत्नीने राजधानी* आलोर की तब तक रक्षा की, जब तक युद्ध-सामग्रीके चुक जानेके कारण प्रतिरोध करना असम्भव न हो गया। भारतीय स्त्रियां जो अपमानसे मृत्युको अधिक पसन्द करती थीं, चिताओं में जल मरीं। क़ासिम की सेनाका दूसरा शिकार ब्राह्मणाबाद बना, जिस को जीत लेनेके बाद मुल्तान का रास्ता खुल गया। बहुत दिनों तक घेरा डालनेके बाद मुल्तान ने भी आत्मसमर्पण कर दिया। मुल्तान का पतन होना था कि समस्त सिन्धु-घाटी विजेताके चरणों पर आ रही; दाहिर का सारा राज्य अब मुस्लिम-शासनके अन्तर्गत आ गया।

दाहिर की हार

मुल्तान का पतन

इस सम्बन्धमें यह याद रखना चाहिए कि अरबोंकी विजय इसलिए भी सरल हो गई, क्योंकि जाटों और मेड़ों जैसी कुछ स्थायी जातियों ने उनकी सहायता की थी। हिन्दू-शासकोंके अत्याचारके कारण ये जातियां शत्रुसे मिलनेको बाध्य हुई थीं।

उसने हिन्दुओं से समझौते की नीति बरती

मुहम्मद-इब्न क़ासिम का शासन. विजित देशके साथ इब्न-क़ासिम ने जैसा व्यवहार किया, उसमें कठोरता और उदारता दोनोंका सम्मिश्रण था; अरबोंकी प्रारम्भिक विजयकी यही विशेषता थी। जिन लोगों ने आत्मसमर्पण कर दिया, उनको उसने उदार शर्तें दीं। उसने नियमागत

---

* अनुवादकीय टिप्पणी. दाहिर की धर्मपत्नी रानी बाई ने रावर या रावड़ क़िलेकी रक्षा की थी और वहीं पर आखिरमें उसने जौहर किया। आलोर का शासक दाहिर का छोटा पुत्र था। ब्राह्मणाबाद को विजय करके मुहम्मद वहां पहुँचा था। ब्राह्मणाबाद में दाहिर का बड़ा पुत्र जयसिंह लड़ते-लड़ते मारा गया।

जज़िया (हर बालिग़ हिन्दूसे लिया जानेवाला कर) लगाया; सच्च-रित्रता या राजभक्तिके लिए ज़मानतें स्वीकार कीं और लोगोंको वे सभी सुविधाएं प्रदान कीं, जो उन्हें पहले प्राप्त थीं—इसमें स्वेच्छा-नुसार धर्म-पालन की बात भी सम्मिलित थी। किन्तु उन लोगोंके साथ वह बड़ी सख्तीसे पेश आता था, जो उसका विरोध करते थे, या उसके दो प्रस्तावोंमें से—कर अथवा नज़राना देना या इस्लाम धर्म स्वीकार करना—किसी एक को नहीं मानते थे। व्यापारियों और कारीगरोंके साथ किसी तरहका दुर्व्यवहार नहीं किया गया। मालगुज़ारीको वसूल करनेका काम स्थानीय नागरिकोंके सिपुर्द कर दिया गया; ब्राह्मणोंको संरक्षण दिया गया और उन्हें उच्च पदों पर नियुक्त किया गया; साथ ही क़ासिम ने स्थानीय संस्थाओंको भी पूर्ववत् बनाये रखा। एक शब्दमें मुहम्मद-इब्न-क़ासिम का शासन बुद्धिमत्तापूर्ण और समझौतावादी था; व्यावहारिक कार्य-कुशलता और राजनीतिज्ञताकी झलक उसमें मिलती थी।

दाहिर की पुत्रियोंके प्रतिशोधका शिकार

उसकी मृत्यु. मुहम्मद-इब्न-क़ासिम का देहान्त बड़ा कारुणिक हुआ। कहा जाता है कि दाहिर की दो लड़कियोंको उसने खलीफ़ा के हरम के लिए भेज दिया था। उन लड़कियोंने खलीफ़ा के सामने क़ासिम पर यह आरोप लगाया कि उसने आपके पास भेजनेके पहले हमें बेइज्ज़त किया है। खलीफ़ा यह सुनकर आगबबूला हो गया और उसने आज्ञा दी कि इब्न-क़ासिम को गायकी खालमें जीवित सी कर उसी हालतमें दमिश्क़ भेज दिया जाय। जब इस आज्ञाका पालन हो गया, तब दाहिर की पुत्रियोंने स्वीकार किया कि ऐसा उन्होंने जान-बूझ कर अपने पिताकी मृत्युका बदला लेनेके लिए कहा था।*

मुहम्मद-इब्न-क़ासिम की मृत्युका यह परिणाम हुआ कि अरब

---

* अनुवादकीय टिप्पणी. आधुनिक ऐतिहासिक अनुसन्धानोंने यह प्रमाणित करनेका प्रयत्न किया है कि मुहम्मद-इब्न-क़ासिम की मृत्युका उपर्युक्त विवरण बादका जोड़ा हुआ है। इसमें ऐतिहासिक तथ्य नहीं। असल कारण उसकी मृत्युका यह बतलाया जाता है कि ७१५ ई० में खलीफ़ा वलीद मर गया। उसका उत्तराधिकारी खलीफ़ा सुलेमान अल हज्जाज का कट्टर शत्रु था, अतः उसने हज्जाज तथा उसके सम्बन्धियोंको कड़ी-कड़ी सज़ाएं दीं। मुहम्मद-इब्न-क़ासिम बरखास्त कर दिया गया और मेसोपोटामिया में उसको बुलवाकर नये खलीफ़ा ने उसे मृत्युदंड प्रदान किया।

हिन्दुस्तान में और आगे न बढ़ सके। हिन्दुओंने मुसलमान-शासकको भगा दिया, किन्तु वे मुस्लिम-शासनसे पीछा न छुड़ा सके, जो कई सदियों तक इस देशमें रहा।*

इसका प्रभाव सिन्ध तक ही सीमित रहा

अरब विजयकी विशेषता. यह ठीक ही कहा गया है कि अरबों द्वारा सिन्ध की विजय 'इस्लामके इतिहास में केवल एक घटना थी; यह एक ऐसी विजय थी, जिसका कोई परिणाम न हुआ।' इसका प्रभाव भारतकी भीतरी राजनीति पर बिलकुल न पड़ा। अपने पीछे अरब-शासन कुछ अरब खानदानोंके नाम और ध्वस्त किये भवनोंके सिवाय कुछ न छोड़ गया।

अरबों की असफलता और भारत में मुसलमानों की धीमी प्रगति के कारण

अरबोंको असफलता के दो मुख्य कारण—
१. राजपूतों का मुक़ाबला
२. खलीफ़ा के सहयोगका अभाव

ऊपरी दृष्टिसे देखनेमें तो यह बड़ा विचित्र मालूम होगा कि जिन अरबों ने अपने नये मज़हबके जोशमें एशिया और योरोप के कितने ही देशोंको जीत लिया और सिन्धु घाटी में भी मुल्तान तकका प्रदेश अपने अधिकार में कर लिया, वे भारत के अन्य प्रदेशोंको जीतनेमें असफल रहे। परन्तु निकटसे देखने पर वे निराशाजनक परिस्थितियां स्पष्ट हो जाती हैं, जिन के कारण अरब भारत में अपना साम्राज्य स्थापित करनेमे सफल न हो सके। पहला और सबसे महत्त्वपूर्ण कारण तो यह था कि अभी तक उत्तर और पूर्वमे राजपूतोंकी शक्ति कम नहीं हुई थी। दूसरे, खलीफ़ा ने भी इस अभियानको आगे बढ़ाने में पूरी तरह सहायता नहीं दी। अरबों ने ग़लत दिशा से आक्रमण किया था। सिन्ध का प्रदेश रेगिस्तानी होनेके कारण बहुत न्यून आयका था, इसलिए खलीफ़ा ने इससे एक तरहसे

---

* अनुवादकीय टिप्पणी. मुहम्मद-क़ासिम के जानेके बाद अरबी साम्राज्य यद्यपि सिन्ध से आगे न बढ़ सका, परन्तु वह वहां पर तुरकी-विजय तक अछूता बना रहा। पड़ोसी राजपूत-राजाओंने इस इस्लामी खतरेको समझा ही नहीं और इसीलिए उसको उखाड़ फ़ेंकनेका कोई प्रबन्ध नहीं किया। यह ठीक है कि खलीफ़ा का कोई गवर्नर सिन्धमें नहीं रह गया था और वहां के मुसलमान सरदारोंने स्वतन्त्र पंक्ट शासन करना आरम्भ कर दिया था। इस कमज़ोरीका लाभ राजपूतोंको उठाना चाहिए था, परन्तु अभाग्यवश उन्होंने ऐसा किया नहीं और कानमें तेल डालकर बैठे रहे।

पीछा ही छुड़ाया। अपने मातृदेशकी सरकारसे सहायता न पाने के अलावा सिन्ध में अरबोंकी संख्या इतनी कम थी, जिससे हिन्दुस्तान को विजय करनेके सदृश्य महान् कार्य करना कल्पनाहीन था।

इन बातोंके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी कारण थे, जिन्होंने यदि एक ओर मुसलमानोंके उद्देश्यको सफल बनानेमें योग दिया, तो दूसरी ओर उनकी प्रगतिको धीमा भी किया; उदाहरणके लिए हिन्दुओंकी फूट। निस्सन्देह इसके कारण युद्ध-क्षेत्रमें मुसलमानोंको सफलता मिली, किन्तु स्थायी रूपसे राज्योंको छीननेके कार्यमें इससे बड़ी रुकावटें आयीं। हरेक विजय का अर्थ एक या एकसे अधिक राजाओंकी हारसे अधिक न था; शेष राजाओं पर उस हारका कोई प्रभाव न पड़ता था। इस कारणके साथ एक कारण और जुड़ा हुआ था। वह था--जनता के मस्तिष्क पर शक्तिशाली और सम्मानित पुरोहितोंका प्रभाव। ब्राह्मण पुरोहित स्वभावतया आक्रमणकारियोंके धर्म और आचार-व्यवहारोंको शत्रु-भावसे देखते थे और चूंकि राज्योंकी सरकारोंसे उनका सम्बन्ध बहुत निकटका था, इसलिए इस्लामकी प्रगतिको रोकनेमें वे एक बड़े कारण सिद्ध हुए। अन्तिम बात यह थी कि हिन्दुओंकी रूढ़िवादिता और रक्षात्मक प्रवृत्ति आक्रमणकारियोंकी शक्तिको क्रमशः व्यय कराते रहने के लिए पूर्णतः उपयुक्त थी।

हिन्दुओंकी अनेकता, उनकी रूढ़िवादी प्रवृत्ति और पुरोहितोंका प्रभाव—इन कारणोंने इस्लामकी प्रगति को धीमा किया

अध्याय २

ग़ज़नी-वंश

उत्पत्ति. अब्बासिद खलीफ़ाओंकी शक्ति क्षीण हो जाने पर सुदूरवर्ती प्रान्त एक प्रकारसे स्वतंत्र हो गये। इस प्रकार नवीं सदीके प्रथम चतुर्थांश में वर्षोंके प्रारम्भसे तीन लगभग स्वतंत्र फ़ारसी राजवंशों—ताहीरीद, सफ़ारिद और समानिद—ने क्रमश: मध्य एशिया के कुछ बहुत समृद्धि-शाली प्रदेशों पर शासन किया। समानी-वंशके शाहोंमें से एक था अब्दुल मलिक। उसका एक दास था—अलप्तगीन। अब्दुल मलिक उससे बहुत स्नेह करता था, इसलिए उसे उसने खुरासान का शासक बना दिया। अपने स्वामीके मरनेके बाद अलप्तगीन का झगड़ा राज्यके उत्तरा-धिकारीसे हो गया, इसलिए वह ग़ज़नी चला आया। जहां उसने अपना स्वतंत्र राज्य स्थापित किया (९६२ ई०)। उसकी मृत्यु सन् ९७० ई० में हो गयी और उसका लड़का इशाक उसकी गद्दी पर बैठा। कुछ वर्षों के बाद सुबुक्तगीन नामक एक तुर्क 'दास', जो अलप्तगीन की सेवामें रह चुका था. ग़ज़नी के राज्यका मालिक बन गया और गद्दी पर बैठा।

सुबुक्तगीन (९७७-९९७ ई०). अपने शासन-कालके प्रारम्भिक दिनोंमें सुबुक्तगीन पूर्व और पश्चिमकी ओर अपने साम्राज्यको बढ़ाने में ही उलझा रहा। ९८६ ई० के लगभग उसने जयपाल के राज्य पर आक्रमण करना प्रारम्भ किया। जयपाल पंजाब का एक हिन्दू राजा था, जिसकी राजधानी भटिंडा थी। जयपाल ने इसका बदला ग़ज़नी के प्रदेशों पर हमला करके लिया, किन्तु भयंकर जाड़ेके कारण उसकी अधिकांश सेना नष्ट हो गई और उसे बाध्य होकर भारी जुर्माना देनेकी शर्त पर सुबुक्तगीन से सन्धि करनी पड़ी, किन्तु जयपाल ने बाद में क्षति-पूर्तिकी रक़म देनेसे इनकार कर दिया, इसलिए सुबुक्तगीन ने अपना आक्रमण फिर जारी कर दिया और पेशावर तथा क़ाबुलके बीच लमग़ान प्रदेशको जीत लिया। मुसलमानोंके इस बढ़ते हुए खतरेको रोकनेके लिए जयपाल ने हिन्दू-राजाओंका एक संयुक्त मोर्चा बनाया, जिसमें दूरवर्ती कन्नौज और कालिंजर के राजा भी सम्मिलित थे। इन

जयपाल पर उसकी विजय

राजाओंकी संयुक्त सेनाने सुबुक्तगीन के प्रदेशोंमें कूच किया, किन्तु पहाड़ी प्रदेश होनेके कारण वह स्वयं फँस गई और कुर्रम दर्रे के आस-पास उसकी हार हो गई। इस विजयके फलस्वरूप सुबुक्तगीन ने पेशावर छीन लिया, किन्तु वह अपनी इस विजयको और आगे न बढ़ा सका, क्योंकि उत्तरकी समस्याओंने उसका ध्यान उलझा लिया। उत्तरमें उसने तातारोंके विरुद्ध सामानी राजाओंका समर्थन किया। सामानी राजाने आभारवश सुबुक्तगीन के लड़के महमूद को खुरासान का शासक बना दिया। सुबुक्तगीन का ९९७ ई० में देहान्त हो गया।

उसके आक्रमणोंका महत्त्व

सुबुक्तगीन पहला मुसलमान था, जिसने उत्तर-पश्चिमसे हिन्दुस्तान पर आक्रमण किया। यद्यपि उसके आक्रमणोंका इससे अधिक कोई फल न हुआ कि पेशावर जीत लिया गया और जयपाल ने थोड़े समयके लिए हार मान ली, तो भी वे इस दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि उन्होंने हिन्दुस्तान का रास्ता खोल दिया। उसके लड़केने उसका अधूरा काम काफ़ी बड़े पैमाने पर शुरू कर दिया।

सुल्तान महमूद (९९७-१०३० ई०)

उसके प्रारम्भिक कार्य

उसका राज्यारोहण. सुबुक्तगीन के मरनेके बाद उसके दो लड़कों—महमूद और इस्माइल—में राजगद्दीके लिए थोड़े समय तक झगड़ा हुआ। महमूद ने, जो उम्रमें बड़ा था, इस्माइल को हरा दिया और उसको आजीवन एक क़िलेमें क़ैद कर रखा। अपने शासनके प्रारम्भिक दो वर्ष उसने अपनी शक्तिको सुदृढ़ करनेमें लगाये। तत्पश्चात् उसने सामानी राजा पर आक्रमण किया और उसे हरा दिया, क्योंकि उसीने खुरासान के शासक-पदके लिए महमूद को अपनी स्वीकृति न दी थी। महमूद ने इसके बाद अपनेको सामानी राजासे स्वतंत्र घोषित कर दिया और सीधे खलीफ़ा से स्वीकृति प्राप्त कर अपनी स्थिति सुदृढ़ बना ली। अब महमूद ने ,सुल्तान' की उपाधि धारण की। मुसलमानोंके इतिहासमें वह पहला व्यक्ति था, जिसने ऐसी उपाधि धारण की थी।

उसका चरित्र और लक्ष्य. महमूद में अपने पिताके सभी फ़ौजी गुण थे और घुड़सवार सेनाके उत्साही सेनापतिके रूपमें तो वह अद्वितीय था। उसमें सैनिक गुणोंके साथ-साथ अदम्य महत्त्वाकांक्षा, वीर पुरुषका-सा स्वभाव और डाकूका-सा लोभ भी था। हिन्दू-धनी और मूर्तिपूजक थे; इन्हीं दो बातोंके कारण उनके देश पर महमूद की आंख लगी। उन की धन-सम्पदाने महमूद के लालचको उभारा और उसकी मूर्तिपूजा

ने उसके धार्मिक उत्साहको उत्तेजित किया। उसने हिन्दुस्तान के 'काफ़िरों' के खिलाफ़ 'जेहाद' बोलने और उनको दड देनेके लिए हर साल एक हमला करनेकी प्रतिज्ञा की, लेकिन उसने लोभके साथ «धार्मिकता» को मिलाये रखनेका सदा ध्यान रखा; साथ ही धर्म-युद्धों में अधिकसे अधिक लूटका माल प्राप्त करनेका लक्ष्य भी उसने आंखसे ओझल न होने दिया।

उसके धार्मिक उत्साह और लूट-पाटकी इच्छाने उसे आक्रमणों के लिए प्रोत्साहित किया

भारत पर उसके आक्रमण. सन् १००० से १०२६ ई० के मध्य सुल्तान महमूद ने कुल मिलाकर भारत पर सत्रह आक्रमण किए और इस सिलसिलेमें उसने सिन्धु से लेकर गंगा तककी धरती रौंद डाली। हर बारके अभियानमें उसे लूटमें जो बहुमूल्य सामग्री हाथ लगती, उससे वह प्रायः हर साल आक्रमण करनेके लिए प्रोत्साहित होता रहा; यहां तक कि मूर्तिपूजकोंके मन्दिरोंको लूटना एक तरहसे ग़ज़नी का वार्षिक सरकारी समारोह बन गया। नीचे उसके कुछ उल्लेखनीय आक्रमणोंका विवरण दिया जा रहा है:—

उसके प्रथम दो आक्रमण

महमूदका «पहिला आक्रमण» खैबर की घाटीके कुछ सीमावर्ती नगरों पर हुआ। १००१ ई० में उसका «दूसरा आक्रमण» अपने पिताके शत्रु जयपाल के विरुद्ध हुआ, जिसको उसने पेशावर के निकट पूर्णतया पराजित किया। जयपाल बन्दी बना लिया गया, किन्तु बादमें कुछ शर्तों पर छोड़ दिया गया। फिर भी जयपाल को यह हार इतनी अखरी कि उसने जीना व्यर्थ समझा और उसने एक चितामें कूदकर प्राण दे दिये।

तीसरा और चौथा आक्रमण

उसका «तीसरा अभियान» भीरा (भटिया) नामक नगर पर बड़ा सफल आक्रमण रहा। भीरा के राजाने उसे नज़राना (भेंट) देनेसे इनकार कर दिया था। «चौथा आक्रमण» मुल्तान के मुसलमान शासकके विरुद्ध हुआ, जो लड़ाईके मैदानसे भाग खड़ा हुआ। इस अभियानके सिलसिले में उसने जयपाल के लड़के आनन्दपाल पर भी हमला किया और जगह-जगह उसका पीछा करता फिरा। मुल्तान पर १००५-६ ई० में महमूद का अधिकार हो गया।

छठा अभियान (१००८-९ ई०). यह उसके सभी आक्रमणोंमें महत्त्वपूर्ण था। यह आनन्दपाल के विरुद्ध हुआ था, जिसने कई हिन्दू राजाओं को मिलाकर एक बड़ा संघ बना लिया था, जिसमें उज्जयिनी, ग्वालियर, कालिंजर, कन्नौज, दिल्ली और अजमेर के राजा सम्मिलित थे। इसके पूर्व महमूद ने कभी इतनी विशाल सेनाका सामना नहीं किया था। परिस्थितिको नाजुक समझकर उसने रक्षात्मक युद्ध करना ही उचित समझा। शत्रु-सेनाएं चालीस दिन तक पेशावर के मैदानमें आमने-सामने

पड़ी रहीं। इन्हीं दिनों पंजाब की एक शक्तिशाली जाति 'खोखर' हिन्दुओं के साथ आ मिली। ये पहाड़ी वीर खाइयोंके पीछे छिपे महमूदके शिविरों पर टूट पड़े और उनको तहस नहस कर डाला। कुछ ही मिनटोंमें तीन या चार हज़ार मुसलमान मार डाले गये। ऐसा लगता था कि विजय-श्री हिन्दुओंके गले पड़ेगी कि सहसा एक दुर्घटनाने बनी बाज़ी बिगाड़ दी। आनन्दपाल का हाथी बिगड़कर भाग चला। इससे भारतीय सैनिक बड़े निरुत्साहित हुए और आतंकित होकर वे जिधर राह मिली, उधरसे भाग चले। कहां तो महमूद जीतते हुए हिन्दुओंके सामने पीछे हटनेकी बात सोच रहा था और कहां उसने एक भयभीत भीड़का पीछा करते हुए अपने को पाया। दो दिन तक वह भारतीयोंका पीछा करता रहा। इस भाग-दौड़में बहुतसे भारतीय मारे गये और महमूद को अतुल धन-राशि लूटमें मिली (१००८ ई०)।

अपने छठे आक्रमणमें उसे आनन्द-पाल द्वारा संगठित एक विशाल सेना का सामना करना पड़ा

इस भारी विजयके बाद महमूद ने लगे हाथ कांगड़ा, जिसे नगरकोट भी कहते हैं, के दुर्ग पर अधिकार कर लिया। यहां पर उसे बहुत परि-माणमें सोना, चांदी और जवाहरात मिले, जिन्हें साथ लेकर वह ग़ज़नी लौट गया।

कन्नौज और मथुरा पर आक्रमण

महमूद का « बारहवां आक्रमण » उत्तरी भारतके प्रसिद्ध नगर कन्नौज पर हुआ, जिस पर राज्यपाल परिहार शासन करता था। मार्गके सभी प्रति-रोधोंका सामना करते हुए महमूद ने १०१८ ई० में यमुना पार की और वह बरन (आधुनिक बुलन्दशहर) पर आक्रमण करनेकी तैयारी कर ही रहा था कि वहां के राजाने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली और इस्लाम धर्ममें दीक्षित हो गया। इसके बाद महमूद मथुरा की ओर मुड़ा और नगरको खूब लूटनेके बाद उसने वहांके सुन्दर मन्दिरोंको नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। तत्पश्चात् वह कन्नौज के सामने दिखाई दिया। इसके शासक राज्यपालने मामूली तौरसे मुक़ाबला किया और फिर नगर को उसके भाग्य पर छोड़कर गंगा के उस पार भाग गया। उसने बादमें सुल्तान की अधीनता स्वीकार करली; इसके बदले में महमूद ने नगर को बरबाद नहीं किया, किन्तु उसकी चारदीवारीको तोड़-फोड़ दिया और नगरकी धन सम्पत्ति लूट ली।

कन्नौज के राजा राज्यपाल द्वारा अधीनता स्वीकार

चन्देल राजा के विरुद्ध अभियान. राज्यपाल द्वारा एक विदेशी शत्रुकी अधीनता स्वीकार कर लेने पर पड़ोसी राजाओंको बहुत क्रोध आया। उन्होंने कालिंजर के चन्देल राजा गंड के नेतृत्वमें अपना संगठन

करके राज्यपाल पर आक्रमण कर दिया और उसे मार डाला। कन्नौज की गद्दी पर त्रिलोचनपाल को बैठा दिया गया। इस कार्यको महमूद ने अपनी शक्ति के प्रति चुनौती समझा, क्योंकि वह मारे गये राजा को अपना सामन्त समझता था। हिन्दू राजाओंकी इन अनधिकार चेष्टा का दंड देनेके लिए वह १०१९ ई० में ग़ज़नी से चला। त्रिलोचनपाल ने उसे रोकनेकी कोशिश की, किन्तु महमूद ने यमुना को पार कर ही लिया और चन्देल राजा के राज्यमें प्रवेश किया। उसका मुक़ाबला करनेके लिए राजा गंड ने एक बड़ी सेना एकत्र की थी, किन्तु महमूद के सम्मुख आ जाने पर उसका साहस टूट गया और अपनी सेना को सुल्तानकी क्रोधाग्निका शिकार बननेके लिए छोड़कर वह रातमें ही निकल भागा।

यह अभियान गंड को उसकी अनधिकार चेष्टाके लिए दंड देनेके निमित्त हुआ था

महमूद का अगला आक्रमण भी चन्देल राजा के ही विरुद्ध हुआ। कालिंजर पर उसने घेरा डाला, किन्तु गंड ने बहुत-सा धन देकर महमूद को प्रसन्न कर लिया।

सोमनाथ पर आक्रमण (१०२४ ई०). महमूद के जीवन की सब से प्रमुख घटना सोमनाथके मन्दिर की लूट थी। यह मन्दिर काठियावाड़ के सुदूर दक्षिण में स्थित था। इसको उसका १६वां आक्रमण कहा जाता है। सोमनाथ के मन्दिर में संगृहीत असंख्य धन-राशिकी कहानी सुनकर महमूद के मुंहमें पानी भर आया और एक बड़ी सेना के साथ उसने ग़ज़नी से कूच कर दिया। मुल्तान आकर वह अजमेर गया और रास्तेमें अन्हिलवाड़ा पर अधिकार करता हुआ गुजरात की ओर बढ़ा। सन् १०२४ ई० में वह सोमनाथ पहुंच गया। भीषण युद्धके बाद किसी तरह वह क़िलेमें प्रविष्ट हो गया। बड़ी मार-काट मची, किन्तु अन्तमें सोमनाथके मन्दिर को लूटनेमें वह सफल हुआ और प्रभूत धन-राशि उसके हाथ लगी।

यह उसके अभियानोंमें सबसे अधिक प्रसिद्ध है

सोमनाथसे वापस ग़ज़नी की ओर लौटते हुए महमूद को बडी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा। रेगिस्तानमें पानीकी कमीके कारण उसकी सेनाको बड़ा कष्ट हुआ। और इसी स्थितिमें जाटोंने हमला कर दिया। मुल्तान के निकटवर्ती प्रदेशोंमें रहनेवाले इन जाटोंको दंड देनेके लिए ही महमूद ने भारत पर अपना अन्तिम आक्रमण किया (१०२७)। शत्रुको सजा देकर महमूद ग़ज़नी लौट गया। जीवनके शेष दिनोंमें वह घरेलू झगड़ोंमें ही परेशान रहा। उसकी मृत्यु १०३० ई० में हो गयी।

उसका अन्तिम आक्रमण

उसके आक्रमणके परिणाम. महमूद के आक्रमणोंसे यह नहीं लक्षित होता कि उसके पास भारत विजयकी कोई स्थायी अथवा निश्चित योजना थी। यह उसका लक्ष्य ही न था। उसके अभियानोंको लूट-खसोट

उसका उद्देश्य लूट था, विजय नहीं

के आक्रमणोंसे अधिक कुछ नहीं कहा जा सकता—वे लूट-मार और विनाशकी लज्जाजनक कहानी थे। केवल पंजाब ही एक ऐसा प्रदेश था, जिस पर उसने स्थायी रूपसे अधिकार रखा और इसके कारण उसके सहधर्मियोंके लिए हिन्दुस्तान का दरवाज़ा खुल गया। बस, इसी एक बात पर उसे भारतीय राजा मान सकते हैं, अन्यथा जहां तक भारत का प्रश्न है, महमूद एक बड़े पैमाने पर 'लूट-मार करनेवाले उस डाकूसे अच्छा न था, जिसके आक्रमणोंका देशके भीतरी जीवन पर केवल इतना ही प्रभाव पड़ा कि प्राणों, सम्पत्ति और अमूल्य स्मारकोंकी बरबादी उसके लौटने के बाद सिसकती रह गयी।'

एक ही स्थायी फल निकला और वह था—पंजाब की विजय

सुल्तान महमूद का मूल्यांकन. सुल्तान महमूद में एक सैनिकके सभी गुण थे। भारत पर उसकी अनेक चढ़ाइयां सैनिक सफलता का ज्वलन्त उदाहरण थीं। इसके अतिरिक्त उसने फ़ारस का एक बहुत बड़ा भाग जीत लिया और मध्य एशिया के आततायी तुर्कोंसे, जो उसके राज्यकी उत्तरी सीमा पर बराबर आक्रमण किया करते थे, अपने साम्राज्यकी रक्षा भी की। यह किसी साधारण प्रतिभावान् व्यक्तिका कार्य न था कि एक छोटी-सी पहाड़ी जागीरको एक बड़े साम्राज्यके रूप में विस्तृत कर लेता। किन्तु यद्यपि वह एक महान् सैनिक था, तो भी उसमें दूरदर्शी राजनीतिज्ञता और रचनात्मक प्रतिभाका अभाव था। वह देशोंको विजय तो कर सकता था, किन्तु उनको संगठित और व्यवस्थित करना उसकी योजनाके बाहरकी बात थी। हम किसी ऐसे क़ानून, संस्था या शासन-पद्धतिका नाम नहीं सुनते, जिसे महमूद ने प्रचलित या स्थापित किया हो। उसका विस्तृत साम्राज्य इतने कच्चे चूनेसे जुड़ा हुआ था कि उसकी मृत्युके कारण एक शक्तिशाली छत्रच्छाया के हट जाने पर वह टुकड़े-टुकड़े हो गया।

वह एक महान् सैनिक था, किन्तु राजनीतिज्ञ नहीं

महमूद शासनके सम्बन्धमें बहुत दृढ, न्यायप्रिय और उदार था। अगर उसके निकट सम्बन्धी भी कोई अपराध करते, तो उसका न्याय उतना ही खरा होता था, जितना अन्य प्रजाजनोंके साथ। न्याय करने और दूरस्थ प्रान्तोंकी प्रजा की रक्षा करनेमें वह कितना प्रयत्नशील रहता था, इसके सम्बन्धमें तो कई दन्तकथाएं प्रचलित हो गयी हैं। वह कला और साहित्यका प्रेमी और संरक्षक था; उस युगके कई विद्वान् साहित्यिक उसके दरबारकी शोभा बढ़ाते थे। उनमें से प्रमुख थे—फ़िरदौसी, अंसारी और दिग्गज विद्वान् अलबेरूनी। महमूदने ग़ज़नी में एक विश्व-विद्यालयकी स्थापना की और उसे एक विशाल पुस्तकालय तथा विचित्रालय दानमें दिया। अपनी राजधानीको उसने भव्य भवनोंसे

उसका शासन

वह कला और साहित्यका प्रेमी तथा संरक्षक था

सजाया, जिनमें सबसे प्रमुख थी एक मसजिद, जिसे 'जन्नत की दुलहन' कहते थे। एक शब्दमें, महमूद ने भारत और फ़ारस की संस्कृतिका भी उतना ही शोषण किया, जितना उनकी धन-सम्पत्तिको लूटा।

उसकी धन-लिप्सा कैसी थी ?

कई घटनाओं और तथ्योंको देखनेसे यह पता चलता है कि महमूद में धन-लिप्ताकी भावना ही प्रधान थी। निस्सन्देह वह धनका लालची तो था, लेकिन वह धनको समझदारीसे और शानदार तरीक़ेसे खर्च करना भी जानता था। उसकी धन-लिप्सा कंजूसकी भयंकर लालच-वृत्तिसे भिन्न थी। कला और साहित्यकी अभिवृद्धिके लिए उसने जो दान दिए, वे इस बातके प्रमाण हैं।

क्या वह धर्मान्ध था ? इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि महमूद एक कट्टर मुसलमान था, किन्तु वह धर्मान्ध न था। यहांके हिन्दू मन्दिरों को लूटनेका असली कारण था उसका लूट-मारके प्रति प्रेम; मूर्तिपूजकों को दंड देने या इस्लामका प्रचार करनेकी इच्छा उसमें प्रधान न थी। हम कहीं यह नहीं सुनते कि महमूद ने लोगोंको ज़बर्दस्ती मुसलमान बनाया या युद्धके अतिरिक्त हिन्दुओंकी कभी हत्या करायी। उसने फ़ारस के अपने सहधर्मी शत्रुओंको उसी प्रकार लूटा-मारा, जिस प्रकार उसने भारत के 'काफ़िरों' को। उसकी दृष्टिमें मूर्तिपूजनका 'पाप कर्म' तभी दंडनीय होता था, जब उसके साथ लूटमें बहुत धन-सम्पत्तिके हाथ लगनेकी भी सम्भावना होती थी।

उसकी सफलताके कारण थे— १. उसका सेनापतित्व २. हिन्दुओं की अनेकता और रूढ़ि-वादिता

महमूद की सफलता के कारण. हिन्दुस्तान में महमूद के आक्रमणों को इतनी सफलता मिली, इसका कारण उसका स्वयं का सेनापतित्व और उसकी घुड़सवार सेनाका जबर्दस्त हमला था। हिन्दू लोग अपने अन्धविश्वासके कारण अविश्वसनीय हाथियों पर भरोसा करते थे, जो एक सुसज्जित और सुशिक्षित घुड़सवार-सेना के धावेका सामना करने में अत्यन्त अयोग्य सिद्ध हुए। इसके अतिरिक्त हिन्दुओंमें चिरकालसे चली आयी फूट और पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष के कारण भी आक्रमण-कारियोंको सफलता मिली। निस्सन्देह, भारतवासियोंने कई बार संघबद्ध होनेकी चेष्टा भी की, किन्तु वे संघ इतनी शीघ्रतामें और ढीले-ढाले अनुशासनहीन ढंगसे गठित होते थे कि अधिक दिन तक नहीं निभ पाते थे। जब तक अनेक हिन्दू-रियासतें अपने भीतरी मतभेदोंको दूर करके शक्तिशाली संयुक्त मोर्चा बनावें-बनावें तब तक सुलतान, जो अपनी सेनाका अकेला सेनापति था, अचानक अप्रत्याशित स्थानों पर टूट पड़ता था। अन्तिम बात इस सम्बन्धमें यह है कि मुसलमानोंमें अपने मजहबको फैलानेका उत्साह और डाकुओंकी तरह धनका लालच भरा

था। ग़ज़नीके पहाड़ी प्रदेशके रहनेवाले मुसलमान सैनिक जितने ही ग़रीब थे, उतने ही लगनशील थे; जितने बहादुर थे, उतने ही धुनके पक्के थे। यह भावना कि युद्धमें जीतकर वे अपने मज़हबको फैला सकेंगे, उनके युद्धोत्साहको द्विगुणित कर देती थी और शहादतकी भावना से उनमें नवजीवन भर उठता था। इस धर्मोत्साहके साथ-साथ हिन्दुस्तान की कल्पनातीत अतुल धन-सम्पत्ति को लूटनेका प्रलोभन तो रहता ही था।

३. मुसलमानों का मज़हबी जोश

सुल्तान महमूद के उत्तराधिकारी (१०३०-११८६). सुल्तान महमूद के मरनेके बाद भी उसका राज्य डेढ़ सौ वर्षों तक रहा, किन्तु हर पीढ़ीके साथ उसका विस्तार कम होता गया। राजगद्दीके लिए होनेवाले झगड़ों और सालजूक तुर्कोंके दबावके कारण ग़ज़नी-साम्राज्यकी स्थिति संकटापन्न हो गयी। ह्रासके इन कारणोंके साथ एक कारण यह भी जोड़ा जा सकता है कि महान् सुल्तानके उत्तराधिकारी आगे चल कर विलासप्रिय हो गये और उनका दरबार चापलूसों तथा निम्नकोटि के आमोद-प्रमोदप्रिय लोगोंसे भर गया।

ग़ज़नी साम्राज्यका क्रमशः ह्रास

सुल्तान महमूद की मृत्युके पश्चात् उसकी गद्दीके लिए उसके दोनों लड़कों मुहम्मद और मसऊद में संघर्ष हुआ। मसऊद इस संघर्षमें विजयी हुआ और बेचारा मुहम्मद अन्धा बनाकर जेलमें डाल दिया गया। «मसऊद» अपनी शक्ति, वीरता और विद्या की संरक्षता के लिए प्रसिद्ध था, किन्तु विलास और आमोद-प्रमोद में अत्यधिक लिप्त रहनेसे उसके इन सारे अच्छे गुणों पर पानी फिर गया। कुछ समय तक तो उसने सालजूक तुर्कोंके क्रमशः बढ़ते हुए दबावकी कोई परवाह न की, लेकिन जब उसके एक सरदार—तुग़रिल बेग—ने अपने आपको खुरासान का शाह घोषित कर दिया, तब वह विद्रोहियोका दमन करनेके लिए राजधानी से निकला। मर्वके निकट युद्ध होने पर मसऊद बुरी तरह हार गया और अपनी बची-खुची सेना को लेकर हिन्दुस्तान में भागनेके लिए उसे विवश होना पड़ा। सिन्धु नदी पार करते ही उसकी सेना ने विद्रोह कर दिया और उसके अन्धे भाई मुहम्मद को गद्दी पर बैठा दिया। मुहम्मद ने राज-काज अपने लड़के अहमद को सौंप दिया, जिसने मसऊद को मरवा डाला, लेकिन अहमद को भी मसऊद के लड़के मौदूद ने हरा दिया और मार डाला।

सालजूक तुर्कों द्वारा मसऊद की पराजय

इसके बाद मौदूद १०४० ई० में गद्दी पर बैठा, उसने सालजूक तुर्कोंसे राजनीतिक विवाह-सम्बन्ध जोड़कर उन्हें सन्तुष्ट करनेकी चेष्टा की, किन्तु इससे युद्ध रुका नहीं। इसी बीच ग़ज़नी की अस्थिर स्थितिका

लाभ उठाकर पंजाब के हिन्दुओंने नगरकोट पर पुनः अधिकार कर लिया किन्तु लाहौर को लेनेमें वे सफल न हो सके। सन् १०४६ ई० में मौदूद की मृत्यु हो गयी।

गज़नी के भीतरी और बाहरी कारण

ग़ज़नी-वंश का पतन. मौदूद के मरनेके लगभग सवा सौ साल बाद तक ग़ज़नी-वंश टिका रहा, लेकिन ग़ज़नी के बादवाले सुल्तान नरम और महत्त्वाकांक्षाहीन शासक थे; उनमें से कुछ तो अत्यधिक दयालु और दानशील थे। उनके शासनका हिन्दुस्तानके इतिहास पर कोई प्रभाव न पड़ा। राजगद्दीके लिए उनके आपसी झगड़ोंने उनकी शक्तिको तोड़ दिया और अन्ततः ग़ोरके सूर-क़बीले के अफ़ग़ानोंने उनकी रही-सही सत्ता की भी इतिश्री कर दी।

तात्कालिक कारण हुआ ग़ोर के एक सरदारकी हत्या

«बहराम»ने, जो सुल्तान महमूद का वंशज था, ग़ोर के एक सरदार को मार डाला। इस हत्या का प्रतिशोध लेनेके लिए जो संघर्ष छिड़ा, वही ग़ज़नी-साम्राज्य के तात्कालिक पतन का कारण हुआ। मारे गये गोर-सरदार के एक भाईने बहराम पर आक्रमण किया और कुछ समयके लिए बहरामको ग़ज़नीसे बाहर निकाल दिया; किन्तु थोड़े समय बाद ही बहराम लौट आया और उसने उसे हराकर मार डाला। उस ग़ोर-सरदार के तीसरे भाई अलाउद्दीन हुसेन ने अपने दोनों भाइयोंकी मौतका बड़ा भयंकर बदला लिया। ११५० ई० में उसने ग़ज़नी में आग लगा दी। एक सप्ताह तक घेरा डाले रहा और अन्तमें ग़ज़नी के सभी सुन्दर और भव्य भवनोंको बरबाद कर दिया।

ग़ोर अलाउद्दीन का भयंकर प्रतिशोध

बहराम के लड़के खुसरू ने अपने वंश की खोयी प्रतिष्ठा को पुनः प्राप्त करनेका व्यर्थ प्रयत्न किया और उसे पंजाब, जिसकी राजधानी लाहौर थी, का शासक बनकर ही सन्तुष्ट रहना पड़ा। इस अन्तिम शरणस्थली से भी सन् ११८६ में मुहम्मद ग़ोरी ने ग़ज़नीवालोंको निकाल दिया; उसने लाहौर पर अधिकार करके ग़ज़नी-वंश के अन्तिम शासक खुसरू मलिक को, जो खुसरू का पुत्र था, राज्यच्युत कर दिया।

लाहौर से ग़ज़नी-वंश का अन्तिम शासक भी निकाला गया

अध्याय ३

ग़ोर-वंश

उत्पत्ति. ग़ोर की जागीर ग़ज़नी और हिरात के मध्यमें स्थित थी। यह प्रदेश बड़ा ऊबड़-खाबड़ और पहाड़ी था। फ़ीरोजक़ोह के क़िलेसे इसका शासन होता था। इसके निवासी सूर-क़बीलेके बहादुर अफ़ग़ान थे। ग़ोरियों ने सुल्तान महमूद की अधीनता स्वीकार कर ली थी, लेकिन उसने कर देनेकी शर्त पर उनको स्वशासनकी अनुमति दे दी थी। जैसा कि हम पहले देख आये हैं, गोरियोंका सितारा तब चमका जब सुल्तान महमूद के अन्तिम उत्तराधिकारियो और गोरी-सरदारोके बीच रक्त-प्रतिशोध को लेकर संघर्ष हुआ। उसके उत्तराधिकारियोंमें बहराम नामक एक शासकने दो ग़ोरी-सरदारोंको मार डाला, जिसका बदला उसके भाई अलाउद्दीन ने ११५० ई० में ग़ज़नी को एकदम बरबाद करके लिया। इसके थोड़े दिनों बाद ही अलाउद्दीन मर गया और उसका पुत्र उसका उत्तराधिकारी हुआ, किन्तु वह भी शीघ्र ही एक हत्यारेके खंजरका शिकार हुआ। तब ग़ोरके सरदारोने अलाउद्दीन के भतीजे ग़यासुद्दीन को रिक्त सिंहासन पर बैठा दिया। ग़यासुद्दीन ने ग़ज़नी को जीत लिया, किन्तु उसे अपने भाई सहाबुद्दीन को, जो इतिहासमें मुइज़्ज़ुद्दीन या मुहम्मद ग़ोरी के नामसे भी विख्यात है, सौंप दिया। दोनों भाइयोंमें बड़ा प्रेम रहा और वे संयुक्त रूपसे राज्यसत्ताका उपभोग करते रहे, किन्तु जब कि बड़ा भाई अपनी पैतृक जागीरकी देख-भाल करता रहा, मुहम्मद-ग़ोरी ने अपना ध्यान भारत के समृद्धिशाली मैदानोंकी ओर मोड़ा।

ग़ज़नी-वंश को हटाकर गोरियोंकी प्रभुता स्थापित हुई

मुसलमानोंके आक्रमण के समय उत्तरी भारत की अवस्था

जैसा कि पहले देखा गया है, सुल्तान महमूद के आक्रमणोंसे यद्यपि धन-जनकी असीम हानि हुई, तो भी पंजाब की विजयके अतिरिक्त भारत पर उनका कोई स्थाई प्रभाव न पड़ा। उत्तरी भारत के हिन्दू-राज्य इस भयंकर संकट-कालके बाद भी स्थापित रहे। वास्तवमें मुसलमानोंने

उत्तरी भारत कई राज्योंमें बँटा हुआ था जो परस्पर लड़ते रहते थे

भारत-विजयका प्रयत्न पूरी लगनसे १२वीं शताब्दीके अन्तमें मुहम्मद-ग़ोरी के आक्रमणोंके साथ शुरू किया। इस समय उत्तरी भारत कई स्वतंत्र हिन्दू-राज्योंमें बटा हुआ था, जिन पर विभिन्न राजपूत कुलोंमें से कोई-न-कोई कुल शासन करता था। मुसलमानी प्रान्त केवल दो थे —एक, पंजाब जो सुल्तान महमूद के वंशजोंके अधिकारमें था और दूसरा सिन्ध जिस पर अरब-विजेताओंके उत्तराधिकारी शासन करते थे। हिन्दू-राज्य किसी सर्वोच्च सत्ताके अधीन न थे। किसी नियंत्रण-कारी सत्ताके अभावमें विभिन्न राज्योंमें आपसी कलह, द्वेष। ईर्ष्या तथा ऊंच-नीचकी भावना फैली हुई थी। हिन्दू राजाओंमें सहयोगका सर्वथा अभाव था, यहां तक कि समान संकटका सामना भी वे मिलकर नहीं कर सकते थे। उनमें पारस्परिक एकता न होनेसे विदेशी आक्रमणकारीके विरुद्ध कोई संयुक्त मोर्चा भी नहीं बन पाता था। इस भीतरी फूटके कारण ही उत्तरी भारत को जीतनेमें मुसलमानोंको अन्य प्रदेशोंकी अपेक्षा सरलता रही। इस समय उत्तरी भारत के प्रमुख राज्य ये थे-- (१) दिल्लीके तोमर, (२) कन्नौज के गहरवार जो बादमें राठौर कहलाये, (३) अजमेर के चौहान, (४) गुजरात के बघेले और (५) बिहार तथा बंगाल के पाल और सेन। इन विभिन्न राजपूत-कुलोंकी शक्ति आन्तरिक फूट और पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष के कारण बिखरी हुई थी। चौहानों ने जो राजपूतोंमें सबसे अधिक शक्तिशाली थे, तोमरों को दिल्ली से निकालकर अपना प्रभुत्व स्थापित किया था। चौहानोंमें सबसे प्रसिद्ध था पृथ्वीराज, जो दिल्ली और अजमेर दोनोंका राजा था। उसने कन्नौज के राजा जयचन्द की लड़कीका अपहरण करके उससे विवाह कर लिया था; इस-लिए जयचन्द उसका घोर शत्रु बन गया था। यह इस बातका अच्छा उदाहरण है कि जब मुहम्मद ग़ोरी हिन्दुस्तान का दरवाज़ा खटखटा रहा था, तब राजपूत-राजा आपसी ईर्ष्या-द्वेषमें अपनी शक्तिको किस प्रकार खो रहे थे।

राजनीतिक स्थिति

उत्तरी भारत के प्रमुख राजपूत-राज्य

पृथ्वीराज

सामाजिक दशा

देश की सामान्य स्थिति समृद्ध प्रतीत होती थी। कई राजाओंके राज-सभा-भवन बड़े शानदार थे और मुख्य-मुख्य नगर अनेक सुन्दर भवनोंसे सुशोभित थे। इस कालमें स्थापत्य कला उन्नतिके उच्च शिखर पर थी। '११वीं और १२वीं सदीमें निर्मित आबू पर्वतके जैन-मन्दिरोंकी सुन्दरता अद्वितीय है और १००० ई० के लगभग चन्देल राजाओं द्वारा खजुराहो में बनवाये हुए हिन्दू-मन्दिर तो भारतीय स्थापत्य कलाके उत्कृष्टतम उदाहरण हैं।' जगन्नाथपुरी का प्रसिद्ध मन्दिर ११वीं सदीके अन्तमें बनवाया गया था। कलाके अतिरिक्त हिन्दू-राजा साहित्यको

विशेषतया संरक्षण देते थे। कन्नौज के परिहार और दिल्ली के तोमर राजाओंकी राज-सभाओंमें प्रसिद्ध विद्वान् रहते थे और आगन्तुक विद्वानोंका बड़ा स्वागत होता था। धार का राजा भोज स्वयं कवि और विद्वानोंका बड़ा समर्थक था। जहां तक धर्मका प्रश्न है, अधिकांश प्रान्तों में हिन्दूधर्म प्रचलित था, हालांकि कुछ विशेष स्थानोंमें जैनधर्म भी फल-फूल रहा था। बौद्धधर्मका बहुत ह्रास हो गया था और बंगाल के पाल राजा ही उसके एकमात्र प्रभावशाली समर्थक रह गये थे।

मुसलमानों द्वारा उत्तरी भारत की विजय

पंजाब और सिन्ध की विजय

मुहम्मद ग़ोरी की विजय. ग़ज़नी में अपनी स्थिति सुदृढ़ बनानेके बाद मुहम्मद ग़ोरी ने भारत की ओर ध्यान दिया। उसका पहला उद्देश्य था पंजाब और सिन्ध के मुसलमानी प्रान्तोंको अपने अधिकारमें लेना। उसने सर्व-प्रथम मुल्तान पर जो उन दिनों अरब विजेताओंके वंशजोंके क़ब्ज़ों में था, आक्रमण किया। आक्रमण सफल रहा, इसके बाद उसने सिन्ध के उच्छ नामक स्थान पर अधिकार कर लिया (११७५-७८)। तीन वर्ष पश्चात् उसने गुजरात में घुसनेकी कोशिश की, लेकिन स्थानीय राजपूत राजाओंकी शक्तिके सामने उसकी शक्ति बहुत कम थी, अतः अन्हिलवाड़ा के राजा मूलराज ने उसको बुरी तरह पराजित किया। भारी हानि उठाकर वह ११७८ ई० में पीछे लौट आया। इस विजयने सारे गुजरात की रक्षा कर ली, यद्यपि आगे चलकर अन्हिलवाड़ा पर मुसलमानोंका कब्ज़ा हो गया। सन् ११८२ तक सारा सिन्ध ग़ोरी के हाथ में आ गया। अब उसकी दृष्टि लाहोर पर पड़ी, जिस पर उन दिनों ग़ज़नी वंशका अन्तिम राजा ख़ुसरो मलिक शासन कर रहा था। ग़ोरी ने लाहोर पर भी क़ब्ज़ा कर लिया और ख़ुसरो को गद्दीसे उतारकर पंजाब को अपने साम्राज्यमें मिला लिया।

पृथ्वीराज की जीत

तराइन की दो लड़ाइयां. अपने मुस्लिम प्रतिद्वन्द्वियोंसे छुट्टी पाकर मुहम्मद ग़ोरी ने हिन्दुस्तानको विजय करने की ओर ध्यान दिया। स्थिति की गम्भीरताको अनुभव कर हिन्दू राजाओंने जल्दी-जल्दीमें एक संगठन बनाया और उस संयुक्त सेनाको दिल्ली तथा अजमेर के प्रतापी चौहान राजा पृथ्वीराज के सेनापतित्वके अन्तर्गत कर दिया। पृथ्वीराज ने थानेश्वर (स्थानेश्वर) के निकट तराइन नामक स्थानमें शत्रुसे लोहा लिया और ११९१ ई०में ग़ोरीकी सेनाको पूरी तरह उखाड़ फेंका। दूसरे ही साल मुहम्मद ग़ोरी फिर लौटा और उसने उसी स्थान पर मोर्चा

तराइन की दूसरी लड़ाई में उसकी हार और उसके परिणाम

लिया, राजपूतोंकी संयुक्त सेनासे उसकी सेनाका घोर युद्ध हुआ। इस बार उसने हिन्दुओंको पूर्णतया पराजित कर दिया (११९२)। पृथ्वीराज क़ैद कर लिया गया और मार डाला गया। हिन्दुओंकी यह पराजय इतनी सांघातिक हुई कि तराइन की दूसरी लड़ाईको एक निर्णायक संघर्ष माना जा सकता है, जिसने हिन्दुस्तान पर मुस्लिम आक्रमणकी सफलता निश्चित कर दी। अजमेर को भी जीतकर मुहम्मद गोरी ने अपनी विजय का यह दौर समाप्त किया। इसके बाद अपने विश्वासपात्र ग़ुलाम क़ुतुबुद्दीन पर भारत विजयके भावी कार्य-क्रमका भार डालकर वह ग़ज़नी लौट गया।

कन्नौज, ग्वालियर और कालिजर की विजय

विजयकी प्रगति. (क) ११९३ में कुतुबुद्दीन ने दिल्ली और कोइल पर अधिकार कर लिया और तब बनारस की ओर बढ़ा। सुल्तान शीघ्र ही ग़ज़नी से लौट आया और इटावा के निकट युद्धमें कन्नौज के राजा जयचन्द को हरा दिया। इस प्रकार कन्नौज और बनारस पर सुल्तान का अधिकार हो गया। इसके बाद ११९६ में ग्वालियर का पतन हुआ और अन्हिलवाड़ा, जिसने बीस वर्ष पहले मुसलमानी तलवारको कुंठित कर दिया था, गोरी के हाथमें आ गया। १२०३ मे कालिजर पर भी कब्ज़ा हो गया और इस तरह उत्तरी भारत की विजयका कार्य परिपूर्ण हो गया।*

बंगाल के सेन-राजाओंका अन्त

(ख) **बिहार और बंगाल की विजय** जिन दिनों क़ुतुबुद्दीन वाइसरॉय के पद पर था, उन्हीं दिनों उसके सुयोग्य सेनापति मुहम्मद खिलजी ने, जो बख़्त्यार का पुत्र था, बिहार और बंगाल को बड़ी सरलतासे विजय कर लिया। बिहार पर उन दिनों† पाल राजाओंका शासन था, जो बौद्धधर्म के अनुयायी थे। मुसलमानोंने बौद्ध बिहारोंका नष्ट-भ्रष्टकर दिया और भिक्षुओंको मार डाला या भगा दिया। परिणाम यह हुआ कि बौद्ध धर्मका नाम-निशान उसके जन्म-स्थानसे ही मिटा दिया गया (११९७)। मुहम्मद खिलजी बिहार-विजय के बाद बंगाल की ओर मुड़ा, जिस पर उन

---

*अनुवादकीय टिप्पणी. डॉ० आशीर्वादीलाल का कहना है कि यद्यपि गोरी ने ११९८ ई० में अन्हिलवाड़ा को विजय तो किया पर अपने राज्यमें न मिला सका, क्योंकि उस कालके इतिहाससे पता चलता है कि १२४० ई० तक अन्हिलवाड़ा चालुक्य राजपूतोंके राज्यके अन्तर्गत रहा।

† अनुवादकीय टिप्पणी. मुहम्मद गोरी के कालमें बिहार के शासक पाल वंशीय न थे। इस समय सेनवंश प्रबल था। पाल राजाओंके वंशजों के हाथमें तो केवल उत्तरी बंगाल का कुछ हिस्सा रह गया था।

दिनों सेन-वंशका राजा लक्ष्मणसेन राज्य करता था। अपनी राजधानी नदिया (नवद्वीप) में मुसलमानोंको देखकर राजा भौंचक रह गया और वह राजधानीको मुसलमानोंकी हिंसाका शिकार बननेके लिए असहाय छोड़ कर ढाका भाग गया (११९९)। मुहम्मद ने अपना सरकारी कार्यालय लखनावती या गौड में हटा लिया और क़ुतुबुद्दीन की अनुमति लेकर एक प्रान्तीय सरकारका संगठन किया। इसके पश्चात् उसने हिमालय के पारवर्ती प्रदेशोंको जीतनेका भी असफल प्रयास किया, किन्तु इस अभियानमें उसकी सारी सेना नष्ट हो गई और १२०५ में वह लज्जाके कारण मर गया।

मुहम्मद ग़ोरी की मृत्यु. १२०३ में मुहम्मद ग़ोरी अपनी राज्य-शक्तिके उच्चतम शिखर पर पहुंच चुका था। उसी सालमें कालिंजर का पतन हुआ और अपने बड़े भाई ग़यासुद्दीन के देहान्तके कारण वह ग़ोरी-साम्राज्यका एकच्छत्र शासक बन गया, किन्तु अपने इस विस्तृत साम्राज्यका सुखोपभोग करनेके लिए वह अधिक दिन जीवित न रहा। नवाधिकृत राज्योंमें उपद्रव होने लगे, जिनमें मध्य पंजाब की खोखर जाति का विद्रोह तो बहुत प्रबल था। वह ग़ज़नी से रवाना हुआ और उसने आते ही इस विद्रोहको निर्दयतापूर्वक कुचल दिया। लेकिन ग़ज़नी लौटते समय रास्तेमें ही किसी धर्मान्धने १२०६ में उसके प्राण ले लिए। कुछ इतिहासकारोंका कथन है कि उसकी हत्याके पीछे धर्मान्धताकी नहीं, बल्कि प्रतिशोधकी भावना रही होगी।

मुहम्मद ग़ोरी और सुल्तान महमूद की तुलना

महमूद के आक्रमणोंकी अपेक्षा मुहम्मद ग़ोरी के आक्रमणों के परिणाम अधिक स्थाई रहे

सुल्तान महमूद और मुहम्मद ग़ोरी दोनों ही उत्साही और साहसी सैनिक थे, किन्तु ग़ोरी सरदारकी अपेक्षा महमूद के सैनिक कार्य अधिक शानदार थे, लेकिन जहां तक परिणामोंका प्रश्न है, मुहम्मद ग़ोरी के आक्रमण अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। सुल्तान महमूद के आक्रमण एक प्रकारसे उसकी विजयवाहिनीके सफल प्रयासोंकी लड़ी थे, जिनका पंजाब-विजयके अति-रिक्त कोई स्थाई परिणाम नहीं हुआ, लेकिन दूसरी ओर मुहम्मद ग़ोरी की विजयका क्षेत्र बहुत विस्तृत था और उसके आक्रमणोंका चिरस्थायी प्रभाव पड़ा। अपने पीछे वह अपना एक प्रतिनिधि (वाइसरॉय) छोड़ गया, जिसने प्रसिद्ध ग़ुलाम वशंकी नींव डाली और समस्त उत्तरी भारत को जीत लिया। इस प्रकार उसके आक्रमणोंके परिणामके विषयमें कहा जा सकता है कि एक प्रकारसे उन्होंने भारत में मुस्लिम-शासनकी स्थापना

की। यद्यपि वह महमूद की तरह भारतीय राजा ('तथाकथित') न था; वह ग़जनी का शासक था जिसकी आंखें जितनी उत्तर और पश्चिमकी ओर थीं, उतनी ही हिन्दुस्तान पर भी, तो भी उसकी विजयोंका प्रभाव बहुत दूर तक और चिरस्थायी पड़ा। जहां तक उनके आक्रमणोंके स्वरूप का प्रश्न है, हमें कोई बहुत बड़ा अन्तर नहीं दिखाई देता। दोनोंने हिन्दुस्तानके समृद्धिशाली मैदानी प्रदेशको बरबाद किया, काफ़िरोंके रक्तसे तलवारें रँगीं और उसकी चल-सम्पत्तिको जी भरकर लूटा। लेकिन मुहम्मद ग़ोरी का वास्तविक उद्देश्य कुछ और ही था। बहुत सम्भव है कि प्रारम्भमें उसकी यह इच्छा रही हो कि अपने कट्टर शत्रुओं—ग़जनी-वंशवालों— को उनके अन्तिम गढ़ पंजाब से भी निकाल बाहर किया जाय। अतः यह कह सकते हैं कि उसके भारत में आनेका मुख्य कारण ग़ोरी-वंश के सरदारोंके खूनका बदला लेना था, न कि लूट-पाट करनेका प्रलोभन, जो कि सुल्तान महमूद के आक्रमणोंका वास्तविक उद्देश्य था।

महमूद विद्या और विद्वानों का बड़ा समर्थक था, किन्तु ग़ोरी न था

व्यक्तित्वकी दृष्टिसे दोनोंमें उल्लेखनीय अन्तर था। मुहम्मद ग़ोरी केवल सैनिक था और कुछ नहीं, जब कि सुल्तान महमूद की रुचि जितनी सैनिक-कार्योंमें थी उतनी ही कला और साहित्यमें भी। इसलिए महमूद की तुलनामें मुहम्मद गोरी का नाम उतना प्रसिद्ध नहीं हो सका।

ग़ोरी-वंशका पतन. मुहम्मद ग़ोरी की मृत्युके बाद ग़ोर-राज्य वंशका महत्त्व एक पर्वतीय जागीरदारसे अधिक न रह गया। ग़ोर में उसके बाद उसका भतीजा महमूद गद्दी पर बैठा था, जिसका शासन एक सीमित प्रदेश पर ही था, क्योंकि उसके साम्राज्यका अधिकांश मुहम्मद ग़ोरी के तीन तुर्क-गुलामोंके हाथमें था, जो अपनेको लगभग स्वतंत्र मानने लगे थे। इन गुलाम-सरदारोंमें से (क) ताजुद्दीन एलदौज़ ग़जनी पर शासन करता था, (ख) नासिरुद्दीन कुबाचा के अधिकारमें सिन्ध का प्रदेश था और (ग) क़ुतुबुद्दीन प्रायः बाक़ीके सारे हिन्दुस्तान पर शासन कर रहा था। महमूद ने कुछ ही वर्षों तक शासन किया। उसके मरने के बाद सिन्ध नदीके पश्चिमके उसके साम्राज्यके प्रायः सभी भागोंमें गृह-युद्ध छिड़ गया। इस अराजक स्थितिका लाभ उठाकर ख़्वारिज़्म (खीवा) के शासकोंने ग़ोरी-राज्यों पर अधिकार कर लिया और इस प्रकार ग़ोर के राजवंशका अन्त हो गया।

खंड २

अध्याय ४

दिल्ली की सल्तनत (१२०६-१५२६ ई०)

[तथाकथित पठान-साम्राज्य]

गुलाम-वंश (१२०६-१२९०)

क़ुतुबुद्दीन ऐबक (१२०६-१२९०). क़ुतुबुद्दीन ऐबक के कार्य-कालको हमें दो दृष्टियोंसे परखना होगा—एक मुहम्मद ग़ोरी के प्रतिनिधि (वाइसरॉय) के रूपमें और दूसरा, अधिकृत भारतीय प्रदेशमें उसके उत्तराधिकारीके रूपमें। अपने दूसरे रूपमें क़ुतुबुद्दीन को दिल्ली का पहला सुल्तान और ग़ुलाम-वंशके नामसे प्रसिद्ध एक राजवंशका संस्थापक कहा जा सकता है। इस राजवंशके कई राजा पहले ग़ुलाम रह चुके थे, इसलिए यह ग़ुलाम-राजाओं के नामसे प्रसिद्ध है।

मुहम्मद ग़ोरी के वाइसरॉय के रूपमें उसका कार्य

क़ुतुबुद्दीन ने, जो तुर्किस्तानका रहनेवाला था, मुहम्मद ग़ोरी के दासके रूपमें अपना कार्य-काल प्रारम्भ किया। अपने साहस और योग्यतासे वह अपने स्वामीका विश्वासपात्र और स्नेहभाजन बन गया और शीघ्र ही उसका सेनापति हो गया। अपने सभी सेनाध्यक्षोंमें मुहम्मद ग़ोरी क़ुतुबुद्दीन पर सबसे अधिक भरोसा करता था। यह क़ुतुबुद्दीन के सेनापतित्वका ही परिणाम था कि उसका स्वामी—मुहम्मद ग़ोरी—भारतीय युद्धोंमें सफलता प्राप्त करता रहा। तराइन की दूसरी लड़ाई (११९३ ई०) के बाद मुहम्मद गोरी भारतीय युद्धको जारी रखनेका भार क़ुतुबुद्दीन के ऊपर छोड़कर स्वयं ग़ज़नी लौट गया। ग़ोरी के प्रतिनिधिके रूपमें क़ुतुबुद्दीन ने अपनेको उस विश्वासके पूर्ण योग्य सिद्ध किया, जो उसके स्वामीने उस पर किया था। दिल्ली इसके आक्रमणके सामने ठहर न सकी और ग़ोर-सेना का झंडा इटावा के निकटकी लड़ाईमें भी ऊँचा रहा। यहीं कन्नौज का राजा जयचन्द मारा गया। बनारस और कालिंजर पर अधिकार करना भी उसीका काम था। बंगाल और बिहार पर उसके सेनापति मुहम्मद बिन बख्तियार ने क़ब्ज़ा किया। इस प्रकार जितने बड़े-बड़े काम थे, उसने वाइसरॉय रहनेके समयमें ही कर लिए।

क़ुतुबुद्दीन दिल्ली का पहला सुल्तान

सन् १२०६ में ग़ोर के तत्कालीन शासक और मुहम्मद ग़ोरी के भतीजे ग़यासुद्दीन महमूद ने क़ुतुबुद्दीन को 'दिल्लीका सुल्तान' की उपाधि प्रदान की। इस समयसे उसको एक स्वतंत्र भारतीय राजा की कोटिमें गिना

जा सकता है और उसे दिल्ली का प्रथम सुल्तान कह सकते हैं। उसने अपने प्रतिद्वन्द्वी सरदारोंसे राजनीतिक विचार-सम्बन्ध करके अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली। इस सिलसिलेमें उसने ताजुद्दीन-एलदौज, जो उसका प्रतिद्वन्द्वी तथा उसीकी तरह ग़ोरी का दास रह चुका था, की लड़कीसे शादी की। अपनी बहनका विवाह उसने सिन्ध के शासक नासिरुद्दीन कुबाचा से और अपनी लड़कीका विवाह बिहार के गवर्नर इल्तुतमिश (अल्तमश) से कर दिया। अपने वाइसरॉय-कालमें उसने दिल्ली की सुप्रसिद्ध जामा मस्जिद बनवायी और क़ुतुबमीनार का निर्माण प्रारम्भ करवाया। घोड़े परसे गिर जानेके कारण सन् १२१० ई० में उसकी मृत्यु हो गयी।

उसके बनवाये हुए भवन और स्मारक

उसका चरित्र. वह एक कुशल सेनापति था और उत्तरी भारतको विजय करनेका बहुत कुछ श्रेय उसीको था। वह एक ऐसे युगमें पैदा हुआ था जब धार्मिक सहिष्णुताका नाम लोगोंको मालूम न था, इसलिए हिन्दुओंके साथ उसका व्यवहार अच्छा न रहा, लेकिन अपनी मुसलमान प्रजा के लिए वह 'दरियादिल बादशाह' था, जिसने अपनी वीरता, साहस, और उदारतासे अपनेको उनका स्नेहभाजन बना लिया था। कहा जाता है कि उसका शासन दृढ़ और न्यायप्रिय था। 'तवक़ात-ए-नासीरी' के लेखकने उसके चरित्रके विषयमें सच्ची जानकारी करायी है। सुल्तानकी उपमा उसने उस व्यक्तिसे दी है 'जिसके दानसे यदि सैकड़ों हजारों आदमी निहाल हो जाते हैं, तो उसके मृत्यु-दंडोसे सैकड़ों-हज़ारों आदमी प्राणोंसे हाथ भी धो बैठते हैं।' इसमें सन्देह नहीं कि दान-उपहार उसकी मुस्लिम-प्रजा को मिलते थे, जबकि हिन्दू-प्रजा उसकी हिंसा-वृत्ति का ही शिकार होती थी, इसलिए प्रसिद्ध इतिहासकार स्मिथ ने उसे 'मध्य एशिया के तत्कालीन क्रूर और धर्मान्ध जंगली योद्धाओंका एक नमूना' बताया है।

टिप्पणी. स्मिथ का कथन निस्सन्देह सत्य है, लेकिन विद्यार्थियोंको यह याद रखना चाहिए कि वहशियत और धर्मान्धिता केवल मध्य एशिया तक ही सीमित न थी, और न केवल मध्य योरोप तक, बल्कि उस युगमें समस्त योरोप में क्रूर धर्मान्धता के अनेक उदाहरण देखनेको मिलते हैं। वह तो समय ही ऐसा था जब योरोप और मध्य एशिया में किसीमें धार्मिक सहिष्णुता का कहीं पता न था। मुस्लिम-शासकों के चरित्रका मूल्यांकन करने में ऐसा लगता है कि स्मिथ ने समय और परिस्थितिका ध्यान नहीं रखा।

इल्तुतमिश(अल्तमश)१२११-१२३६. क़ुतुबुद्दीन की मृत्युके पश्चात्

उसका पुत्र «आराम» गद्दी पर बैठा, लेकिन वह अयोग्य शासक था, इसलिए उसे हटाकर इल्तुतमिश को शासन-भार सौंपा गया। इल्तुतमिश भी एक ग़ुलाम था, जो बादमें कुतुबुद्दीन का दामाद बना था। राज्यारोहण के समय इल्तुतमिश बदायूं के गवर्नर-पद पर था गद्दी पर बैठनेके बाद उसे अपनी स्थिति निरापद करनेके लिए अपने दो प्रतिद्वन्द्वी सरदारों —एलदौज़ और कुबाचा—से काफ़ी संघर्ष करना पडा। उसने दोनोंको हरा दिया और बंगाल के मुसलमान शासकसे भी अपनी प्रभुता मनवायी। ये कठिनाइयां अभी समाप्त भी नहीं हुई थी कि एक नए और भयंकर खतरेने उसका पीछा किया। मंगोलोंका खूंख्वार नेता चंगेज़खां ख्वारिज़्म के भगोड़े राजा जलालुद्दीन का पीछा करते हुए सिन्ध नदी तक आ पहुंचा। जलालुद्दीन ने बहुत दिनों तक चंगेज़ को छकानेके बाद अन्तमें दिल्ली के दरबारमें शरण ली थी। लेकिन तूफ़ान जितनी तेज़ीसे आया था, उतनी ही तेज़ीसे लौट गया, मंगोलोंने पश्चिमी पंजाब को लूटकर अपना रास्ता लिया और भारत उन भयंकर अत्याचारोंसे बच गया, जिनके लिए मंगोलोंका आक्रमण प्रसिद्ध हुआ।

उसकी प्रारम्भिक कठिनाइयां

अप्रत्यक्ष रूपसे चंगेज़खां के आक्रमणने इल्तुतमिश की स्थितिको दृढ़ ही बनाया, क्योंकि उसके फलस्वरूप इल्तुतमिश के दो प्रतिद्वन्द्वियों—-एलदौज और कुबाचा—-का नाम-निशान मिट गया। पहला तो मंगोलों द्वारा बन्दी बना लिया गया और दूसरेकी शक्ति इतनी क्षीण हो गयी कि उसे इल्तुतमिश के सामने हार माननी पड़ी और अन्तमें सिन्धु नदीमें डूबनेसे उसकी मृत्यु हो गयी।

चंगेज़खां का आक्रमण और उसका राजनीतिक प्रभाव

अपने प्रतिद्वन्द्वियोंको हरानेमें इल्तुतमिश को जो सफलता मिली उसके अतिरिक्त उसकी सैनिक सफलताओंमें ग्वालियर पर उसका अधिकार और मालवा पर आक्रमण (जिसमें उज्जयिनी पर कब्ज़ा करनेमें वह सफल रहा) गिने जा सकते हैं। इस प्रकार उसने विन्ध्य के उत्तरके समस्त भारत पर अपना पूर्ण प्रभुत्व स्थापित कर लिया।

उसकी प्रमुख विजय

उसके जीवनकी सबसे गौरवपूर्ण घटना रही बग़दाद के ख़लीफ़ा से सम्मान-पदक प्राप्त करना। १२३६ में उसका शरीरान्त हो गया। उसने कुतुबमीनारको पूरा कराया और क़ुतुब के पासमें कई खूबसूरत इमारतें बनवायी। वहीं पर एक सुन्दर मक़बरेमें वह दफ़नाया गया। उसने अजमेर में भी एक सुन्दर मस्जिद बनवायी थी। इल्तुतमिश पहला बादशाह था जिसने सिक्कों पर विशुद्ध अरबी लिपिका प्रचलन कराया और चांदी के 'टंक' नामक सिक्केको अपने राज्यका स्टैंडर्ड सिक्का घोषित किया। टंक को वर्तमान रुपयेका पूर्वज कह सकते हैं। उसके समयके मिनहाजुस

उसके बनवाए हुए भवन

उसने चांदी का टंक सिक्का चलाया

शिराज नामक इतिहासकारने उसके सम्बन्धमें कहा है कि 'वह एक भला और उदार राजा था, जो अपने ही प्रयत्नोंसे इतने बड़े साम्राज्यका स्वामी बना था।'

सुल्तान रज़ियानुद्दीन. इल्तुतमिश के बाद उसका लड़का रुकनुद्दीन गद्दी पर बैठा, लेकिन वह बहुत अयोग्य सिद्ध हुआ, इसलिए उसे हटाकर उसकी सुयोग्य बहन रज़ियानुद्दीन, जिसको साधारणतया लोग रज़िया बेगम के नामसे जानते हैं, गद्दी पर बैठायी गयी। उसने 'सुल्तान' की उपाधि धारण की। रज़िया की हमेशा यह कोशिश रही कि वह पुरुषोंकी तरहसे रहे और काम करे। वह पुरुषोंकी ही पोशाक पहनती थी और अपनी सेना के आगे-आगे हाथी पर खुले मुंह बैठती थी। हिन्दुओं और विद्रोही मुसलमान-सरदारों को दबाने के लिए लड़ी गयी लड़ाइयोंमें उसने क्रियात्मक भाग लिया। रज़िया की इस बातके लिए प्रशंसा की जाती है कि उसने क़ानूनोंमें सुधार करवाया और सरकारकी बुराइयों को दूर किया। लेकिन उसका स्त्री होना उसके लिए अभिशाप सिद्ध हुआ। दरबारमें उपद्रवी तुर्क-सरदार यह बर्दाश्त नहीं कर सकते थे कि कोई स्त्री उन पर शासन करे। इसके अतिरिक्त उसने अपने एक अबीसीनियन ग़ुलाम पर विशेष अनुग्रह करके उसे प्रधान सेनापति बना दिया। इस घटना ने तो सरदारोंको और भी असन्तुष्ट कर दिया। राज्यमें विद्रोह खड़ा हो गया और विद्रोही गवर्नर अल्तुनिया के द्वारा वह क़ैद कर ली गयी। किन्तु रज़िया ने स्वयंको बन्दी बनानेवालेको ही अपना बन्दी बना लिया—उससे विवाह कर लिया; और तब अपने खोए सिंहासनको प्राप्त करनेके लिए उसने प्रयत्न किया। उस समय गद्दी पर उसका भाई बहराम बैठा था। रज़िया ने उससे दो भयंकर युद्ध किये, किन्तु अपने पति सहित वह गिरफ़्तार कर ली गयी और १२४० में कुछ हिन्दू ग्रामीणों द्वारा मार डाली गयी। 'तबक़ात-ए-नासीरी' के लेखक ने रज़िया की बड़ी प्रशंसा की है और उसे महान् कहा है तथा उच्च कोटिके सद्गुणोंसे युक्त बताया है। इसके अतिरिक्त इस तथ्यसे भी उसकी योग्यता और अच्छे गुणों पर प्रकाश पड़ता है कि उसके पिता इल्तुतमिश ने अपने जीवन-काल में ही रज़िया पर शासन-काल का बहुत कुछ उत्तरदायित्व छोड़ रखा था और वसीयत की थी कि उसके मरनेके बाद रज़िया को ही गद्दी पर बैठाया जाय।

यह योग्य शासिका थी किन्तु सरदारोंने स्त्रीके शासन के विरुद्ध विद्रोह किया

अपने भाई बहराम के साथ उसका युद्ध

रज़िया का चरित्र

सुल्तान नासिरुद्दीन महमूद. रज़िया बेगम के बाद दो महत्त्वहीन सुल्तान गद्दी पर बैठे—उनमें से एक तो उसका भाई «बहराम» था और दूसरा उसका भतीजा «मसूद»। इन्होंने बहुत थोड़े दिन प्रभावहीन शासन

किया, इसलिए इनके समयकी केवल एक ही घटना उल्लेखनीय है और वह है मंगोलोंका आक्रमण। एकके बाद एक, ये दोनों सुल्तान गद्दीसे उतार दिये गये और उनके स्थान पर इल्तुतमिश के सबसे छोटे लड़के नासिरुद्दीन को सुलतान बनाया गया।

नासिरुद्दीन सन् १२४६ में गद्दी पर बैठा और उसने बीस वर्षों तक शासन किया। वह बहुत शान्त और अध्ययनशील प्रवृत्तिका व्यक्ति था और एक फ़क़ीरकी तरह सादा जीवन व्यतीत करता था। राज्यका सारा कार्य-भार उसने अपने श्वसुर ग़यासुद्दीन बलबन के हाथोंमें छोड़ दिया था। बलबन इल्तुतमिश का ग़ुलाम था। वह सुयोग्य मंत्री सिद्ध हुआ और लगातार बीस वर्षों तक उसने अपने स्वामीकी अथक सेवा की। वास्तवमें नासिरुद्दीन के शासन-कालकी घटनाएं बलबन की सफलताओंकी कहानीमात्र हैं। उस समय राज्यको सबसे अधिक खतरा मंगोलोंके आक्रमणसे था। बलबन ने मंगोलोंकी रोक-थाम करनेके लिए उचित कार्रवाई की और हिन्दुओंके असन्तोषका भी दमन किया।

उसका चरित्र

मंगोलोंके आक्रमणकी बलबन द्वारा रोक-थाम

नासिरुद्दीन का देहान्त १२६६ ई० में हो गया। वह कला और साहित्यका संरक्षक था। उसीके शासन-कालमें मिनहाजे शिराज नामक क़ाज़ीने एक अमूल्य इतिहास-ग्रन्थ 'तबक़ात-ए-नासीरी' लिखा, जिसका नाम उसने सुल्तान के नाम पर रखा था।

ग़यासुद्दीन बलबन. नासिरुद्दीन जब मरा तब उसके कोई सन्तान न थी, इसलिए उसने बलबन को ही अपना उत्तराधिकारी नियत किया। नासिर के शासन-कालमें ही बलबन कई वर्षों तक उच्चतम सत्ताका उपभोग कर चुका था, इसलिए गद्दी पर बैठनेके समय वह बहुत वृद्ध हो चुका था। किन्तु उसकी शारीरिक और मानसिक शक्ति किसी युवक से कम न थी। नासिरुद्दीन के वज़ीर की हैसियतसे उसने दो मुख्य कार्य किये थे—अपने सुयोग्य चचेरे भाई शेर खां के द्वारा उसने मंगोलोंका आक्रमण रोकनेके लिए सीमान्त प्रदेशोंकी अच्छी नाकेबन्दी कराई थी और असन्तुष्ट हिन्दुओंका क्रूर दमन किया था। सिंहासन पर बैठनेके थोड़े दिन पहले ही उसने मेवात के पहाड़ी लोगोंको, जो दिल्ली के आस-पास सदा उपद्रव मचाते रहते थे, जिस अमानुषिक ढंगसे कुचला, उससे उसकी निष्ठुर नीतिका लोगोंको अन्दाज़ हो गया।

नासिरुद्दीन के शासन-काल में उसका कार्य

गद्दी पर बैठनेके तुरन्त बाद ही उसने जिस बात पर सबसे पहले ध्यान दिया, वह थी अपनेको प्रतिद्वन्द्वियोंके खतरेसे मुक्त कर लेना। इसके लिए उसने सुल्तान इल्तुतमिश के बचे हुए 'चालीस प्रसिद्ध ग़ुलामों' को मौतके घाट उतार दिया। वह यह भी भूल गया कि वह स्वयं

उसकी नीति और शासन

उन्हीं ग़ुलामोंमें से एक ग़ुलाम था। यद्यपि वह ग़ुलाम रह चुका था, तो भी उसका स्वभाव पूर्णतया राजसी था। अपने व्यक्तित्वके प्रति लोगोंमें सम्मान उत्पन्न करनेके लिए उसने अपने दरबारको बड़े शानदार ढंगसे सजाया था और उसके क़ायदे-क़ानून बहुत सख्त रखे थे। मध्य एशिया के बहुतसे सुल्तानों और शहजादोंको, जिन्होंने मंगोलोंके भयसे भागकर दिल्ली में शरण ली थी अपना आश्रय और संरक्षण प्रदान करके भी उसने अपने दरबारकी शान बहुत बढ़ा ली थी। वह केवल उच्च-कुलीन व्यक्तियोंको ही अच्छा ओहदा देता था। उसने जान-बूझ कर हिन्दुओंको विश्वास और उत्तरदायित्वके पदोंसे वंचित कर रखा था। उसका न्याय बहुत कड़ा और रक्तरंजित होता था और पद तथा सम्मान का लिहाज़ किए बिना ही उसको पालन किया जाता था। उसने एक अच्छे गुप्तचर-विभागका भी संगठन किया, जिसकी सहायतासे वह प्रान्तोंको पूरी तरह अपने नियंत्रणमें रखता था।

तुग़रिलखां का विद्रोह

बंगाल में विद्रोह. उसकी सबसे प्रमुख सैनिक कार्रवाई थी बंगाल के विद्रोहका दमन, जहांका गवर्नर तुग़रिलखां अपनेको स्वतंत्र शासक-सा मान बैठा था। तुग़रिल ने पहले तो दो शाही सेनाओंको हरा दिया, लेकिन तीसरी बार स्वयं वृद्ध सुल्तान के सेनापतित्वमें आई सेनाने उसे हरा दिया और वह मार डाला गया। बलबन ने विद्रोहियोंसे भयंकर प्रतिशोध लिया। तुग़रिल के समर्थकोंको उसने फाँसी पर लटकाकर उनकी लाशें सड़कों पर टंगवा दीं, ताकि भविष्यमें कोई सुल्तानके विरुद्ध सिर उठानेका साहस न कर सके। अपने पुत्र बुग़राखां को बंगाल का गवर्नर नियुक्त करके बलबन दिल्ली लौट आया।

मंगोलोंके आक्रमण. अपने पूरे शासन-कालमें बलबन को यदि किसी चीज़का सबसे अधिक भय रहा, तो वह था मंगोलोंके बड़े पैमाने पर होनेवाले आक्रमणोंका भय। मंगोलोंने अपना आक्रमण जारी रखा, अतः बलबन ने अपने सबसे बड़े और सबसे प्रिय पुत्र शाहज़ादा मुहम्मद पर मंगोलोंको पीछे हटानेका भार डाला। शाहजादा योग्य सैनिक सिद्ध हुआ और उसने कुछ समयके लिए आक्रमणकारियोंको पीछे खदेड़ दिया, लेकिन मंगोलोंने पुनः नये सिरेसे हमले शुरू कर दिये और उनका मुकाबला करते हुए मुहम्मद मार डाला गया। अपने सबसे प्रिय बेटेको खोकर बूढ़े सुल्तानका दिल टूट गया और वह भी चालीस वर्ष शासन करनेके बाद--बीस वर्ष मंत्रीकी हैसियतसे और बीस वर्ष सुल्तानके रूपमें--सन् १२८६ में मर गया।

बलबन की मृत्यु

बलबन का मूल्यांकन. बलबन एक कठोर शासक था और उसकी

शासन-नीति निर्दय आतंकवादकी नीति थी। जिस क्रूरतासे उसने मेवातियोंके उपद्रव और बंगाल के विद्रोहको दबाया, उससे इस बातकी अच्छी तरह पुष्टि हो जाती है, लेकिन इस नीतिका यह परिणाम अवश्य हुआ कि उसके राज्यमें शान्ति और व्यवस्था रही। उसकी क्रूरताओं को सुनकर हमें बुरा तो लगता है, लेकिन उस समयकी विषम परिस्थिति को देखते हुए उसमें कोई असाधारणता नहीं थी, बल्कि उसकी इस नीति का कुछ औचित्य भी था। जब कि महत्त्वाकांक्षी तुर्क-सरदार उसका पीछा करनेमें लगे हों, उपद्रवकारी दिल्ली के दरवाजेको खटखटा रहे हों और मंगोल सीमान्तकी चौकियों तक धावा बोल रहे हों, तब बलबन के लिए यह सर्वथा उचित था कि वह सख्त और सतर्क रहता। लेकिन क्रूर और निर्दय होते हुए भी वह पूर्ण संस्कृत मनुष्य था। वह फ़ारसी साहित्य का उदार समर्थक था और कवि अमीर खुसरो पर उसकी विशेष कृपा थी।

उसकी निष्ठुर नीतिका औचित्य

साहित्यको उसने संरक्षण दिया

कैकुबाद — गुलाम-वंशका पतन. बलबन की मृत्युके पश्चात् उसका पोता कैकुबाद गद्दी पर बैठा। उसकी आयु उस समय केवल अठारह वर्षकी थी और उस पर उसके वजीर नाजिमुद्दीन का बड़ा प्रभाव था। नाजिमुद्दीन नौजवान सुल्तानको पूरी तरह अपने वशमें करनेके लिए उसे तरह-तरह के बुरे कामोंके लिए प्रोत्साहित करता रहता था। परिणाम यह हुआ कि तीनसे भी कम वर्षोंमें कैकुबाद की शक्तिको लकवा मार गया। वह प्रभावहीन बन गया। सरकारी काम-काज विशृंखल होने लगा; षड्यन्त्रोंका सृजन होने लगा और सामन्तगण सत्ता के लोभमें आपसमें झगड़ने लगे। इसी सिलसिलेमें किसीने कैकुबाद का निर्ममतापूर्वक वध कर दिया। इस कांडके बाद सरदारोंके एक दल ने एक उच्चाधिकारी फ़ीरोजशाहको, जो खिलजी क़बीलेका था, सुलतान निर्वाचित कर लिया। वह सन् १२९० ई० में जलालुद्दीन की उपाधि धारण करके गद्दी पर बैठा। इस प्रकार दिल्ली के तुर्क-गुलाम-सुल्तानों के राजवंशका अन्त हुआ।

कैकुबाद की हत्या

मंगोल और उनके आक्रमण. मंगोल मध्य एशिया के निवासी थे, जिनकी आंखें छोटी और क़द ठिगना था। वे नास्तिक, अधार्मिक और खानाबदोश थे। वे अच्छे घुड़सवार और निष्ठुर, क्रूर सैनिक थे, जिनको दया और शौर्यसे कोई वास्ता न था। 'मंगोल' और 'मुग़ल' एक ही शब्दके दो रूप हैं, लेकिन, जहां तक भारतीय इतिहासका प्रश्न है, हम 'मंगोल' शब्दका व्यवहार केवल उन धर्महीन छोटी आंखोंवाले आक्रमणकारियोंके लिए करेंगे, जिनमें से अधिकांश चंगेजखां के अनुयायी

थे और मुगल' शब्दका व्यवहार उस तुर्क-जाति के लोगोंके लिए सुरक्षित रखेंगे जो मंगोलोंसे अधिक सभ्य थे और जिन्होंने १४वीं शताब्दीमें इस्लाम मजहब क़बूल कर लिया था। यही मुग़ल तुर्कोंके 'जगाती' (चुगताई) वर्गके पूर्वज थे, जिनका प्रतिनिधित्व बाबर और उसके उत्तराधिकारी करते थे। तुर्कों और मंगोलोंमें परस्पर विवाह-सम्बन्ध खुले रूपसे होता था। दिल्ली पर जब तक सुल्तानोंका शासन रहा, तब तक सरहदी इलाक़े पर मंगोलोंका लगातार हमला एक खतरेकी चीज रही।

चंगेजखां का आक्रमण. तेमूजिन नामक एक मंगोल-सरदार ने, जो ११६२ ई० में पैदा हुआ था, धीरे-धीरेसे मंगोलिया की खानाबदोश जातियों पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया और १३वीं सदीके प्रारम्भ में वह उनका राजा चुना गया। उसने चंगेज़खा की उपाधि धारण की और कुछ ही वर्षोंमें उसने चीन के अधिकांश भाग पर और मध्य एशिया के सभी प्रमुख देशों पर अधिकार कर लिया। अन्तमें अपने आततायी दलको लेकर वह ख्वारिज़्म पर टूट पड़ा और समरक़न्द, बुखारा तथा मर्व पर क़ब्ज़ा कर लिया। तत्पश्चात् वह ख्वारिज़्म के भगोड़े शाह जलालुद्दीन का पीछा करते हुए अफ़ग़ानिस्तान में घुसा। हिरात और ग़ज़नी उसके आक्रमणके सामने टिक न सके और मंगोलों ने पेशावर पर अधिकार कर लिया। जलालुद्दीन ने सिन्धु नदी के तट पर उससे अन्तिम बार लोहा लेनेकी कोशिश की, लेकिन वह हरा दिया गया और उसे इल्तुतमिश के दरबारमें शरण लेनी पड़ी, किन्तु सौभाग्यवश चंगेजखां आगे न बढ़ा और हिन्दुस्तान उस क्रूर आततायीके अत्याचारोंसे बच गया। पश्चिममें चंगेज़ योरोपीय रूस के भीतरी भागमें—नीपर नदी तक—घुस गया था।*

उसने ख्वारिज़्म के शाह जलालुद्दीन का पीछा करते हुए भारत पर आक्रमण किया

अन्य मंगोल-आक्रमण. चंगेज़ का आक्रमण कोई संगठित आक्रमण न होकर एक गुज़रता हुआ तूफ़ान था, लेकिन उसने रास्ता दिखा दिया और बहराम, जो रज़िया बेगम का उत्तराधिकारी था, के समयसे हिन्दुस्तान के सीमान्त प्रदेशों पर मंगोलोंके आक्रमण होते रहे। इनसे बलबन को बड़ी परेशानी रही, क्योंकि अपने शासन-काल और अपने स्वामीके शासन-काल, दोनोंमें ही उसकी अधिकांश शक्ति इन आक्रमणकारियोंको पीछे हटानेके लिए संगठन करनेमें ही खर्च होती रही। उसका पुत्र मुहम्मद

गुलाम-बादशाहों के ज़मानेमें

---

* अनुवादकीय टिप्पणी इल्तुतमिश ने जलालुद्दीन मंगरवानी को अपने यहां शरण नहीं दी थी, क्योंकि वह समझता था कि ऐसा करनेसे चंगेजखां नाराज हो जायगा और उसके राज्य पर आक्रमण कर देगा।

उनसे लड़ता हुआ मारा गया। खिलजी सुल्तान अलाउद्दीन भी उनके आक्रमणोंसे बड़ा परेशान रहा। उसके राज्य-कालमें पांच बार उन्होंने हमले किए, लेकिन उनको पीछे हटा दिया गया और अन्तिम बार तो इस बुरी तरह वे पीछे हटाए गए कि उसके शासन-कालमें फिर आक्रमण करने का साहस मंगोलोंको न हुआ। परन्तु अलाउद्दीन के मरनेके बाद उनके आक्रमण फिर जारी हो गए और ग़यासुद्दीन तुग़लक़ के समयमें तो हम देखते हैं कि उसका प्रधान कार्य ही मंगोलोंको पीछे हटाना रहा उसके पुत्र मुहम्मद तुग़लक़ ने उनको धन-द्रव्य देकर किसी प्रकार पीछा छुड़ाया। इस प्रकार मंगोलोंके लगातार हमले दिल्ली के सुल्तानोंके लिए सबसे बड़े बाहरी खतरे थे।

खिलजी-सुल्तानोंके समयमें

तुग़लक-सुल्तानोंके समयमें

ग़ुलाम-वंश पर एक दृष्टि

(क) सुल्तान. ग़ुलाम-वंशके सुल्तानोंने दिल्ली की गद्दी पर ८४ वर्षों तक—१२०६ से १२९० तक—राज्य किया। इस राजवंशमें कुल दस सुल्तान हुए, जिनमें से केवल तीन सबसे प्रमुख हैं—कुतुबुद्दीन, जिसने इस राजवंशकी स्थापना की; इल्तुतमिश, जिसने उत्तरी भारतमें मुस्लिम शासनको सुदृढ़ और केन्द्रित किया तथा बलबन, जिसने बाहरी-भीतरी खतरोंसे, विशेषकर मंगोलोंके आक्रमणसे, उस साम्राज्यको सुरक्षित रखा। इन तीन शक्तिशाली, कठोर और धर्मान्ध सुल्तानोंके अतिरिक्त दो सुल्तान और रह जाते हैं, जिनका उल्लेख कर देना आवश्यक है। वे थे—इल्तुतमिश की योग्य लड़की सुल्ताना रज़िया और नासिरुद्दीन, जो बहुत धर्मात्मा, सीधा-सादा तथा साहित्यिक रुचिका व्यक्ति था। शेष सुल्तान निकम्मे और अयोग्य थे तथा बहुत थोड़े दिनों तक उन्होंने शासन किया, जिसका कोई महत्त्व नहीं है।

(ख) उनका शासन. ग़ुलाम-सुल्तानोंने नागरिक शासनकी समस्याओंको सुलझानेकी कोई कोशिश न की। उन्होंने निरंकुश राजाओं की तरह शासन किया। उत्तराधिकारका कोई निश्चित नियम नहीं था। सरदार जिसे चाहते थे, उसे एक मामूली चुनावका ढकोसला करके सुल्तान बना देते थे। उत्तराधिकारके नियमकी इस अस्थिरता के कारण यह स्वाभाविक ही था कि राज्यमें तरह-तरहके षड्यंत्र होते और शासनमें भ्रष्टाचार फैलता। सुल्तानोंमें न्यायकी भावना भी थी, लेकिन वह केवल मुस्लिम अल्पसंख्यकों तक ही सीमित थी। हिन्दुओंकी दशा तो कई बातों में बड़ी संकटापन्न और दयनीय थी, क्योंकि उस युगके मुसलमान यह

विश्वास करते थे कि काफ़िरोंको मारने और उनके देवालयोंको भ्रष्ट करनेसे जन्नतका द्वार उनके लिए खुल जायगा।

(ग) **साहित्य और स्थापत्य.** कतिपय सुल्तान, जैसे—क़ुतुबुद्दीन और इल्तुतमिश, स्थापत्य कला के सम्बन्धमें परिष्कृत रुचि रखते थे और उन्होंने जो सुन्दर भवन तथा स्मारक (क़ुतुबमीनार और उसके आस-पासके भवन) बनवाए, वे उच्चकोटिकी स्थापत्य कलाके उदाहरण हैं। नासिरुद्दीन और बलबन साहित्यके संरक्षक और हितू थे।

उनके साम्राज्यकी सीमा

(घ) **उनकी सफलताओंका संक्षिप्त विवरण.** (१) ग़ुलाम-बादशाहों के शासन-कालमें लगभग सारा उत्तरी भारत मुस्लिम-आधिपत्यमें आ गया। आजकल जिन प्रदेशोंको हम पंजाब, उत्तर-प्रदेश, बिहार, ग्वालियर, सिन्ध और राजपूताना तथा मध्य भारत (कुछ भाग) के नाम से पुकारते हैं, उन पर उन्होंने लगभग अपना दृढ़ प्रभुत्व जमा लिया था। पंजाब पर उनका अधिकार सुरक्षित न था क्योंकि चंगेज़खां के आक्रमण के बाद मंगोलोंने कई बार उसे प्राप्त करनेकी चेष्टा की। यद्यपि बंगाल मुसलमानोंके प्रभावमें था, तो भी वह एक तरहसे स्वतंत्र ही था, हालाकि बलबन ने ऊपरी तौरसे उससे अपना आधिपत्य स्वीकार करा लिया था।

उन्होंने मंगोलोंका आक्रमण रोका

(२) ग़ुलाम-बादशाहोंका दूसरा बड़ा काम था मंगोलोंके आक्रमणोंकी रोक-थाम करना, जिससे भारत मंगोलोंके अत्याचारोंसे अछूत बच गया। इस सिलसिलेमें बलबन का नाम सबसे प्रमुख है।

स्थापत्य कला

(३) अन्तिम बात यह कि स्थापत्य कला की संवृद्धिमें उनको जो सफलता मिली, वह भी नगण्य न थी। उन्होंने नये प्रकारकी कला का प्रयोग किया और उनके बनवाए भवन तथा स्मारक आज भी अद्वितीय हैं और सब लोग मुक्त कंठसे उनकी प्रशंसा करते हैं।

अध्याय ५

खिलजी-वंश (१२९०-१३२०)

खिलजी-राजवंश. खिलजी लोग सम्भवतः तुर्क-जातिके थे, लेकिन बादमें उनमें अफ़गानियोंकी बहुत-सी बातें आ गई थीं। कुछ इतिहासकार उनका सम्बन्ध तुर्कोंसे ही जोड़ते हैं, किन्तु तत्कालीन इतिहासकार « बर्नी » ने खिलजियोंका तुर्कोंसे भिन्न बताया है और कहा है कि कैक़ुबाद की मृत्युके बाद भारत में तुर्कोंके शासनका अन्त हो गया।

जलालुद्दीन खिलजी जलालुद्दीन, जो कैक़ुबाद की सेनामें एक प्रभावशाली अफ़सर रह चुका था, कैक़ुबाद की हत्याके बाद जब गद्दी पर बैठा तब वह ७० वर्षका बूढ़ा था। वह बहुत सीधा-सादा, नरम, साहित्य और राग-रंगका प्रेमी तथा दयावान् था। भारी अपराधोंके लिए भी उसने मृत्यु-दंड देना सर्वथा अस्वीकार कर दिया। इस प्रकार उसने बलबन के भतीजे मलिक छज्जू को, जिसने विद्रोह किया था, क्षमा कर दिया। उसके राज्य-कालमें बहुतसे ठग पकड़े गये थे, लेकिन सुल्तान उनको भी फांसीकी सज़ा देना नहीं चाहता था, अतः वे बंगाल में निर्वासित कर दिये गये। किन्तु सुल्तान के इस सीधेपन और शासनकी नरमीने राज्यमें अव्यवस्था उत्पन्न कर दी और षड्यंत्रोंको प्रोत्साहन दिया। जलालुद्दीन ने मालवा पर आक्रमण किया, लेकिन कोई निर्णायक परिणाम नहीं निकला। १२९२ में वह मंगोलों के आक्रमणके विरुद्ध अपने राज्य की रक्षा करनेमें सफल हुआ और उसने आक्रमणकारियोंको लाहौर से पीछे हटा दिया। लगभग ३,००० मंगोलोंने इस्लाम-धर्म स्वीकार कर लिया और वे 'नये मुसलमान' के नामसे प्रसिद्ध हुए। जलालुद्दीन ने उन्हें दिल्ली के उपान्तमें बसनेकी आज्ञा दे दी। तबसे वह मुहल्ला उनके नाम पर 'मुग़लपुरा' कहलाता है।

उसका नरम शासन

दक्षिण पर आक्रमण. जलालुद्दीन के शासन-कालकी सबसे प्रमुख घटना थी—उसके भतीजे और दामाद अलाउद्दीन द्वारा दक्षिण पर आक्रमण। सुल्तान अपने भतीजेसे बहुत स्नेह करता था, अतः उसने उसे मालवा को विजय करनेकी अनुमति दे दी। लेकिन अलाउद्दीन अपनी

अलाउद्दीन का दक्षिण पर आक्रमण

अधिकार-सीमासे बाहर चला गया और उसने दक्षिणमें प्रवेश किया। दक्षिण भारत का वह प्रदेश था, जिसमे अभी तक किसी मुस्लिम आक्रमण-कारीने लूट-मार करनेका साहस न किया था। मालवा और बुन्देलखंड के विद्रोहोंको दबानेके बाद वह दक्षिणकी ओर बढ़ा। साथ ही उसने सुल्तानके दरबारमें यह समाचार न पहुंचने देनेकी चेष्टा की। उसने यह प्रसिद्ध करके स्वयंको विरोधियोंके प्रतिरोधसे बचा लिया कि मैं अपने चाचासे झगड़कर आया हूं और दक्षिणके किसी राजाके यहां नौकरी करना चाहता हूं। इस प्रकार उसने बरार और खानदेश को पार कर लिया और अचानक देवगिरि के सम्मुख उपस्थित होकर वहांके राजा रामचन्द्र को आश्चर्यचकित कर दिया। रामचन्द्र से कुछ करते-धरते न बना। अलाउद्दीन ने उसकी राजधानीको खूब लूटा और एलिचपुरा का इलाक़ा देनेके लिए उसे बाध्य किया। इसके पश्चात् अतुल धनराशि—सोना और जवाहरातके साथ वह इलाहाबाद के निकट कड़ा नामक स्थान में लौट आया (१२९४)।

जलालुद्दीन की हत्या. एक तो अलाउद्दीन ने सुल्तानसे बिना पूछे दक्षिण पर आक्रमण किया था और दूसरे लूटके मालमें भी वह अपने चाचाको हिस्सा नहीं देना चाहता था, इससे पता चलता है कि उसका इरादा राज्य विरोधी था, लेकिन उसका चाचा उसे इतना अधिक प्यार करता था कि लोगों द्वारा बार-बार चेतावनी देने पर भी उसने अलाउद्दीन पर सन्देह करनेकी आवश्यकता न समझा। अपने विजेता भतीजेसे भेंट करने और उसे धन्यवाद देनेके लिए वह कड़ा गया, जहां उसकी हत्या कर दी गई। इस प्रकार जलालुद्दीन ने अपने विश्वास और सहृदयताके कारण धोखा खाया। इतिहासकी नीचतम हत्याओंमें इस हत्याकी गणना की जा सकती है। इसके बाद अलाउद्दीन गद्दी पर बैठा।

अलाउद्दीन खिलजी (१२९५-१३१६)

उसका राज्यारोहण और चरित्र. अलाउद्दीन ने पाप करके सिंहासन पर अधिकार किया था, इसलिए उसको सुरक्षित बनानेके लिए उसको खूनमें और गहरा हाथ रंगनेकी ज़रूरत थी। उसने भूतपूर्व सुल्तानके सभी सम्बन्धियों और समर्थकोंको मरवा डाला। जिस-जिसके विषय में उसे शंका हुई कि उससे उसे हानि पहुंच सकती है, उन सबको उसने मौतके घाट उतार दिया। लोगोंके मुंहको सोनेसे बन्द करके उसने जनतामें होनेवाली कानाफूसी, असन्तोष और विरोधको दबा दिया।

उसने सभी सम्भावित प्रतिद्वन्द्वियों को मरवा डाला

सेनामें खूब धन और इनाम बंटवाकर उसे भी अलाउद्दीन ने अपने पक्ष में कर लिया।

जिस निर्दयतापूर्ण ढंगसे उसने गद्दी पर अधिकार किया, उससे लगता है कि वह हृदयहीन अत्याचारी शासक था। न्यायकी उसे कोई परवाह न थी और रक्तपात करनेमें तनिक भी झिझक न थी। इतिहासकार जियाउद्दीन बर्नी का कहना है कि मिस्र के फ़रयूनोंने भी इतना खून न बहाया होगा जितना कि अलाउद्दीन ने बहाया, लेकिन उसके इन दुर्गुणोंके बावजूद यह कहा जा सकता है कि वह एक योग्य सैनिक और प्रभावशाली शासक था। उसने भारत में मुस्लिम-साम्राज्यकी सीमा बहुत विस्तृत कर ली और मंगोलोंके आक्रमणोंकी भी सफलतापूर्वक रोक-थाम की।

उसके राज्य-काल की राजनीतिक घटनाएं

१. षड्यन्त्र और विद्रोह. अलाउद्दीन के शासनके प्रारम्भिक वर्ष षड्यंत्रों और विद्रोहोंके कारण अशान्तिमय रहे। (क) सर्वप्रथम, उसे अपने ही सैनिकोंके विद्रोहको शान्त करना पड़ा। गुजरात की विजयके सिलसिलेमें प्राप्त लूटके मालमें से अलाउद्दीन ने सैनिकोंको उनका उचित भाग नहीं दिया, इस पर सैनिकोंने विद्रोह कर दिया। (ख) उसके बाद उसको अपने भतीजोंके विद्रोहका सामना करना पड़ा। उसके एक भतीजे अकातखां द्वारा संगठित षड्यंत्रमें तो उसकी स्थिति बड़ी विकट हो गयी थी, क्योंकि अकातखां ने उसकी हत्याके प्रयत्नमें उसके शरीर पर एक सांघातिक चोट पहुंचायी। सुल्तान को मरा हुआ समझकर उसने अपने आपको सुल्तान घोषित कर दिया और सरदारोंसे भेंट ग्रहण करने लगा, लेकिन अलाउद्दीन स्वस्थ होकर अपनी सेनाके सामने उपस्थित हुआ। सेनाने, जो अभी तक उसके प्रति वफ़ादार थी, उस बागी भतीजे का काम तमाम कर दिया। उसके अन्य दो भतीजोंने भी विद्रोह करनेका साहस किया, लेकिन उनकी भी वही दशा हुई। (ग) दिल्ली में भी एक गुलाम-सरदार हाजी मौला के नेतृत्वमें विद्रोह हुआ। उसने इल्तुतमिश के पोतेको गद्दी पर बैठा दिया और जेलोंमें बन्द क़ैदियोंको छोड़ दिया तथा कई दिनों तक लगातार दंगा-फ़साद करता रहा। यह विद्रोह दबा दिया गया और मौला के स्वामीके पूरे परिवारको अलाउद्दीन ने मरवा दिया।

उसके सैनिकों का विद्रोह

उसके भतीजों का विद्रोह

हाजी मौला का विद्रोह

२. मंगोलोंके आक्रमण. अपने पूर्व सुल्तानोंकी भांति अलाउद्दीन को भी मंगोलोंके आक्रमणोंका खतरा झेलना पड़ा। सन् १२९७-१३०५

में पांच या छ: मंगोल-आक्रमण हुए, जिनमें से दो तो बहुत ज़ोरदार थे। इन सबमें भयंकर वह हमला था, जब मंगोल दो महीने तक दिल्ली का घेरा डाले पड़े रहे, किन्तु नगर पर अधिकार किए बिना ही वे लौट गए। उनकी यह अचानक वापसी वास्तवमें चमत्कार ही समझी गयी, लेकिन बहुत सम्भव है कि उनको घूस देकर पिंड छुड़ाया गया हो। अलाउद्दीन इस बार बाल-बाल बच तो गया, परन्तु उसे खतरेका ज्ञान हो गया और उसने कोई प्रभावशाली उपाय करनेका निश्चय किया। उसने कई नए क़िले बनवाए, सीमाप्रदेशके नगरोंमें सेना बढ़ा दी और अपनी पूरी सेना को सुसज्जित तथा अनुशासित करनेकी ओर उसने ध्यान दिया। यह बहुत प्रभावकारी सिद्ध हुआ, क्योंकि जब मंगोलोंने फिर आक्रमण किया तब अलाउद्दीन ने इस बुरी तरह उन्हें हराया कि उसके जीते-जी फिर उन्होंने हिन्दुस्तानकी ओर मुहं न मोड़ा और देश एक भारी विनाशसे बच गया।

मंगोलोंकी रोक-थामके प्रयत्न

मंगोलोंकी सामूहिक हत्या. जो मंगोल इस्लाम क़बूल करके नए 'मुसलमानों' के नामसे सुल्तान जलालुद्दीन की आज्ञा लेकर दिल्ली के उपान्तमें बस गए थे, उनको खतरनाक और शंकास्पद समझा जाता था। संयोगसे अलाउद्दीन को उनके एक षड्यंत्रकी भनक मिली, अत: उसने उनके सामूहिक वधकी आज्ञा दे दी (१२९७ ई०)। कहा जाता है कि लगभग ३०,००० मंगोल पुरुष एक दिनमें तलवारके घाट उतारे गए थे।

गुजरात और चित्तौड़ की विजय

उसकी विजय. उसने पहली सैनिक कार्रवाई गुजरात के विरुद्ध की, जिसे उसने १२९८ में जीत लिया। तत्पश्चात् उसकी सेना रण-थम्भौर के दुर्गकी ओर मुड़ी। उसका पहला धावा तो व्यर्थ गया और राजपूतोंने एक साल तक दुर्गकी रक्षा की, लेकिन १३०१ में वह भी हाथ में आ गया। उसका अगला शिकार चित्तौड़गढ़ बना, जिस पर लम्बे घेरे के बाद उसने अधिकार कर लिया। ऐसा कहा जाता है कि अलाउद्दीन राना रत्नसिंह की पत्नी पद्मिनी की सुन्दरतासे बहुत आकर्षित हो गया था, और उसको अपने अधिकारमें करना चाहता था, परन्तु पद्मिनी तथा अन्य राजपूत ललनाओंने अपने सम्मानकी रक्षाके लिए चिताओंमें कूद कर प्राण दे दिए (१३०३ ई०)।

मलिक काफ़ूर की दक्षिण विजय

लेकिन उसके राज्य-काल का सबसे उल्लेखनीय संघर्ष तो दक्षिण पर चढ़ाई है। दक्षिणको विजय करनेकी अभिलाषा अलाउद्दीन में प्रारम्भसे ही थी, यह हम देख चुके हैं। दक्षिण पर अलाउद्दीन के प्रिय सेनापति मलिक काफ़ूर ने चढ़ाई की। उसका संघर्ष १३०२ से १३११ तक जारी रहा और इसी बीचमें उसने वारंगल-मैसूर का होयसल राज्य जिसकी राजधानी

द्वारसमुद्र थी, देवगिरि का यादव-राज्य और मालाबार या कारो-मंडलके किनारोंको जीत लिया। सुदूर दक्षिणके तमिल-राज्योंको इन आक्रमणोंसे बड़ा धक्का पहुंचा। पांड्योंकी प्राचीन राजधानी मदुरा में मुसलमान गवर्नर नियुक्त करके मलिक काफ़ूर सन् १३११ ई० में लूट की प्रभूत धन-राशि लेकर दिल्ली लौट आया।

उसकी नीति और शासन-प्रबन्ध. अलाउद्दीन एक विशेष प्रकार का युद्ध-वीर था। उसकी नीति थी कि देश पर दृढ़ नियंत्रण रखा जाय और उसके लिए यदि आवश्यक हो तो सभी विरोधियों और विद्रोहियों को क्रूरतापूर्वक कुचल दिया जाय। अपने राजनीतिक कार्योंमें वह धार्मिक नेताओंको दखल नहीं देने देता था। कहा जाता है कि उसने अपनी नीतिके विषयमें यह कहा था—'मैं नहीं जानता कि यह क़ानूनी है या ग़ैरक़ानूनी; जिस चीजको मैं राज्यके हितमें और परिस्थितिके उपयुक्त समझता हूं, उसे मैं अवश्य करता हूं।' दूसरे शब्दोंमें, वह अनियंत्रित सत्ताके साथ निरंकुश शासककी तरह शासन करना चाहता था। जिस समस्याको वह सुलझाना चाहता था, उसके लिए चाहे जितने कठोर उपायोंका अवलम्बन करना पड़े, वह हिचकता नहीं था। उसके राजनीतिक सिद्धान्तमें उलमा-वर्ग अथवा धार्मिक क़ानूनके दखलकी कोई गुंजाइश न थी। इस बातमें वह अपने पूर्ववर्ती सुल्तानोंसे बिलकुल भिन्न था।

उसने विद्रोहों को कैसे दबाया?

उसकी इस नीतिका सबसे अच्छा उदाहरण उसका भीतरी शासन-प्रबन्ध था। शासनके प्रारम्भिक वर्षोंमें ही लगातार इतने उपद्रव तथा विद्रोह हुए कि उसके मनमें यह बात बैठ गयी कि जनताको कड़े उपायोंसे इतना कुचल देना चाहिए कि वह पूर्ण निष्क्रिय तथा अशक्त हो जाय। (क) पहला काम उसने यह किया कि जितनी पेंशनें, वक़्फ़, जागीर और आर्थिक सहायताएं दी जाती थीं, उन सबको ज़ब्त कर लिया। किसी न किसी बहानेसे जनतासे रुपया वसूल किया जाता था। संक्षेपमें, सुल्तान अपनी प्रजाका शोषण करके उसे इतना ग़रीब बना देना चाहता था, ताकि उसकी सारी शक्ति जीविकोपार्जनमें ही लगी रहे और विद्रोह करनेकी ओर उसका ध्यान ही न जाय। (ख) दूसरे, उसने अपने राज्यमें गुप्तचरोंका जाल बिछा दिया, जो प्रजाकी गति-विधिकी गुप्त सूचना उसे लाकर देते थे। (ग) तीसरे, सामाजिक गोष्ठियों, मेल-जोल सभाओं, पारिवारिक सम्बन्धों आदिका राजनीतिक महत्त्व समझकर उसने व्यक्तिगत गोष्ठियों और सभाओं पर रोक लगा दी। इसके अतिरिक्त शराब पीने, शराब बेचने और सरदारोंके कुटुम्बों

१. ज़ब्ती

२. गुप्तचर-पद्धति

३. सभाओं, जलसों और वैवाहिक सम्बन्धों पर रोक लगा दी

में वैवाहिक सम्बन्धों पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया। उसका अनुमान था कि शराब आदि पीनेके लिए जब दस-पांच आदमी एकत्र होते हैं, तो वे उसके विरुद्ध कोई न कोई षड्यंत्र ही रचते हैं। आदर्श उपस्थित करने के लिए सुल्तानने स्वयं शराब पीना छोड़ दिया और अपने चीनी मिट्टी के बहुमूल्य बर्तनोंको फोड़ दिया। (घ) चौथी और अन्तिम बात यह कि उसने जो क़ानून बनाये उनमें से सबसे अधिक उल्लेखनीय राजनीतिक अर्थ-व्यवस्थामें किये हुए उसके प्रयोग हैं। मंगोल आक्रमणकारियोंको पीछे हटाने तथा भीतरी विद्रोहोंको दबानेके लिए उसे एक विशाल सेना की आवश्यकता थी, किन्तु उसके सामने यह समस्या थी कि कमसे कम खर्चमें अधिकसे अधिक सेना कैसे रखी जाय। अलाउद्दीन ने जिस ढंगसे इस समस्याका समाधान किया वह अपने तरहका अनूठा था। उसने जीवन-निर्वाहके लिए आवश्यक वस्तुओंके मूल्यको निम्नतम स्तर पर रखनेका निश्चय किया और घोषणा कर दी कि सभी वस्तुओंका मूल्य राज्यकी ओरसे तय किया जायगा और नियंत्रित होगा। राज्यकी ओर से ग़ल्लेके बड़े-बड़े गोदाम खोल दिये गये और आज्ञा दे दी गयी कि कुछ निश्चित संख्याके गांवोंसे मालगुज़ारी या कर द्रव्यके रूपमें नहीं, बल्कि ग़ल्ले या अन्य वस्तुओंके रूपमें लिया जायगा। इन उपायोंसे बाज़ारमें एक बनावटी मन्दी आ गयी और अलाउद्दीन के लिए थोड़े ही खर्चमें एक बड़ी सेना रखना सम्भव हो गया।

४. मूल्य-नियंत्रण

उसके उपायों का परिणाम

यद्यपि उसके ये उपाय मनमाने और तकलीफ़देह ही थे, तो भी उनसे उसका कार्य सिद्ध हो गया। उनसे देशमें शान्ति और व्यवस्था स्थापित हो गयी। मंगोलोंने भी उसे परेशान करना छोड़ दिया और विद्रोहोंका भी अन्त हो गया।

उसने हिन्दुओं को ग़रीब बनाकर अपने अधीन रखना चाहा

हिन्दुओंके प्रति उसका व्यवहार. हिन्दुओंके सम्बन्धमें उसकी नीति थी कि उनको अत्यन्त ग़रीब बना दिया जाय ताकि वे सिर उठानेका साहस न कर सकें। उसने अपने सलाहकारोंसे 'इस तरहके नियम-क़ानून बनानेको कहे, जिनमें हिन्दुओंको कुचल दिया जाय और उनको धन-सम्पत्तिसे वंचित कर दिया जाय, ताकि वे सुल्तानके विरुद्ध वैमनस्य और विद्रोह न फैला सकें।' अतीत कालसे यह परम्परा चली आयी है कि किसानोंसे उनके उत्पादनका $\frac{1}{6}$ भाग ही सरकार लेती है, किन्तु अलाउद्दीन ने हिन्दुओंसे उपजका $\frac{1}{2}$ भाग तक कर-रूपमें लेना प्रारम्भ किया। यह नीति नयी न थी, पहलेके मुसलमान शासकोंने भी हिन्दुओं पर इसी तरह अन्याय किया था, किन्तु अलाउद्दीन के साथ एक ही बात विचित्र थी कि उसने मुल्ला-मौलवियों की रायकी कोई परवाह न करते हुए

अपनी नीति कार्यान्वित की।

स्थापत्य और साहित्य. अपने पूर्ववर्ती कई सुल्तानोंकी तरह अलाउद्दीन भी स्थापत्य कलाका बड़ा प्रेमी था। उसने कई सुन्दर भवनोंका निर्माण कराया और एक नया दिल्ली नगर बसाया, जिसको 'सीरी' कहते थे। उसने क़ुतुबी मस्जिदको विस्तृत कराया और एक सुन्दर द्वार भी बनवाया। एक विशाल मीनार बनानेका काम भी उसने शुरू करा दिया था। उसकी इच्छा थी कि यह क़ुतुबमीनार से भी बढ़कर हो, लेकिन वह उसे पूरा न करा सका। विद्वानोंका वह बहुत समादर करता था, विशेषतया कवि अमीर ख़ुसरो का।

अलाउद्दीन के अन्तिम दिन. सुल्तानके अन्तिम दिन संकटों और दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओंके कारण बड़े अशान्तिमय बीते। उसका स्वास्थ्य बिगड़ गया और वह अपने सर्वप्रिय सेनापति काफ़ूर के द्वारा उकसायी गई शंकाओंका शिकार हो गया। इसका कारण था कि उसके कानोंमें काफ़ूर के सम्बन्धमें तरह-तरहकी भ्रमात्मक बातें भरी जाती थीं। मलिक काफ़ूर को इस तेज़ीके साथ उन्नति करते हुए देखकर अन्य सरदारों में ईर्ष्या-द्वेष जाग्रत् हो उठे और इससे फूट उत्पन्न हुई। काफ़ूर के प्रभाव से कई दरबारियोंको फांसीकी सजा दी गयी या उनको गिरफ़्तार कर लिया गया। गुजरात और दक्षिणमें विद्रोहकी आग सुलग रही थी; उधर राजपूतोंने चित्तौड़ पर भी अधिकार कर लिया। इन्हीं सब परेशानियों के बीच अलाउद्दीन का सन् १३१६ में देहान्त हो गया।

मलिक काफ़ूर का प्रभाव

विद्रोह

अलाउद्दीन का मूल्यांकन. यद्यपि वह निरंकुश और धर्मान्ध था तो भी सुयोग्य और शक्तिशाली शासक था। उसमें एक क्रियाशील राजनीतिज्ञके गुण विद्यमान थे। जो कुछ वह करता था, वह बहुत ठीक तथा व्यापक होता था। परिस्थितिकी आवश्यकताको पूरा करनेका उसका ढंग बहुत उतावला और भोंडा रहता था। यह उसके निरंकुश शासक होनेका ही परिणाम था। काम करनेका उसका तरीका चाहे कितना ही कठोर और क्रूर हो, लेकिन उनसे उसका काम निकल जाता था। इसलिए उसके भीतरी क़ानून यद्यपि मनमाने और अन्यायपूर्ण थे तो भी उनसे राज्यमें शान्ति और व्यवस्था बनाये रखनेमें उसे बड़ी सहायता मिली। मंगोलोंके आक्रमणको रोकनेके साथ-साथ उसने आन्तरिक विद्रोह और षड्यंत्रोंका भी दमन किया। वह एक सुयोग्य सेनापति था और सम्भवत: उसके शासन-कालका सबसे बड़ा कार्य था दक्षिणकी विजय। यह उसके प्रिय सेनापति मलिक काफ़ूर का कार्य था, लेकिन हम कह सकते हैं कि पहिले अलाउद्दीन ने ही देवगिरि पर आक्रमण करके

निरंकुश होते हुए भी वह योग्य शासक था

दक्षिणकी विजय उसके राज्य-काल की महत्त्वपूर्ण घटना थी

उधरका रास्ता दिखाया था। किन्हीं अंशोंमें वह महत्त्वाकांक्षी भी था। वह विश्व-विजय करने और सिकन्दर के गौरवको प्राप्त करनेका स्वप्न देखा करता था। उसने सोचा था कि वह दिग्विजयके बाद एक सिक्का चलायेगा, जिसमें उसके नामके आगे द्वितीय सिकन्दर लिखा रहेगा। वह एक नये मज़हबका पैग़म्बर भी होना चाहता था, लेकिन यह भी एक सौभाग्य ही कहना चाहिए कि उसमें इतनी बुद्धिमानी थी कि उसने अपनी 'कल्पनाओं' को चरितार्थ करनेकी चेष्टा नहीं की। इस सम्बन्ध में यह अपढ़ सुल्तान उस विद्वान् सुल्तान—मुहम्मद बिन तुग़लक—से चतुर सिद्ध हुआ, क्योंकि मुहम्मद की स्वप्निल योजनाओंके कारण जनता को असीम तथा अकथनीय कष्ट उठाने पड़े।

उसकी महत्त्वाकांक्षा

अलाउद्दीन के उत्तराधिकारी—खिलजी-वंश का पतन

अलाउद्दीन के मरते ही उसके साम्राज्यमें सत्ता हथियाने की होड़ शुरू हो गयी। अस्थायी रूपसे सरकार पर मलिक काफ़ूर ने अधिकार कर लिया था और मृत सुल्तानके एक छोटे-से शिशुको गद्दी पर बैठा दिया था। उसके अभिभावकके रूपमें काफ़ूर के हाथमें सर्वोच्च सत्ता आ गयी थी। उसने सुल्तानके बड़े लड़के खिज्रखां को अन्धा बना दिया और राजघराने के अधिकाश व्यक्तियोंको कैद कर लिया था। वह और भी अत्याचार करता, किन्तु महलके गुलाम पहरेदारोंने उसकी जीवनका डोर काट दी। अभिभावकके रूपमें उसने केवल ३५ दिनों तक शासन किया।

मलिक काफ़ूर ने सर्वोच्च सत्ता हथिया ली

क़ुतुबुद्दीन मुबारक. अलाउद्दीन का दूसरा पुत्र मुबारक, जो किसी प्रकार काफ़ूर के विनाश-चक्रसे बच निकला था, गद्दी पर बैठाया गया। उसने बड़े उत्साहसे शासन करना प्रारम्भ किया। उसके एक अफ़सरने गुजरात से अधीनता मनवा ली। वह स्वयं दक्खिनकी ओर चला और उसने देवगिरि के राजा हरपाल को हरा दिया। हरपाल ने उसके विरुद्ध विद्रोह किया था। क़ुतुबुद्दीन ने इसका दंड उसको जीवित जलाकर दिया। वापस लौटकर वह भी राग-रंगमें डूब गया। उसके शासन-कालमें दिल्ली दुर्गुणोंका अड्डा बन गयी थी। शाही दरबारकी इस पतनावस्थासे सभी गम्भीर और नीतिनिष्ठ व्यक्तियोंको बड़ी ग्लानि होती थी। सुल्तानने राज्यका सारा काम-काज एक नीची जातिके हिन्दूसे मुसलमान बने हुए व्यक्ति पर छोड़ दिया था। खुसरोखां की उपाधि देकर उसको उसने अपना सरदार बना लिया था। यह व्यक्ति सुल्तानके सभी दुर्गुणों और पापों में साथ देता था। अन्तमें १३२० में उसने अपने निकम्मे स्वामीकी

उसके प्रारम्भिक कार्य

उसकी हत्या

हत्या कर दी और गद्दी पर अधिकार जमा लिया।

खुसरोखां. खुसरोखां ने अपने हाथमें आयी राजकीय सत्ताका बड़ी निर्लज्जतापूर्वक दुरुपयोग किया। उसने अपने चारों ओर गुंडों और बदमाशोंको जमा कर लिया और पांच महीने तक दिल्ली नरक-तुल्य हो गयी। खुसरोखां मुसलमानोंकी अपेक्षा हिन्दुओंके साथ अच्छा बर्ताव करता था, लेकिन यह रक्तपात और हिंसाके कार्य अधिक समय तक नहीं टिक पाये। पंजाब के गवर्नर "ग़ाज़ीखां तुग़लक़" ने राज्यके पुराने सरदारोंको अपनी ओर मिलाकर खुसरो को १३२० में हरा दिया और मार डाला। वह खिलजी-वंशके किसी व्यक्तिको ही राजमुकुट सौंपना चाहता था, लेकिन कोई बचा न था, इसलिए सरदारोंने उसे ही रिक्त सिंहासनके लिए सुल्तान निर्वाचित कर लिया और ग़ाज़ी तुग़लक़ 'ग़यासुद्दीन तुग़लक़' के नामसे सन् १३२१ में सुल्तान हो गया।

खुसरोखां ने सत्ता हथिया ली

ग़यासुद्दीन तुग़लक़ ने खुसरो को हरा दिया और सुल्तान बन गया

अध्याय ६

तुग़लक़-राजवंश

ग़यासुद्दीन तुग़लक़ शाह. उसका पिता बलबन का एक तुर्क गुलाम था और माता हिन्दू जाटिनी थी। खिलजी सुल्तानोंके राज्य-कालमें उसने अपनेको योग्य और विश्वासपात्र सैनिक प्रमाणित कर दिया था। जिन दिनों वह पंजाब का गवर्नर था, उसने मंगोलोंको पीछे हटाकर बड़ा भारी काम किया। जब उसे राजगद्दी मिल गयी, तब उसने लोगोंके विश्वास और आशा के अनुकूल ही अपनेको सिद्ध किया। वह न्यायप्रिय तथा प्रतापी शासक था। उसके दृढ़ शासनमें सर्वत्र शान्ति और व्यवस्था रही। दिल्ली के निकट उसने एक मजबूत क़िला बनवाया, जिसे तुग़लक़ाबाद कहते थे। मंगोलोंके लगातार आक्रमणोंको रोकनेके लिए उसने उत्तर-पश्चिमी सीमा-प्रदेशमें रक्षात्मक साधनोंकी वृद्धि कर दी। उसने अपने पुत्र जूनाखां को दक्षिणमें भेजा, क्योंकि अलाउद्दीन द्वारा जीते हुए दक्षिण के राज्योंने हालके उपद्रवोंसे लाभ उठाकर दिल्ली की अधीनतासे अपने को मुक्त मान लिया था। जूनाखां का प्रथम अभियान तो असफल रहा और वारंगल के सामने उसे पीछे हटना पड़ा, किन्तु उसका दूसरा अभियान सफल रहा और उसने बीदर और वारंगल दोनों पर अधिकार कर लिया। इसी बीच सुल्तान स्वयं बंगाल पर चढ़ दौड़ा और उस पर उसने अपना प्रभुत्व स्थापित किया। उसने उत्तराधिकारके एक झगड़ेका निपटारा कराया और सुनारगांव (ढाका) तक बढ़ गया। वहांसे लौटते समय उसने रास्तेमें तिरहुत पर भी अपनी पताका फहरा दी। अपने पिताका स्वागत करनेके लिए जूनाखां ने एक बारादरी खड़ी करवायी, लेकिन बारादरीकी छत गिर पड़ी और ग़यासुद्दीन उसीमें दबकर मर गया। यह माननेके कई कारण हैं कि बारादरीकी छत अचानक नहीं गिरी, बल्कि जूनाखां ने अपने पिताकी जान-बूझ कर हत्या करनेकी दृष्टिसे यह समारोह किया था। मृत सुल्तानका शव तुग़लक़ाबाद (जो बहुत शानदार मजबूत क़िला था) के भीतर उसीके द्वारा बनवाये हुए विशाल मकबरेमें दफ़न किया गया (१३२५ ई०)।

वह योग्य और भला शासक था

उसके पुत्र जूनाखां का दक्षिण पर हमला

ग़यासुद्दीन का बंगाल पर आक्रमण

उसकी मृत्यु

मुहम्मद बिन तुग़लक़ (१३२५-१३५१)

जूनाखां, जो मुहम्मद बिन तुग़लक़के नामसे अधिक प्रसिद्ध है, सन् १३२५ में अपने पिता ग़यासुद्दीन तुग़लक़ की मृत्यु (या हत्या) के बाद गद्दी पर बैठा। राज्यारोहणके लिए उसे संघर्ष नही करना पड़ा। अलाउद्दीन की तरह उसने भी सोना-चांदी वितरण करके लोगोंका समर्थन प्राप्त कर लिया।

उसका चरित्र. मुहम्मद बिन तुग़लक़ सम्भवत: मध्यकालीन भारत का सबसे अधिक उल्लेखनीय व्यक्ति है। उसके चरित्रको 'विरोधी वृत्तियों का मिश्रण' कहना सर्वथा उपयुक्त जान पड़ता है। हृदय और बुद्धिके अनेक सद्‌गुणोंसे विभूषित रहते हुए भी वह भारतवासियोंके लिए ईश्वर का प्रकोप ही सिद्ध हुआ। वह उच्चकोटिकी विद्वान्, सुन्दर लेखन-कला का विशेषज्ञ और धाराप्रवाह वक्ता था। तर्क-शास्त्र और यूनानी दर्शन-शास्त्रका प्रकांड ज्ञाता होते हुए भी वह गणित और भौतिक विज्ञानमें भी बहुत रुचि लेता था। अरबी और फ़ारसी भाषामें लिखे उसके जो पत्र मिले हैं, उनसे उनके निबन्ध-कला-कौशल पर प्रकाश पड़ता है। उसकी स्मरण-शक्ति अद्‌भुद् और जिज्ञासा असीम थी। वह नेक मुसलमान था और नियमित रूपसे नमाज़ पढ़ता था। व्यक्तिगत जीवनमें वह गम्भीर प्रकृतिका व्यक्ति था। वह मज़हबका पाबन्द और नैतिकताका पालक था। शराब तो वह छूता तक न था। व्यवहारिक दया-धर्मको भी वह नहीं भूला था। उसने अपने राज्यमें अस्पताल और धर्मशालाएं स्थापित करवायीं। अपनी उदारताके लिए वह प्रसिद्ध था। युद्ध-काल में उसकी वीरता और क्रियाशीलता देखते बनती थी।

वह परस्पर विरोधी वृत्तियोंका सम्मिश्रण था

उसके कार्य

फिर भी यह सब महान् गुण उसको व्यर्थ ही मिले थे, क्योंकि वह बड़ी डावांडोल चित्तवृत्तिका मनुष्य था और उसका निर्णय प्राय: इतना गलत हुआ करता था कि कभी-कभी तो उसके खब्ती होनेका सन्देह हो जाता था। 'उसका सारा जीवन काल्पनिक योजनाओंको पूरा करनेमें ही बीता। उनके लिए उसने जिन साधनोंका प्रयोग किया, वे भी अव्यवहारिक थे; साथ ही उनके कारण उसकी प्रजाको कितना कष्ट उठाना पड़ता था, इसका उसने कभी ख़्याल नहीं किया।' परिणाम यह हुआ कि उसका शासन-काल अमानुषिक अत्याचारोंका समय सिद्ध हुआ और दिल्ली का साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया।

बुद्धिका दुरुपयोग

प्रारम्भिक कठिनाइयां. शासनके प्रारम्भिक दिनोंमें सुल्तानको लगातार कई कठिनाइयां उठानी पड़ीं। १३२७ ई० में मुल्तान के गवर्नर ने विद्रोह किया, लेकिन वह दबा दिया गया। उसी सालमें तरमाशीरीं के नेतृत्वमें एक शक्तिशाली मंगोल-सेनाने दिल्ली पर चढ़ाई कर दी, किन्तु

मंगोलोंका आक्रमण

काफ़ी धन देकर इस खतरेको उसन टाल दिया।

उसके पागलपनके कार्य. सुल्तानने कई बेतुकी योजनाएं लागू कीं, जिनसे उसके पागलपनका प्रमाण मिलता है। इसमे उसकी प्रजाको अकथनीय कष्ट उठाने पड़े। वे योजनाएं ये थीं—

१. **राजधानी बदलना.** उसकी किसी भी झक्की योजनासे प्रजा को इतनी विपत्ति न झेलनी पडी, जितनी राजधानी बदलनेकी योजना से। वह दिल्लीसे राजधानीको देवगिरि ले जाना चाहता था, जिसका नाम उसने दौलताबाद' रखा था। यों तो एक केन्द्रीय स्थान पर राजधानी रखनेका विचार अनुचित न था। अगर वह केवल सरकारी कार्यालय, कचहरियां आदि बदलकर ही सन्तोष कर लेता तो उसकी यह योजना व्यवहारिक और बुद्धिसंगत होती, परन्तु वह तो चाहता था कि दिल्ली को सारी जनता सामूहिक रूपसे निष्क्रमण करके दौलताबाद में जा बसे। उसने अपने आदेशका पालन इतनी क्रूरतासे करवाया कि दिल्ली वीरान हो गई और 'शहरमें एक कुत्ता, बिल्ली तक न रह गई'। उसकी सारी योजना असफल हो गई, क्योंकि रास्तेमें ही हज़ारों नागरिकोंने अपने प्राणोंसे हाथ धो लिए। जो जीवित अवस्थामें दौलताबाद पहुंचे भी, वे इतने दुःखी थे कि सुल्तानको पुन: दिल्ली लौटने की आज्ञा देनी पडी, लेकिन उनमें से बहुत थोड़े-से व्यक्ति दिल्ली तक पहुंच पाये। 'दौलताबाद शक्तिके दुरुपयोगका ज्वलन्त स्मारक था।' फ़रिश्ता के कथनानुसार सुल्तान ने १३४० में दिल्ली की आबादी को एक बार फिर स्थानान्तरित किया था।

वह राजधानी को देवगिरि ले जाना चाहता था, बिना इस बातका ख्याल किये कि उससे जनता को कितना कष्ट उठाना पड़ेगा

टिप्पणी. स्मिथ का विचार है कि सुल्तानने यह कार्य बदला लेनेकी भावनासे किया था। वह कहता है कि सुल्तान दिल्ली के निवासियोंको दंड देना और उनके नगरको बरबाद करना चाहता था, क्योंकि उन्होंने उसके दरबार-आममें कुछ ऐसे पर्चे फेंके थे, जिनमें उसकी नीतिकी कटु आलोचना की गई थी।*

---

* अनुवादकीय टिप्पणी. कुछ इतिहासकारोंका यह भी विचार है कि पूरी दिल्ली कभी खाली नहीं कराई गई। थोड़े समयके लिए दो राजधानियां रहीं—एक दिल्ली, दूसरी दौलताबाद (देखिये डॉ० मेंहदी हुसेन का 'मुहम्मद तुग़लक़')। डॉ० स्मिथ का उपर्युक्त वक्तव्य इब्नबतूताके वक्तव्य पर अवलम्बित है परन्तु याद रखना चाहिए कि जब राजधानी बदलने की योजना अमलमें आई उस समय बतूता यहां न था। उसने बहुत-सी ऐसी बातें लिखी हैं जो केवल 'चंडूखानेकी गप्प' ही समझी जा सकती हैं।

२. **विजयकी दुर्दान्त योजनाएं**. अलाउद्दीन की तरह मुहम्मद बिन तुग़लक़ भी विश्व-विजयके स्वप्न देखा करता था। अत: उसने फ़ारस को अपने आधिपत्यमें लानेके लिए एक विशाल सेनाका संगठन किया। लेकिन वह सेना किसी काम न आयी; वेतन न मिलनेके कारण वह आस-पासकी जनताको लूटते-पाटते स्वयं भंग हो गयी। इसके पश्चात् सन् १३३७ में उसके दिमाग़में चीन को जीतनेका फ़ितूर सवार हुआ। इसके लिए भी उसने एक बड़ी सेना सग्रह की, लेकिन हिमालय की घाटियोंमें उसकी बड़ी दुर्दशा हुई; चीनियोंने भी उसका प्रतिरोध बहुत डटकर किया। परिणाम यह हुआ कि मुहम्मदकी सारी सेना बेमौत मारी गयी। जो थोड़े-से व्यक्ति इस आपदासे बचकर अपनी दुर्दिनकी कहानी सुनाने दिल्ली लौटे उनको रक्तपिपासु सुल्तानने क़त्ल करवा दिया। फरिश्ता के इस वर्णनकी पुष्टि मुहम्मद का समकालीन इतिहासकार बर्नी नहीं करता है। उसका कहना है कि सुल्तानने चीन को विजय करने के लिए कोई फ़ौज नहीं भेजी। हिमालय की तराई-प्रदेशमें कराजल या काराचल के सरदारने विद्रोह खड़ा कर दिया था। उसको दबानेके लिए सुल्तान ने फ़ौज भेजी थी। कराजल हिन्दुस्तान तथा चीन के बीचमें स्थित बतलाया जाता है।

फ़ारस और चीन को जीतनेकी उसकी योजनाएं असफल हो गई

उसका भीतरी शासन. उसके भीतरी शासन पर भी इसी अस्थिर बुद्धिका प्रभाव झलकता है। (१) सुल्तानकी बेतुकी और अव्यवहारिक योजनाओंके कारण राज्यका कोष खाली हो चुका था उसको भरनेके लिए उसने चीनी सम्राट् द्वारा चलाये गये काग़ज़के नोटोंकी देखादेखी अपने राज्यमें तांबेके सांकेतिक सिक्के चलाये। एक शाही फ़रमानके द्वारा उसने तांबेके सिक्कोंको गढ़नेकी आज्ञा दे दी और उसका मूल्य प्रचलित चांदीके 'टंक' के बराबर निर्धारित किया, लेकिन उसने इस बातकी रोक-थाम न रखी कि ये सिक्के केवल सरकारी टकसालमें ही बनें और व्यक्तिगत रूपसे न बनाये जा सकें। फलत: अनधिकृत सिक्कोंकी भरमार हो गयी। प्रत्येक घरमें सिक्के ढाले जाने लगे और उसकी योजना बहुत बुरी तरह असफल रही। राज्यकी आय पर इसका बड़ा प्रभाव पड़ा। सरकारी ख़ज़ानेको बड़ा नुक़सान हुआ, वह बहुत कुछ ख़ाली हो गया। लोगोंने अपने कर और प्रान्तोंने अपने नज़राने भी इन्हीं तांबेके सिक्कोंके रूपमें चुकाने शुरू किये, लेकिन वे सिक्के भी लाखोंकी संख्यामें ग़ैरसरकारी तौर पर बनाये गए थे। राज्यका वैदेशिक व्यापार ठप हो गया, क्योंकि उसके ख़ज़ानेकी साख जाती रही। जहां पर सुल्तानका प्रभुत्व न होता, वहां उसके सिक्के स्वीकार नहीं किये जाते थे। जब उन तांबेके सिक्कों

मनमाने मूल्य पर तांबेके सिक्कोंका प्रचलन

योजना असफल सिद्ध हुई

का मूल्य मिट्टीकी डलियोंके बराबर भी न रहा, तब सुल्तानने आज्ञा दी कि सिक्के लौटा लिए जायें। उन अनपेक्षित सिक्कोंके ढेरके ढेर तुग़लक़ाबाद में इकट्ठे हो गये।*

भारी कर लगाये गये

(२) दमनकारी कर. अपने तांबेके सिक्कोंकी असफलतासे चिढ़कर सुल्तानने जनता पर कर बढ़ाकर अपने खज़ानेको भरनेका निश्चय किया। उसने इतना अधिक कर वसूल किया और कर-संग्रहका ढंग इतना कठोर रखा कि गंगा और यमुना के बीचकी भूमि—दोआब—के निवासी वस्तुतः भिखारी हो गये। जिन लोगोंके पास थोड़ी शक्ति थी, उन्होंने विद्रोह कर दिया; किसान जंगलोंमें जा छिपे। लेकिन वहां उन बेचारोंका जंगली पशुओंकी तरह घेरा डाल कर शिकार किया गया।†

मनुष्योंका शिकार किया गया

खेती बरबाद हो गयी

उसकी नीतिके परिणाम. मनमाने ढंगसे किसानोंसे कर वसूल करनेका परिणाम यह हुआ कि खेती बरबाद हो गयी और लोग ग़रीब हो गये। उसके असह्य अत्याचारोंने प्रान्तीय गवर्नरों और हिन्दू सामन्तों को विद्रोही बना दिया। इससे साम्राज्यकी जड़ हिल उठी और दिल्ली की सल्तनतका पतन प्रारम्भ हो गया। कुछ विद्रोहोंको सुल्तानने अपने

*अनुवादकीय टिप्पणी. इस सम्बन्धमें यह याद रखना आवश्यक है कि सुल्तानने प्रजाको नुकसान पहुंचानेका प्रयत्न नहीं किया। तांबेके सिक्कोंके बदलेमें प्रजाको चांदीके सिक्के दिये गये। अतः यह कहना कि केवल रिक्त-कोषको भरनेके लिए ये सिक्के चलाये गये थे ठीक न होगा। जैसा डा० ईश्वरी प्रसादने लिखा है, उस समय देशमें चांदी की कमी थी। उसीको ठीक रखनेके लिए यह योजना प्रचलित की गई थी। डा० ब्राउन का कहना है कि मुहम्मद तुगलक राजस्व तथा रुपया सम्बन्धी समस्याओंको भली-भांति समझता था, इसलिए उसने इस सम्बन्धमें कई प्रकारके सुधार किये थे जो सफल भी हुए, इसलिए सुल्तान को ब्राउन साहबने 'प्रिंस ऑफ मोनियर्स' की उपाधि दी है।

†अनुवादकीय टिप्पणी. उपर्युक्त वर्णन इकतरफा है। यह ठीक है कि सुल्तानने दोआब पर कर वृद्धि की, परन्तु हमको यह भी न भूलना चाहिए कि अभाग्यसे उसी साल अकाल पड़ गया और किसान बढ़ा हुआ कर देनेमें असमर्थ रहे थे। सरकारी अफसरोंने इस पर भी उनसे कर वसूलनेका प्रयत्न किया, जिससे प्रदेशमें गड़बड़ी मच गयी। परन्तु जब सुल्तानको इस बातका पता चला तो उसने किसानोंके फ़ायदेके लिए रुपया बांटा और बीजका भी इन्तिज़ाम किया। यह नितान्त अतिशयोक्ति है कि किसान घेर घेर कर मारे गये।

क्रूर ढंगसे, जिसके लिए वह प्रसिद्ध हो चुका था, दबा दिया। उसके भतीजे बहाउद्दीन ने विद्रोह किया; सुल्तानने उसे पकड़वा कर जीते जी उसकी खाल उधड़वा ली। इस तरहकी क्रूरताओंसे कोई कार्य सिद्ध नहीं होता। चारों ओर विद्रोहकी आग भड़क उठी। बंगाल, मालाबार, बिहार, देवगिरि और गुजरात ने खुला विद्रोह कर दिया। साम्राज्य टुकड़े-टुकड़े होकर बिखरने लगा। सुल्तानकी बहुत-सी शक्ति तो उसकी झक्की योजनाओंको कार्यान्वित करनेमें नष्ट हो चुकी थी, इसलिए वह असन्तोष और विद्रोहकी इस भड़कती बहुमुखी आगको दबा पानेमें असमर्थ था। बंगाल ने अपनेको स्वतंत्र घोषित कर दिया। सुल्तानने मालाबार के गवर्नरको दबानेको कोशिश की लेकिन सफलता न मिली। बंगाल और दक्षिण निश्चित रूपसे साम्राज्यसे अलग हो गए।

प्रान्तोंका विद्रोह

बंगाल और दक्षिण साम्राज्यसे बाहर हुए

अकाल. सन् १३४१ के लगभग मालवा और दिल्ली मे भयंकर अकाल पड़ा। अत्यधिक कर और कुशासनके कारण कृषिको बहुत हानि पहुंची थी। लेकिन इस बातके लिए हमे सुल्तानकी प्रशंसा करनी चाहिए कि उसने अपनी कुछ ग़लतियोंको सुधारनेकी पूरी कोशिश की। उसने करको घटाकर न्यायोचित स्तर पर पहुंचा दिया और दिल्ली के लोगों में नित्य खाद्य-वितरण (राशनिंग) की व्यवस्था कर दी। इसके अतिरिक्त किसानोंको सरकारी क़र्ज देनेका भी उचित प्रबन्ध उसने किया, परन्तु अफसरमिनिस्टरोंकी बेईमानी और जनताकी पायमालीके कारण उस ऋणका समुचित उपयोग न हो सका।

खलीफ़ा के सामने आत्मसमर्पण. चारों ओरके विद्रोहोंसे थककर अन्तमें मुहम्मद बिन तुग़लक ने एक महान् व्यक्ति—खलीफ़ा—की छत्र-च्छाया प्राप्त करनेका प्रयत्न किया। काहिरा के अब्बासी वंशके खलीफ़ा ने उसे हिन्दुस्तान का धार्मिक राजा मान लिया। उसने खलीफ़ाके दूतका स्वागत सम्मानपूर्वक किया और एक समारोहमे विधिवत् अपनी पद-स्वीकृति करा ली। उसने मुद्राओं परसे अपना नाम हटाकर खलीफ़ा का नाम प्रचलित कर दिया।

उसकी मृत्यु. मुहम्मद बिन तुग़लक़ के जीवनके अन्तिम दिन चारों ओर होनेवाले विद्रोहोंको दबानेमे ही बीते। उसने बड़ी क्रियाशीलता और सतर्कता का परिचय दिया तथा किन्हीं अंशोंमें विद्रोहोंको दबाने में सफल भी हुआ। १३५० ई० मे उसने गुजरात में उपद्रवोंको शान्त किया। सन् १३५१ में एक विद्रोहीका पीछा करते हुए वह सिन्ध में 'ठट्टा' नामक स्थानके निकट मर गया।

विद्रोह

मुहम्मद बिन तुग़लक़ का मूल्यांकन. अपने शासनके प्रारम्भिक

उसके राज्यारोहणके समयके साम्राज्य-बिस्तारसे उसकी मृत्यु के समयके साम्राज्य-विस्तारकी तुलना

वर्षोंमें मुहम्मद तुग़लक़ एक इतने विस्तृत, समृद्धिशाली साम्राज्यका सुल्तान था, जितना उसके किसी पूर्व सुल्तानके पास न था। एक तत्कालीन लेखकके कथनानुसार उसके राज्यमें २३ प्रान्त थे, जो उत्तर-पश्चिममें पंजाब से लेकर पूर्वमें बंगाल तक और दक्षिणमें मैसूर के कुछ भाग तथा मालाबार या कारोमंडल-तट तक फैले हुए थे। औरंगज़ेब को छोड़कर दिल्ली के अन्य किसी बादशाहके अधिकारमें इतना बड़ा साम्राज्य नहीं रहा। यह भी एक भाग्यका फेर है कि मुहम्मद बिन तुग़लक़ की-सी योग्यता के व्यक्तिके सुल्तान रहते साम्राज्य टुकड़े-टुकड़े होकर विशृंखल होने लगा। वह दिल-दिमाग़का अच्छा आदमी था और अच्छा सैनिक तथा उदार मुसलमान भी था। फिर भी उसके शासन-कालमें बंगाल और दक्षिणका सम्बन्ध दिल्ली से बहुत-कुछ छूट चला। उसकी मृत्युके समय उसके साम्राज्यकी कड़ियां प्रायः बिखर चुकी थीं, जनता गरीब और विद्रोही हो चुकी थी।

उसके चरित्र के इस विरोधाभास का कारण क्या था?

सुल्तानके विषयमें एक तथ्यपूर्ण बात यह थी कि उसका मस्तिष्क असन्तुलित था, इसलिए वह किसी कार्यके औचित्यका अनुमान भली प्रकार नहीं कर पाता था। इसके अतिरिक्त उसमें अहंकारकी भावना भी प्रबल थी और इसके कारण अपने कार्यक्रमके कार्यान्वित होनेमें विलम्ब होना उसे बिलकुल सह्य न था। वह यह भूल जाता था कि उसकी नवीन योजनाओंको इतनी शीघ्रतासे लागू करनेके कारण जनताको अकथ कष्ट उठाने पड़ते थे। यही कारण हुआ कि उसकी सारी योजनाएं असफल रहीं। असफलताके कारण उसमें निराशा उत्पन्न होती थी, जो उसे झक्की अथवा पागल बना देती थी और उसी क्रोधमें वह ऐसे-ऐसे कार्य कर बैठता था, जिन्हें लिखते क़लम भी कांपती है। वास्तवमें यह विश्वास नहीं होता कि जो व्यक्ति इतने क्रूर कृत्य कर सकता था उसने किस तरह अस्पताल, धर्मशालाएं बनवायी होंगी, कैसे अकाल-पीड़ितोंकी पीड़ा कम की होगी और कैसे इतना सादा एवं पवित्र जीवन बिताया होगा। परन्तु जहां उसकी क्रूरता इतिहासका एक सत्य है, वहां उसकी उदारता और सच्चरित्रता भी सत्य है। यह तो निश्चित रूपमें कहा जा सकता है कि उसकी सारी योजनाए बुरी और अव्यावहारिक न थीं। केन्द्रीय राजधानी और नाममात्रकी लाक्षणिक मुद्रा-प्रणाली की उसकी योजनाएं भी ग़लत न थीं। लेकिन जिस ढंगसे वह अपनी योजनाओंको कार्यान्वित करता था, उससे उसकी अधीर और असन्तुलित बुद्धिका परिचय मिलता है। उसकी मनःस्थिति एक अध्ययनकी वस्तु है और जैसा कि बदायूंनी ने उसके बारेमें कहा है—'वह विरोधी तत्त्वों

का मिश्रण था।' उसका जीवन 'अपने-आपसे पराजित उच्चाकांक्षाओं की करुण कहानी था।'

इब्नबतूना का लेख. इब्नबतूना मूर जातिका एक यात्री था, जो मुहम्मद बिन तुग़लक़ के दरबारमें बहुत दिनों तक रहा था और पांच वर्ष तक उसकी नौकरी भी कर चुका था। संयोगसे मुहम्मद तुग़लक़ ने उसे चीन के राजाके यहां अपना राजदूत बनाकर भेजा, लेकिन कालीकटसे बहुत दूर जहाज़-दुर्घटना हो जानेके कारण वह उत्तरी अफ़्रीका में अपने जन्म-स्थान फ़ेज़ लौट गया। उसने मुहम्मद तुग़लक के विषयमें जो विचार प्रकट किये हैं, वे व्यक्तिगत अनुभवों पर आधारित हैं, इसलिए उनको प्रामाणिक माना जा सकता है। उसके कथनकी अधिकांश बातों का समर्थन तत्कालीन इतिहासकार जियाउद्दीन बर्नी ने भी किया है।

मुहम्मद बिन तुग़लक़ के विषयमें उसकी सम्मति और देश-दशाका वर्णन

इब्नबतूना ने सुल्तानके उन विशेष गुणों पर प्रकाश डाला है, जिनके कारण उसे 'विरोधी तत्त्वोंका मिश्रण' कहा जाता है। वह कहता है—'सुल्तान उन लोगोंमें से है जो दान देना और खून बहाना दोनों ही पसन्द करते हैं। उसके द्वार पर सदा एक न एक ऐसा भिखारी खड़ा मिलेगा, जिसको सुल्तानने कोई न कोई सहायता पहुंचायी हो; परन्तु साथ ही वहीं एक लाश भी पड़ी दिखायी देगी, जिसके प्राण सुल्तानकी क्रोधाग्निके शिकार हुए होंगे।' इस यात्री ने आगे कहा है कि सुल्तान सादा और नियमित जीवन व्यतीत करता था, समय पर नमाज़ पढ़ता था और मजहबका बहुत पाबन्द था। उसकी असीम उदारता और बेहद बेरहमीके बारेमें भी उसने लिखा है। देवगिरि में राजधानी हटा ले जाने पर दिल्ली किस तरह जनहीन हो गयी थी, इसका वर्णन भी उसने किया है। उसने बताया है कि राज्यमें अशान्ति रहती थी, जिसके कारण यात्रा निरापद नहीं रह गयी थी, लेकिन एक अच्छी बात भी उसने लिखी है कि स्थान-स्थान पर पैदल और घुड़सवार पुलिसकी चौकियां स्थापित थीं।

फ़ीरोजशाह (१३५१-१३८८)

सिंहासनके एक बनावटी हकदारका दमन

उसका राज्यारोहण. मुहम्मद बिन तुग़लक़के देहान्तके बाद उसकी सेना सिन्ध में नेता-विहीन हो गयी। इस स्थितिका लाभ उठाकर सिन्ध के विद्रोहियोंने उसकी बड़ी दुर्गति की। मंगोल डाकुओंने भी उसे बड़ा कष्ट दिया। इस विपत्तिके समय सेनाके अफ़सरोंने मृत सुल्तान

के चचेरे भाई फ़ीरोज़शाह को राजगद्दी पर बैठानेके लिए निर्वाचित कर लिया। फ़ीरोज़शाह ने यह सम्मान बड़ी अनिच्छापूर्वक स्वीकार किया। राजमुकुट उसके सिर पर एक प्रकारसे थोपा गया। बड़ी कठिनाईसे वह सेनाको दिल्ली ला पाया। इस बीच कुछ सरदारोंने एक लड़केको स्वर्गीय सुल्तानका बेटा बताकर गद्दी पर बैठानेका आयोजन कर रखा था, लेकिन फ़ीरोज़ के दिल्ली पहुंचते ही उनकी योजना तीन-तेरह हो गयी। तबसे सैंतिस वर्षों तक फ़ीरोज़ ने शान्तिपूर्वक शासन किया।

वह अच्छा और दयालु शासक था

उसका चरित्र. दिल्ली के सुल्तान अपनी क्रूरता, अत्याचार और चरित्रहीनताके लिए बदनाम हो गये थे, किन्तु फ़ीरोज़ का शासन उस निन्दनीय परम्परासे अलग छंटकर दिखाई देता है। फ़ीरोज़ दयालु और पवित्र आचरणका व्यक्ति था। वह विजयके गौरवसे शान्तिकी कलाको अधिक पसन्द करता था। उसके नरम शासन और उसकी सहृदयताने प्रजाको, जो उसके भाईके कुकृत्योंके कारण पीड़ासे कराह रही थी, सुख-शान्ति तथा समृद्धि दी।

बंगाल और दक्खिनकी स्वतंत्रता स्वीकार कर लेना

उसकी शासन-कालकी राजनीतिक घटनाएं. फ़ीरोज़ ने बंगालको पुन: दिल्ली के आधिपत्यमें लानेकी चेष्टा की। उसने दो बार बंगाल के राजा पर चढ़ाई की, लेकिन वह उसका बाल बांका न कर सका। अत: सन् १३६० ई० में उसने बंगाल के राजासे शान्ति-समझौता कर लिया, जिसके अनुसार बंगाल को स्वतंत्र मान लिया गया। बहमनी-सुल्तानके राजदूतको अपने दरबारमें स्थान देकर उसने उसकी स्वतंत्रता भी अप्रत्यक्ष रूपसे स्वीकार कर ली। तत्पश्चात् उसकी दृष्टि सिन्ध की ओर गयी। ठट्टा को वह पुन: जीतना चाहता था। उसका पहला आक्रमण तो निष्फल रहा, किन्तु दूसरे आक्रमणमें उसने काफ़ी दिनों तक घेरा डालकर ठट्टा के राजा «जाम» को भूखों मार डाला। उसके शासन-कालकी यह एकमात्र विजय थी, लेकिन इसका भी कोई परिणाम न निकला, क्योंकि सिन्ध को उसने अपने साम्राज्यमें नहीं मिलाया, बल्कि जाम के एक सम्बन्धीको उसका शासक बना दिया।*

सिन्ध-विजय

---

* अनुवादकीय टिप्पणी. फ़ीरोज़शाहने बंगाल से लौटते समय (१३५९–६०) जाजनगर पर आक्रमण किया और जगन्नाथजी के मन्दिर को तोड़ा। इसी प्रकार नगरकोट पर आक्रमण करके ज्वालामुखी देवी के मन्दिरको ध्वस्त किया। फ़ीरोज़में मुहम्मद की-सी धार्मिक उदारता तथा सहिष्णुता न थी।

फ़ीरोज़शाह का शासन

१. फ़ीरोज़ का शासन मानवीय, उदार और प्रगतिशील था। पूर्व शासन के कारण लोगोंके मनमें जो कड़वाहट आ गयी थी, उसे दूर करनेका उसने पूरा प्रयत्न किया। पहला काम उसने यह किया कि अपने भाई द्वारा सताये गये लोगोंका पता लगाया और उन्हें हरजाना देकर सन्तुष्ट करनेकी कोशिश की। इसके बाद उसने अपना ध्यान कृषिकी स्थिति सुधारनेकी ओर दिया। हम पहले बता चुके हैं कि मुहम्मद तुग़लक़ के शासन-कालमें खेती लगभग बरबाद हो गयी थी। क़ुरानमें बताई हुई सीमा तक उसने कर (टैक्स) कम कर दिये और सरकारी करोंके अतिरिक्त किसी तरहकी लाग-वाग लेना बन्द करा दिया। किसानोंसे ज़बरदस्ती कुछ भी वसूल करने पर सज़ा मिलती थी। इस प्रकार रैयतका असह्य दमन बन्द हो गया। बेकार पड़ी ज़मीनोंको जोतमें लाने और सिंचाईके साधनों को उन्नत करनेसे खेतीकी दशामें और भी सुधार हो गया। दंडकी प्रथा से अंग-भंग और पीड़ा पहुंचानेकी सज़ाओंको दूर करके उसने फ़ौजदारी क़ानूनको भी कुछ नरम कर दिया।

अपने चचेरे भाई द्वारा पीड़ित लोगों की उसने क्षतिपूर्ति की

कृषिको पुनरुज्जीवित करने और रैयतकी दशा सुधारनेके प्रयत्न

सैनिक अधिकारियोंको नक़द वेतन देनेके बदले उसने मालगुज़ारी सहित जागीर देनेकी प्रथाको फिरसे प्रचलित किया। कर्मचारियोंको जागीर देनेकी पद्धति अलाउद्दीन ने उठा दी थी, क्योंकि उसके विचारमें यह प्रथा विद्रोहके कारणोंको जन्म देती है।

पीड़ाजनक दंडोंको हटा दिया

२. फ़ीरोज़ को निर्माणकारी कार्योंमें बहुत उत्साह था। सार्वजनिक निर्माण-कार्योंके लिए उसकी प्रसिद्धि सर्वथा उचित ही है। उसके बनवाये हुए नगर, मसजिदें मदरसे, अस्पताल, नहरें और बांध अभी तक उसका स्मारक बने हुए हैं। उसने दिल्ली में अपनी नयी राजधानीका निर्माण कराया और उसका नाम फ़ीरोज़ाबाद रखा।

उसके निर्माण-कार्य

इसके अतिरिक्त उसने हिसार-फ़ीरोज़ा, फ़तेहाबाद और जौनपुर नामक नगर भी बसाये। इन नगरोंके निर्माणसे एक बड़ा लाभ हुआ। उदाहरणके लिए हिसार-फ़ीरोज़ा नगरमें पानी पहुँचानेके लिए उसने यमुना और सतलज से दो नहरें खुदवायीं। इनमें एक नहर, यानी पुरानी यमुना नहर, तो आज तक क़ायम है और उससे पँजाब के एक बड़े हिस्से की सिंचाई होती है। फ़ीरोज़शाह ने प्राचीन भवनोंमें भी रुचि ली और उनकी बराबर मरम्मत कराता रहा।

उसके उपयोगी सार्वजनिक कार्य—यमुना नहर

३. फ़ीरोज़ ने दास-प्रथाको एक संगठित रूप दिया। उसने अपने अफ़सरोंको आज्ञा दी कि युद्धोंमें जितने बन्दी बनाये जा सकते हों, बनाये

दास-प्रथाका नये रूपमें संगठन

जायें और उनमें से कुछ चुने हुए बन्दियोंको दरबारमें सेवा करनेके लिए दिल्ली भेज दिया जाय। उसने उन दासोंको शिक्षित बनानेका प्रबन्ध कर रखा था और उनसे अंगरक्षकों, सैनिकों और कारीगरोंका काम लेता था। इसमें उसके दो उद्देश्य हो सकते हैं—युद्धमें बन्दियोंकी अमानुषिक हत्या न होने देना और शत्रुओंको अधिकाधिक इस्लाम धर्ममें दीक्षित करना।

उसकी धार्मिक असहिष्णुता

वह शिया और हिन्दू लोगोंके प्रति असहिष्णु था

फ़ीरोज़ कट्टर सुन्नी मुसलमान था; इसलिए वह शियाओं और हिन्दुओंके रीति-रिवाजोंके प्रति असहिष्णु था। उसने शिया लोगोंकी पुस्तकोंको जला दिया और उनके धर्म-प्रचार पर प्रतिबन्ध लगा दिया। उसने हिन्दुओंके साथ साधारणतया होनेवाले दुर्व्यवहारोंको बन्द करा दिया, लेकिन सार्वजनिक रूपसे मूर्ति पूजा और चित्रांकन आदि पर रोक लगा दी। एक ब्राह्मणको उसने जीवित जला दिया, क्योंकि वह खुले आम संध्या-पूजन करता था। अब तक ब्राह्मणों पर 'जज़िया' कर नहीं लगा था। फ़ीरोज ने वह भी लगा दिया। वह हिन्दुओंको कोई नया मन्दिर बनवानेकी अनुमति नहीं देता था। उसने यह भी घोषणा की थी कि जो हिन्दू मुसलमान बन जायगा, उस पर जज़िया-कर नहीं लगेगा। अन्य धर्मोंके प्रति उसके इस रुखसे पता चलता है कि वह धर्मका अन्धभक्त या धर्मान्ध था।

स्मिथ के विचारोंकी आलोचना

टिप्पणी. सुल्तानकी इस धार्मिक असहिष्णुता पर विचार करते समय हमें उस युगका भी ध्यान रखना होगा जिसमें वह पैदा हुआ था। हिन्दुओंको छोड़कर संसारकी कोई जाति उस युगमें धार्मिक मामलोंमें सहनशील और उदार न थी। फ़ीरोज़को इसलिए धर्मान्ध कहना कि वह अपने ज़मानेसे आगे न बढ़ सका था, उचित नहीं जान पड़ता। स्मिथ का उसके विषयमें यह कहना कि 'उसने पूर्ववर्ती आक्रमणकारियों की जंगली (वहशी) परम्परा को क़ायम रखा', अनुचित है। इस मामले में फ़ीरोज़ योरोप और एशिया के अपने समकालीन राजाओंसे बुरा न था, बल्कि उनमें से बहुतोंसे उसका स्तर उच्च था।

उसका देहान्त. चूंकि फ़ीरोज वृद्ध हो चला था, इसलिए उसने सारा राज्य-कार्य मंत्रियोंके ऊपर छोड़ दिया, लेकिन जैसे उसने प्रारम्भ में अपने लड़कोंसे सरकारी कार्योंमें सहयोग लेनेका प्रयत्न किया था और उसमें असफल रहा था, वैसे ही उसका यह प्रयत्न भी सफल न हो पाया।

सन् १३८८ में वृद्ध सुल्तानकी मृत्यु हो गयी, लेकिन उसकी प्रजा बहुत दिनों तक अपने अच्छे सुल्तानको याद करती रही।

फ़ीरोज़शाह का मूल्यांकन. फ़ीरोज़ यदि दिल्ली के सुल्तानोंमें से सबसे अच्छा नहीं तो अच्छे सुल्तानोंमें से एक तो था ही। उसका शासन उदार, नरम, मानवीय और प्रगतिशील था। उसने शासनकी खराबियोंको दूर किया, बेगार और लाग-बाग बन्द की, करोंका बोझ घटाया, सिंचाईकी सुविधाएं बढ़ायी और सार्वजनिक निर्माणके कार्योंको आगे बढ़ाया। वह निश्चय ही अन्य धर्मावलम्बियोंके प्रति असहिष्णु था, लेकिन अपने समकालीन योरोप और एशिया के अन्य शासकगणोंसे खराब न था।

उसके प्रगतिशील सुधार

परन्तु अच्छा शासक होते हुए भी वह अच्छा सेनापति नहीं था, हालांकि उन अशान्त दिनोंमें अच्छा सेनापति होना ही आवश्यक था। बंगाल पर उसने दो बार चढ़ाई की, लेकिन बेकार ही; सिन्धके आक्रमण में उसे आंशिक सफलता मिली, लेकिन अन्तमें उसका परिणाम भी नगण्य ही रहा। उसने दक्षिणको जीतनेकी कोई कोशिश न की। उसकी व्यक्तिगत रुचि सैनिक सफलताकी दिशामें न थी। शिकार खेलनेका वह शौक़ीन था, इतिहासके अध्ययनसे उसे प्रेम था और इमारतें बनवानेमें उसे उत्साह था।

उसकी ग़लत नीति और उसका परिणाम

किन्तु उसने एक कार्य राजनीतिज्ञकी तरह नहीं किया, अर्थात् नक़द वेतनके बजाय कर्मचारियों और सैनिक अधिकारियोंको जागीर देना। उसके मरनेके बाद दिल्ली के साम्राज्यमें जो विशृंखलता फैली उसका एक कारण इस प्रथाको भी कहा जा सकता है। इस तरहकी जागीरोंसे जागीरदारोंके हाथमें पुश्तैनी ताक़त आ जाती थी और बहुधा वे स्वतंत्र होनेकी चेष्टा करने लगते थे। उसकी यह ग़लती उसके निर्बल उत्तराधिकारियोंके शासन-कालमें बड़ी घातक सिद्ध हुई।*

तुग़लक़-राजवंश का पतन

फ़ीरोज़शाह के उत्तराधिकारी. फ़ीरोज़शाह के मरनेके बाद उसके बेटे-पोतोंमें शासन-सत्ता हथियानेके लिए होड़ मच गयी। इस अस्थिरता

* अनुवादकीय टिप्पणी. उसका ग़ुलामोंका संगठन भी उसकी अदूरदर्शी राजनीतिज्ञताका ज्वलन्त उदाहरण है। इन ग़ुलामोंने आगे चलकर साम्राज्यमें बड़ी गड़बड़ी मचाई।

निर्बल और अयोग्य सुल्तान एक के बाद एक गद्दी पर बैठे

ने देशमें अव्यवस्था फैला दी। केन्द्रीय सत्ताकी निर्बलताका लाभ उठाते हुए हिन्दू-सरदारोंने विद्रोह कर दिया और प्रान्तीय गवर्नर प्रायः स्वतंत्र हो गए। फ़ीरोज के तुरन्त बाद उसका पोता «गयासुद्दीन (द्वितीय)» गद्दी पर बैठा। वह परले सिरेका मूर्ख तथा ऐयाश राजकुमार था। पांच महीने शासन करनेके बाद ही उसकी हत्या कर दी गयी। उसके बाद फ़ीरोज का दूसरा नाती अबूबकर गद्दी पर बैठा, लेकिन शीघ्र ही फ़ीरोजशाह के एक लड़के नासिरुद्दीन मुहम्मद ने उसे राज्यच्युत कर दिया। नासिरुद्दीन के शासनके चार वर्ष उपद्रवों और विद्रोहोंके कारण अशान्तिमय रहे। उसके पश्चात् उसका लड़का हुमायू सुल्तान बना, लेकिन केवल २५ दिन तक राजगद्दी पर रहनेके बाद वह उतार दिया गया और उसका नाबालिग भाई « महमूद तुगलक » गद्दी पर बैठा। उसने १३९४ से १४१२ तक—अठारह वर्ष—तक नाममात्रको शासन किया। उसके शासन-कालके प्रारम्भिक तीन वर्षोंमें उसके चचेरे भाई नुसरतशाह ने उसकी सत्ताको चुनौती और दिल्ली के अत्यन्त निकट फ़ीरोजाबाद में समानान्तर सरकार स्थापित की।

केन्द्रीय सत्ता की निर्बलता के कारण साम्राज्य विश्रृंखलित था

तैमूर के आक्रमणके समयका भारत. फ़ीरोजशाह के मरनेके दस वर्ष बाद तैमूर का आक्रमण हुआ। उस समय फ़ीरोज के उत्तराधिकारियों में एक भी शासक साधारण शक्ति-सम्पन्न न था। राज्य-सत्ताके लिए जो गदा-संघर्ष हुआ, उसने केन्द्रीय सत्ता बहुत कमज़ोर पड़ गयी थी। प्रान्तोंके गवर्नरों और अधीनस्थ हिन्दू-राजाओंने अवसरसे लाभ उठाकर अपनेको स्वतंत्र घोषित कर दिया था। साम्राज्य समाप्तप्राय हो चुका था; यहां तक कि एक बार तो ऐसा हुआ कि तैमूर के आक्रमणके तीन साल पहले दिल्ली और उसके उपान्तके नगरोंमें दो समानान्तर सरकारें स्थापित हो गयी थीं—महमूद तुगलक़ की सरकार पुरानी दिल्ली में थी और नुसरतशाह की सरकार उससे कुछ मील ही दूर फीरोजाबादमें थी।

भारत पर आक्रमण करनेमें उसका क्या उद्देश्य था ?

तैमूर का आक्रमण (१३९८). तैमूर को लोग तैमूर लंग भी कहते हैं, क्योंकि उसका एक पैर लंगड़ा था। यह तुर्क ज़ातिका था। सन् १३६९ में यह समरक़न्द का सुल्तान बना। इसके पश्चात् उसने विजय और रक्तपातका सिलसिला शुरू किया, जिससे एक बार फिर चंगेजखां द्वारा किए गए विनाशका नग्न चित्र सामने आ गया। तैमूर ने मध्य एशिया के असंख्य लोगोंको एकत्र किया और फ़ारस (ईरान), मेसोपोटामिया तथा रूसके कुछ भाग पर अधिकार कर लिया। सन् १३९८ में उसने अपनी नज़र हिन्दुस्तान की ओर फेरी, जहांके 'काफ़िरों' को मारकर वह

तत्कालीन प्रथाके अनुसार पुण्य-लाभ करना चाहता था, लेकिन यह निश्चित है कि हिन्दुस्तान की समृद्धि और यहांके शासनकी निर्बलताने उसमें लूट-पाटकी प्यास बढ़ा दी और वह इस जेहादके लिए तैयार हो गया। उसने अपने पोते पीरमुहम्मद के सेनापतित्वमें, एक अग्रगामी सैन्य-दल भेजा, जिसने मुल्तान पर चढाई की और छः महीने तक घेरा-बन्दीके बाद उस पर क़ब्ज़ा कर लिया। अब सेनाका नेतृत्व स्वयं तैमूर ने अपने हाथमें लिया। सिन्धु नदी पार करके उसने तुलम्बा नगर को खूब लूटा और उसके निवासियोंको मरवा डाला। महमूद तुगलक ने उसकी बाढ़का पानीपत के निकट रोकनेकी चेष्टा की, लेकिन हारकर वह गुजरात की ओर भाग गया। इसके बाद तैमूर के दिल्ली पर अधिकार करनेमे कोई बाधा नही रह गयी और उसने अपनेको बादशाह भी घोषित कर दिया। उसने जनतासे कहा कि यदि काफ़ी तादादमे वह जुर्माना अदा कर दे तो बरबादीसे बच सकती है। जुर्माना वसूल करनेके सिलसिलेमें तैमूर के सैनिकोसे कुछ लोगोका झगडा हो गया। बस, फिर क्या था, तैमूर ने उत्तेजित होकर क़त्लेआमकी आज्ञा दे दी। तीन दिनों तक दिल्ली नगर बूचड़खाना बना दिया गया था; आक्रमणकारियोंने सम्पत्ति कितनी लूटी, इसका तो कोई हिसाब हो नहीं। तैमूर ने एक बातका ख्याल रखा कि कुशल कारीगरोंको न मारा जाय। उन्हें उसने अपनी राजधानी समरक़न्द को सजानेके लिए भेज दिया।

तैमूर ने दिल्ली को बरबाद कर दिया

तैमूर का इरादा हिन्दुस्तान में रहनेका न था। अतः उसने मेरठ होते हुए कूच किया। मेरठ इस तूफानकी चपेटमें आ गया और उसका वही हाल हुआ जो कुछ दिन पहले दिल्ली का हो चुका था। मेरठ से वह हरद्वार गया, जहांसे हिमाचल-प्रदेशोंको जीतता हुआ वह अपने पहलेके रास्तेसे लौट गया। जहां-जहांसे वह गुज़रा, वहां-वहां क़दम-क़दम पर अकाल, अराजकता और महामारीको विनाश-लीला सम्पूर्ण बनानेके लिए छोड़ता गया।

तैमूर की वापसी

परिणाम तैमूर के आक्रमणोंसे दिल्ली-साम्राज्यकी रही-सही दीवार भी भहरा पड़ी। उसके जानेके बाद देशमें जो अराजकता और उपद्रव फैले, उनसे अधीनस्थ राज्योंको स्वतंत्र होनेका अवसर मिल गया। दिल्ली से अपना सम्बन्ध-विच्छेद करनेवाले राज्योंमें मुख्य थे——जौनपुर, गुजरात, मालवा और ख़ानदेश।

साम्राज्य छिन्न-विच्छिन्न हो गया

तैमूर और चंगेज़ख़ां के आक्रमणोंकी तुलना. चंगेज़ख़ां का हमला एक गुज़रता हुआ तूफ़ान था और सीमा-प्रान्तके कुछ जिले ही उसकी हिंसाके शिकार हो पाए थे। दिल्ली-साम्राज्य पर उसका कोई प्रभाव

चंगेजखां का आक्रमण आकस्मिक था, किन्तु तैमूर ने जान-बूझ कर पूरी तैयारीसे आक्रमण किया था

नहीं पड़ा था, बल्कि उससे दिल्ली के सुल्तान इल्तुतमिश की शक्ति बढ़ी ही, क्योंकि उसके प्रतिद्वन्द्वी—कुबाचा और एलदौज़—चंगेज़ के आक्रमण के कारण उसकी राहसे हट गए। इसके अतिरिक्त चंगेज का हमला जान-बूझ कर नहीं हुआ था, बल्कि ख़ुरासान के एक भगोड़े राजकुमार का पीछा करते हुए वह आकस्मिक रूपमें यहाँ आ गया था, लेकिन तैमूर ने जान-बूझ कर हिन्दुस्तान के 'काफ़िरो' को मारने और उनकी सम्पत्ति लूटनेके उद्देश्यसे संगठित आक्रमण किया था। उसने दिल्ली तक लूट-मार की और जब यहांसे लौटा, तो अपने पीछे 'अकाल, अराजकता और महामारी' की विरासत छोड़ गया। राजनीतिक दृष्टि-कोणसे देखें तो तैमूर के आक्रमणने दिल्ली की सुल्तानीको मरणान्तक धक्का दिया एवं पहलेसे ही व्याप्त अशान्ति और अव्यवस्था को और बढ़ा दिया। चंगेज़ और तैमूर दोनों ही मनुष्यके रूपमें राक्षस थे; क्रूरता और अत्याचार में कोई किसीसे घट कर न था। लेकिन तैमूर निर्दय होनेके साथ-साथ धोखेबाज़ भी था (दिल्ली की बरबादी इसका उदाहरण है)। उसके अत्याचारोंको तो इसलिए भी बुरा कहा जा सकता है कि वह एक मुसलमान था और मुस्लिम धर्मका अच्छा ज्ञाता था; परन्तु चंगेज़ तो किसी मज़हबको न मानता था, वह तो पूरा जंगली था जिसे दया-धर्मका संस्कार छू तक न गया था।

दिल्ली की वीरानी हालत और उस पर क़ब्ज़ा करने के लिए प्रतिद्वन्द्विता

तैमूर के जानेके बाद दिल्ली की दशा. तैमूर के वापस लौटनेके दो महीने बाद ही दिल्ली के चारों ओर अकाल और महामारीका प्रकोप हो गया। दिल्ली में न कोई शासक रह गया, न कोई प्रजा। दिल्ली वीरान हो गयी। तैमूर का वाइसरॉय खिज्रखां भी दिल्ली छोड़कर मुल्तान चला गया। महमूद तुग़लक़ ने पहलेसे ही गुजरात में शरण ले रखी थी। अतः दिल्ली की गद्दीके लिए दो व्यक्तियोंमें प्रतिद्वन्द्विता हुई—एक था महमूद तुग़लक़ का वज़ीर इक़बालखां और दूसरा था फ़ीरोजशाह का पोता नुसरतशाह। इक़बाल को अधिक समर्थन प्राप्त हुआ, इसलिए उसने दिल्ली पर अधिकार कर लिया। उसने विद्रोही हिन्दू-राजाओं और जौनपुर के शासकको अपने अधिकारमें लानेका पूरा प्रयत्न किया, परन्तु सफल नहीं हुआ। महमूद तुग़लक़ के लिए दिल्ली में रहना असह्य था, क्योंकि मुख्य शक्ति इक़बाल के हाथमें थी, इसलिए वह निराश होकर कन्नौज चला गया, परन्तु सन् १४०५ में इक़बाल मुल्तान के खिज्रखां के साथ युद्ध करते हुए मारा गया और महमूद तुग़लक़ को दिल्ली लौटनेका अवसर मिला। उसने पुनः एक ऐसे साम्राज्यकी बागडोर सँभाली, जो मुश्किल से दोआब से लेकार रोहतक तक रह गया था। उसके शासनके अगले सात

तुग़लक़-राजवंश का अन्त

वर्ष जागीरदारों और सरदारोंसे लड़ते ही बीते, जिसमें उसने बड़ी निर्बलताका परिचय दिया। सन् १४१२ ई० में उसकी मृत्यु हो गई और उसके साथ ही तुग़लक़-राजवंशका भी गौरवहीन अन्त हो गया।

सैयद-राजवंश (१४१४-१४५०)

महमूद तुग़लक़ की मृत्युके बाद तैमूर के मुल्तान-स्थित वाइसरॉय खिज्र-खां ने १४१४ ई० में दिल्ली की गद्दी पर अधिकार जमाया। वह अपने को सैयद-वंश या पैग़म्बर के वंशका बताता था, इसलिए उसने जिस राजवंशकी स्थापना की, वह सैयदवंश कहलाया। इस वंशमें संस्थापक को मिलाकर कुल चार सुल्तान हुए जिन्होंने कुल मिलाकर छत्तीस वर्ष तक राज्य किया। सैयदोंने कभी अपनेको सुल्तान नहीं समझा और सदा तैमूर का वाइसरॉय ही स्वयंको कहते रहे। लेकिन उनका यह कथन केवल एक राजनीतिक चालमात्र थी, क्योंकि सैयदोंने जितने सिक्के गढ़वाये, उन पर तैमूर का नहीं बल्कि भूतपूर्व राजवंशके सुल्तानोंका नाम खुदा रहता था। सैयद-राजाओंका इतिहास इसके अतिरिक्त कुछ न था कि वे दिल्ली और उसके निकट-पासके क्षेत्रों पर अधिकार रखने के लिए ही बराबर संघर्ष करते रहे। दिल्ली की सुल्तानशाही ने अपना सम्मान खो दिया था और उसके अच्छे-अच्छे प्रान्त, जैसे गुजरात, मालवा और जौनपुर भी निकल गए थे। खिज्रखां ने चारों तरफ़ फैली हुई अराजकताको दूर करके साम्राज्यको व्यवस्थित करनेका प्रयत्न किया तथा दोआब, बियाना और ग्वालियर में अपनी सत्ता स्थापित की, परन्तु इटावा, कम्पिला तथा कटेहर के हिन्दू-सरदारोंने उसको चैन न लेने दिया। वह १४२१ ई० में मर गया। अपने इस सीमित राज्य पर अधिकार रखनेमें भी उसके उत्तराधिकारियोंको दोमुखी वार सहने पड़ते थे। एक तो मुग़लोंका आक्रमण शुरू हो गया था, दूसरे, स्वतंत्र हुए राज्य भी आक्रमण करनेमें न चूकते थे। इस वंशका अन्तिम सुल्तान अलाउद्दीन हुआ, जिसने सन् १४५१ में एक अफ़ग़ान-सरदार बहलोल लोदी को सिंहासन सौंप दिया। बहलोल लोदी ने एक मैत्रीपूर्ण समझौता करके उसको बदायूं चले जानेकी आज्ञा दे दी, जहां अलाउद्दीन कई वर्षों तक शासन करता रहा।

अध्याय ७

लोदी-राजवंश (१४५१-१५२६ ई०)

बहलोल लोदी (१४५१-१४८८). बहलोल लोदी, जिसने सैयद-वंशके अन्तिम सुल्तानको हटाया था, एक अफ़ग़ान-सरदार था। राज्यारोहणके पहिले वह पंजाब का गवर्नर था, इसलिए जब वह गद्दी पर बैठा, तो स्वभावतः दिल्लीका साम्राज्य पंजाबके आ मिलनेसे कुछ विस्तृत हो गया। वह अच्छा सैनिक था तथा सीधे-सादे स्वभावका व्यक्ति था। प्रान्तोंके विद्रोही सरदारोंको उसने दबाया और अपने शासनको सुदृढ़ किया।

जौनपुर पर विजय

उसके शासन-कालकी सबसे प्रमुख घटना थी जौनपुर पर विजय। जौनपुर पर अधिकार करनेके लिए उसे छब्बीस वर्षों तक अन्तिम शर्क़ी राजा हुसेनशाह से संघर्ष करना पड़ा था। बहलोल ने अपने लड़के बारबकशाह को जौनपुर का वाइसराय नियुक्त किया। उसकी विजयके कारण दिल्ली-साम्राज्यकी पुरानी सीमा बनारस तक पुनः पहुंच गई।

सिकन्दर लोदी (१४८८-१५१७). बहलोल के बाद उसका एक लड़का 'सिकन्दर' की उपाधिसे गद्दी पर बैठा। वह एक योग्य शासक और विजेता था, जिसने अपने शासन-कालमें दिल्ली की सुल्तानीके खोये हुए गौरवको पुनः प्राप्त करनेकी चेष्टा की। उसने अपने बड़े भाई बारबकशाह को जो जौनपुर का वाइसराय था, अपनी अधीनता स्वीकार करने पर बाध्य किया; बिहार और तिरहुत को जीत लिया और ग्वालियर को भी अधीनस्थ कर लिया। उसका साम्राज्य पंजाब से तिरहुत तक फैला हुआ था और सतलज नदीसे बुन्देलखंड तकका प्रदेश उसके अन्तर्गत आ जाता था। इस प्रकार दिल्ली-साम्राज्यका पूर्व प्रभुत्व वापस लौट आया।

उसकी जीतों के कारण दिल्ली की सुल्तानीका गौरव कुछ-कुछ पुनः लौट आया

उसकी धर्मान्धता

धार्मिक मामलोंमें सिकन्दर भयंकर धर्मान्ध और हिन्दूधर्मके प्रति अत्यन्त असहिष्णु था। उसने कई हिन्दू-मन्दिरोंको नष्ट-भ्रष्ट कर दिया मथुरा के मन्दिरोंको भूमिसात् कर दिया और इमारतोंको मुसलमानोंके उपयोगके लिए दे दिया। वही पहिला बादशाह था जिसने यदा-कदा आगरा में रहनेकी परम्परा डाली। उसने नगरका विकास कराया और

एक महल भी बनवाया, जिसे 'बारादरी' कहते हैं। सन् १५१७ ई० में वह मर गया। अगर उसकी धार्मिक असहिष्णुताकी बात छोड़ दें तो वह अच्छा और दृढ़ शासक तथा उच्चकोटिका न्यायप्रिय व्यक्ति था। उसने साहित्यको प्रोत्साहन दिया, विशेषतया औषधि-विज्ञानमें उसने अधिक रुचि ली। उसके शासन कालमें देश समृद्धिशाली था और लोगोंका रहन-सहन अत्यधिक सस्ता था।

उसका चरित्र

इब्राहीम लोदी (१५१७-१५२६) सिकन्दर की मृत्यु होने पर अफ़ग़ान-सरदारोंने उसके तृतीय पुत्र इब्राहीम को शासक निर्वाचित कर लिया और जौनपुर का राज्य उसके द्वितीय पुत्र जलाल को दे दिया। यह व्यवस्था सन्तोषजनक नहीं रही, क्योंकि कुछ असन्तुष्ट सरदारोंका समर्थन पाकर जलाल ने राजगद्दीके लिए चेष्टा की। उसकी कोशिश बेकार गई और वह मार डाला गया। यद्यपि अपने भाईसे इब्राहीम को छुटकारा मिल गया, तो भी उसे आगे चलकर बड़ी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा। वह बहुत उद्दंड था। उसने अपने दरबारमें कड़े क़ायदे-कानून लागू कर रखे थे। इसमें उसकी मंशा यह थी कि सरदारोंको यह अनुभव होता रहे कि वे सुल्तानसे छोटे हैं। स्वाभिमानी अफ़ग़ानोंके आत्म-सम्मानको इससे बड़ी ठेस पहुंचती थी। उनमें असन्तोष फैल गया, फलतः साम्राज्यके कई भागोंमें विद्रोह हुए। सुल्तानने विद्रोहोंका दमन बड़ी क्रूरतासे किया और सरदारोंके प्रति उसका व्यवहार पहिलेसे भी कठोर तथा निष्ठुर होने लगा। परिणाम यह हुआ कि सरदारोंमें और अधिक असन्तोष बढ़ा, यहां तक कि पंजाब के गवर्नर दौलतखां लोदी ने काबुल के शासक बाबर को भारत पर चढाई करने का निमंत्रण दे दिया और सहायता करनेका वचन दिया। बाबर ने भारत पर आक्रमण करने के इस अवसरसे लाभ उठाया। पानीपत के मैदानमें उसने इब्राहीम लोदी को हरा दिया और १५२६ ई० मे दिल्ली की गद्दी पर बैठा। इब्राहीम युद्ध करते हुए मारा गया और उसके साथ ही दिल्ली की सुल्तानीका सूरज भी अस्त हो गया।

उसके घमंडसे लोगोंमें असन्तोष फैला, जिससे लोग विद्रोही हुए और उसका पतन हुआ

पानीपत के युद्धमें उसकी हार और मृत्यु

टिप्पणी «तथाकथित पठान सुल्तान». दिल्ली के सुल्तानोंको, जिन का प्रारम्भ कुतुबुद्दीन से और अन्त इब्राहीम लोदी से होता है, बहुधा पठान-सुल्तान कहा जाता है। यह भ्रमात्मक शब्द है। इस कालके प्रायः सभी सुल्तान तुर्क थे, चाहे विशुद्ध या मिश्रित। गुलाम-वंशके सुल्तान शुद्ध तुर्क रक्तके थे। रावर्टी ने खिलजी सुल्तानोंको तुर्क बताया है, किन्तु समसामयिक इतिहासकार ज़ियाउद्दीन बर्नी का कथन इससे भिन्न है। सम्भवतः वे तुर्क नस्लके थे, लेकिन बादमें रस्मोरिवाजमें अफ़ग़ान हो

दिल्ली के अधिकांश सुल्तानोंके लिए पठान शब्द व्यवहृत होता है

गये थे। तुग़लक़ सुलतानोंमें हिन्दू-रक्तका मिश्रण था; सैयद अपनी उत्पत्ति अरबोंसे बताते थे, लेकिन केवल एक ही सुल्तान-वंश सच्चे अर्थमें 'पठान' कहा जा सकता है और वह है लोदीवंश। एक और राज-वंश ऐसा है जिसको पठान कह सकते हैं—शेरशाह सूरी का वंश।

अध्याय ८

दिल्ली के सुल्तानों के शासन पर एक आलोचनात्मक दृष्टि

[तथाकथित पठान-सुल्तान]

सरकारका स्वरूप. दिल्ली के सुल्तानोंकी सरकार निरंकुश राजशाही थी। सुल्तानके अधिकारों पर कोई प्रभावशाली प्रतिबन्ध न था। उनको हटाने या पदच्युत करनेका एक ही मार्ग था—उनकी हत्या या उनसे सशस्त्र विद्रोह। सिद्धान्तत: यह माना जाता था कि सुल्तान क़ुरान की शिक्षाओंके अनुसार शासन करेगा, परन्तु व्यवहारत: उसकी इच्छा ही क़ानून होती थी। कोई ऐसी शक्ति न थी जो उसे क़ुरान के नियमों पर चलनेके लिए बाध्य कर सके। राजधर्म प्रधान था, अत: उलमा-वर्गका राज्य-व्यवस्था पर बहुत प्रभाव था। राजनीतिमें इसीलिए धार्मिक पुट रहता था। दूरस्थ प्रान्तों पर सुल्तानका नियंत्रण किसी समान नियम या सहयोगात्मक भावनाके आधार पर न होता था। कुछ प्रान्त नाम-मात्रको उसके प्रति वफ़ादार थे और कुछ पूरी तरह उसके क़ब्ज़ेमें थे। बहुत कुछ सुल्तानके अपने व्यक्तित्व पर निर्भर करता था। सल्तनत एक तरहसे लगभग स्वतंत्र रियासतोंका एक समूह थी; चूंकि देश पर सैनिक शासन था, इसलिए जहां तक सुल्तानकी तलवार पहुंच सकती थी, वहां तक उसका राज्य समझा जा सकता था।

सरकारका स्वरूप निरंकुश राजशाहीका था और देश पर एक तरहका सैनिक शासन था

राजगद्दीका उत्तराधिकार निर्वाचन पर आधारित था। सरदार जिसे चाहते थे उसे चुनावका नाटक करके गद्दी पर बैठा देते थे। उत्तराधिकारी पूर्व सुल्तानका कोई सम्बन्धी ही हो, यह आवश्यक नहीं था। सुल्तानों से मुलाकात करना आसान था। वे दरख्वास्तोंके सम्बन्धमें जांच-पड़ताल करते थे और नित्य अपने दरबारमें बैठकर फ़रियादें सुनते थे।

वज़ीर

सुल्तानकी सहायताके लिए एक वज़ीर या प्रधान-मंत्री होता था। उसके अधिकार भी निश्चित न थे। बहुत कुछ उसकी अपनी योग्यता और सल्तानके स्वभाव तथा व्यक्तित्व पर निर्भर करता था।

प्रान्तीय सरकार. प्रान्तोंको बड़े-बड़े सामन्तोंके ज़िम्मे छोड़ दिया गया था। ये सामन्त अपने क्षेत्रमें निरंकुश शासन करते थे। प्रान्तोंके गवर्नरोंका पद एक तरहसे वाइसरॉय के पदके समान था, जो वंशगत

प्रान्तोंका शासन सरदारोंके द्वारा होता था, जिनके अधिकार प्रायः स्वतंत्र होते थे

चला करता था। इन गवर्नरोंसे यह आशा की जाती थी कि वे अपने प्रान्तकी सरहदी रक्षा करेंगे और अपना भीतरी शासन ठीक रखेंगे। दिल्ली के सुल्तानसे उनका केवल यही सम्बन्ध था कि उसको खिराज देते थे और उसका सम्मान करते थे। कभी-कभी सैनिक सहायता भी देनी पड़ जाती थी। अगर इतना काम वह भले प्रकार कर लेता था, तब उसके भीतरी शासनमें केन्द्रकी ओरसे कोई हस्तक्षेप नहीं किया जाता था और वह मनमाने ढंगसे शासन करनेके लिए स्वतंत्र छोड़ दिया जाता था। गवर्नर लोग स्थानीय हिन्दू-राजाओं या जागीरदारोंकी सेवा भी लेते थे और उनको अपने क्षेत्रमें शासन करनेका पूरा अधिकार दे देते थे, बशर्ते कि वे नजर-भेंट देते रहें और अवसर पड़ने पर सैनिक सहायता भी करें। दिल्ली का सुल्तान कहां तक प्रान्तों पर नियंत्रण रख सकता था, इसकी कोई सीमा निर्धारित न थी; प्रायः उसका नियंत्रण नाम-मात्रको रहता था। यही कारण है कि प्रान्तीय गवर्नर कभी-कभी केन्द्रीय सत्ताको चुनौती दे बैठते थे।

क़ाजी

नागरिक शासन. न्याय करनेका अधिकार क़ाजियोंको था, जो केवल इस्लाम-मजहबके क़ायदे-क़ानून और रीति-रिवाजको मान्यता देते थे। क़ाजियोंके अलावा भी कुछ अफ़सर थे जो जनतामें प्रचलित रीति-रिवाजोंके आधार पर बने हुए नियमोंके अनुसार सुल्तानकी इच्छा पर न्याय करते थे। जमीन-सम्बन्धी झगड़ोंका फ़ैसला माल-अफ़सरों द्वारा किया जाता था। ये अफ़सर अधिकतर हिन्दू होते थे। गवर्नरों और उनके अफ़सरोंके पास बहुधा शिकायतें आती रहती थीं, जिनका फ़ैसला वे तत्काल कर देते थे। केवल वही मामले क़ाजियोंके पास विचारार्थ भेजे जाते थे जिनमें मुस्लिम क़ानूनका कोई प्रश्न उलझा रहता था।

हिन्दुओंकी स्थिति बहुत बुरी थी

देश और जनताकी दशा. सुल्तानोंके जमानेमें बहुसंख्यक हिन्दुओं की दशा अच्छी न थी। अधिकांश सुल्तान भयंकर निरंकुश शासक थे और साथ ही कट्टर धर्मान्ध भी, इसलिए हिन्दुओंका अस्तित्व उनकी दया पर निर्भर करता था। उनके धर्मका सदैव अपमान किया जाता था और बहुधा उनकी धन-सम्पत्ति लूट ली जाती थी। उनको एक धार्मिक कर देना पड़ता था, जिसे 'जजिया' कहते हैं। इस करका बोझ अधिकतर ग़रीबों पर पड़ता था और इससे हिन्दुओं और मुसलमानोंमें एक अलगावकी तथा बड़े-छोटेकी भावना उत्पन्न होती थी. लेकिन यह बात न भूलनी चाहिए कि यह हालत सबकी न थी। बहुतसे हिन्दू हिन्दू-जागीरदारों या राजाओंकी प्रजा थे जिनको अपने राज्यमें शासनकी पूरी छूट थी। यद्यपि हिन्दुओंको साधारणतया हेय दृष्टिसे देखा जाता था, परन्तु

उनको शत्रु नहीं समझा जाता था। राज्य-कार्यमें उनका सहयोग प्राप्त किया जाता था और अगर वे इस्लामधर्म स्वीकार कर लेते थे तब उन्हें शासक जातिकी सारी सुविधाएं मिलती थीं।

साधारणतया देश समृद्ध था

साधारणतया देश समृद्ध था। उस समय जिन यात्रियोंने भारत का भ्रमण किया, उनके लिखे वर्णनोंसे भी इसका प्रमाण मिलता है। उनमें से अधिकांशने यहांके बड़े-बड़े ऐश्वर्यशाली नगरोंका वर्णन किया है और उनकी बातोंसे यही पता चलता है कि देश समृद्ध था। राज्यकी ओरसे भिन्न-भिन्न व्यवसायोंको प्रोत्साहन मिलता था। रेशम व ज़रीका काम खूब होता था। मार्कोपोलो तथा इब्नबतूता का कहना है कि भड़ौंच तथा कालीकट से विदेशी व्यापार खूब जोरोंसे होता था। मार्कोपोलो कहता है कि बंगाल उस समय बड़ा धनवान तथा उपजाऊ प्रदेश था। वासफ़ का बयान है कि गुजरात एक समृद्धिशाली तथा खूब बसा हुआ प्रदेश था। बाबर जिसे हिन्दुस्तान पसन्द न था, वह भी कहता है कि 'देश सोने और चांदी से भरा-पूरा सम्पन्न था।' उसको यहांकी 'आबादी और हर पेशेमें लगे हुए असंख्य कारीगरों' को देखकर बड़ा अचम्भा हुआ था। निस्सन्देह यह देशकी व्यापारिक और औद्योगिक उन्नतिका परिचायक था। फ़ीरोज़ शाह के जमानेमें खेतिहार-वर्गकी दशा उन्नत करनेके लिए कई सुधार किये गये। अन्तिम दो लोदी बादशाहोंके शासन-कालमें खाद्य-वस्तुएं और अन्य चीजें बहुत सस्ती थीं। कभी-कभी जनताको अकालका सामना करना पड़ जाता था--जैसे जलालुद्दीन खिलजी और मुहम्मद तुग़लक़ के जमानेमें।

इब्नबतूता के लेख

विदेशी यात्री. १४वीं शदीमें देशकी दशाका कुछ विवरण हमें मूर-यात्री इब्नबतूता के लेखोंसे मालूम होता है। कुछ वर्षों तक यह मुहम्मद बिन तुग़लक़ की सेवा में रह चुका था। उसने सुल्तानके स्वभाव, चरित्र, कार्यों और दिल्ली की वीरान स्थितिका मार्मिक चित्रण किया है। उसने उन कार्योंका विस्तारपूर्वक वर्णन किया है जिनको मुहम्मद तुग़लक़ ने अकाल-पीड़ित जनताके लिए किया था। यद्यपि देशमें अशान्ति थी, तो भी इस यात्रीको ऐसे नगरोंको देखनेका अवसर मिला जो सुन्दर बसे हुए, भारी जनसंख्यावाले और काफ़ी लम्बे-चौड़े थे। उसने उस स्थितिका वर्णन बहुत सुन्दर किया है, जिस स्थितिमें उपद्रवोंके पहले यह देश रहा होगा। उसने बंगाल के धन-धान्य तथा कालीकट के विदेशी व्यापारका बयान किया है। सामाजिक व्यवस्थाके बारेमें हमको उससे यह पता चलता है कि सतीकी प्रथा खूब प्रचलित थी; लड़कों तथा लड़कियोंके लिए पाठशालाएं थीं और देशमें कई धार्मिक संस्थाएं थीं,

जहां पर अन्न भी मुफ्त बांटा जाता था।

१५वीं शताब्दीमें कई विदेशी यात्रियोंने भारत का भ्रमण किया, लेकिन उन्होंने अधिकतर दक्षिणी राज्योंकी स्थितिका ही वर्णन किया है (आगेके पृष्ठोंमें विजयनगर का वर्णन देखिए)। प्रसंगवश उत्तरी भारत के राज्यो पर भी वे कुछ लिख गये हैं। इटालियन यात्री निकोलो डी कोण्टी ने जो १४२० ई० के लगभग यहां आया था, गुजरातकी बड़ी प्रशंसा की है। उसने लिखा है कि गंगा का तट सुन्दर नगरों और बग़ीचों से सुशोभित था। विजयनगर के सम्बन्धमें उसके विचार बहुत प्रशंसात्मक हैं। तैमूर के पुत्रकी ओर से भारत में भेजा गया राजदूत अब्दुर्रज़्ज़ाक़ सन् १४४३ में यहां आया। उसने दक्षिणकी समृद्धि और विजयनगर के ऐश्वर्यका वर्णन बहुत ऊँचे शब्दोंमें किया है। पुर्तगाली यात्री 'पेज़' ने, जिसने १५२२ में भारत की यात्रा की, दक्षिणी राज्यों, विशेषकर विजयनगर, के बारेमें जो कुछ लिखा है, उससे अब्दुर्रज़्ज़ाक़ की बातोंका पूरा समर्थन होता है।

अब्दुर्रज़्ज़ाक़

स्थापत्य-कला दिल्ली के सुल्तान स्थापत्य-कलाको बहुत संरक्षण देते थे। उन्होंने अनेक विशाल भवनोंका निर्माण कराया, जिनको देखकर यह लोकोक्ति प्रसिद्ध हो गयी कि 'पठानोंने दैत्योंकी तरह भवनोंका निर्माण कराया और जौहरियोंकी सफाईके साथ उनको पूरा किया'। क़ुतुबमीनार, अल्तमश का मकबरा, तुग़लक़शाह का मक़बरा और जौनपुर को कई मसजिदें तथा इनके अतिरिक्त भी बहुतसे भवन उस युगके स्थापत्य कौशलके अच्छे नमूने हैं। दिल्ली के सुल्तानों द्वारा संरक्षित स्थापत्यकी मुख्य विशेषता यह है कि वह देखनेमें बड़ा शानदार और विशाल तथा साथ ही साथ मज़बूत और टिकाऊ भी है। उनकी बनवायी हुई सारी इमारतें भारी-भरकम हैं और उनकी बनावट सीधी-सादी तथा गम्भीर है। उनमें से कुछ विदेशी नमूने पर और कुछ भारतीय नमूने पर बनवायी गयी थीं, लेकिन हिन्दू-कलाका उन पर प्रभाव स्पष्ट है। इसका मुख्य कारण यह है कि इन भवनोंका निर्माण हिन्दू कारीगरोंने किया, जिनसे काम लेनेके अलावा सुल्तानोंके पास कोई दूसरा चारा न था। यह याद रखना चाहिए कि भारत के कारीगर उस समय संसारके कुशलतम कारीगरोंमें गिने जाते थे, क्योंकि उनको संस्कृति और कला की महान् परम्परा विरासतमें मिली थी।

भवनोंका सौन्दर्य और उनकी विशेषता

यह भी स्मरण रखना चाहिए कि 'पठान-सुल्तानों' और 'पठान-साम्राज्य' की तरह ही 'पठान-स्थापत्य-कला' शब्द भी बहुत भ्रामक है। स्थापत्यमें पठानशैली नामक किसी वस्तुका अस्तित्व नहीं है। इसके

'पठान-स्थापत्य कला' नाम भ्रामक है

लिए उपयुक्त नाम होगा—'हिन्दू-मुस्लिम-स्थापत्य', क्योंकि यह वास्तव में मुसलमानोंके कार्यमें हिन्दू-कलाका प्रयोग था। सुल्तानोंका स्थापत्य इसलिए विचित्र दिखाई देता है, क्योंकि हिन्दू-कारीगरोंके हाथमें विधर्मियोंकी चीज़ बनानेको दे दी गई फलतः उन्होंने उस धर्मकी कुछ विशेषताओंका समावेश करते हुए अपना प्रभाव ही मुख्य रखा। इस मिश्रणसे एक नई-सी वस्तु तैयार हो गई, जिसे लोग 'पठान-स्थापत्य' के ग़लत नामसे पुकारते हैं। दूसरे शब्दोंमें, भारतीय आर्योंकी कलाका एक बदली हुई परिस्थितिमें जो विकास हुआ, वह पठान-स्थापत्य है। मुस्लिम शासकोंने इस्लामके रीति-रिवाज और कर्म-कांडको स्थूल रूप देनेके लिए भारतीय आर्य-कलाको एक नई दिशामें झुकनेके लिए विवश किया।

साहित्य. सुल्तानोंने फ़ारसी साहित्यको अपना उदार संरक्षण दिया। कई सुल्तान इस योग्य थे कि अरबी और फ़ारसी साहित्यकी ख़ूबियोंको समझ सकें और उनकी दाद दे सकें। अपने दरबारमें उच्च कोटिके विद्वानोंको रखनेका उन्हें शौक था। उस कालका सबसे प्रसिद्ध कवि था «अमीर खुसरो»। इसने पहिले बलबन के दरबारमें शरण ली थी और बादमें अलाउद्दीन के दरबारकी शोभा बढ़ाई। सुल्तानोंके युग में कई अच्छे इतिहासकार भी हो चुके हैं। उनकी कृतियां इसलिए विशेष प्रशंसनीय हैं क्योंकि हिन्दू विद्वानोंकी रुचि इतिहास लिखनेकी ओर नहीं थी। उस समयका प्रमुख इतिहासकार था «मिनहाजुस्-शिराज», जिसने 'तबक़ात-ए-नासीरी' नामक प्रसिद्ध पुस्तक लिखी। इस का नाम उसने अपने संरक्षक सुल्तान नासिरुद्दीन के नाम पर रखा था। दूसरा इतिहास लेखक था «जियाउद्दीन बर्नी», जिसने 'तारीखे-फ़ीरोज शाही' लिखा। वह फ़ीरोजशाह के शासनमें रहता था, इसलिए उसने अपनी पुस्तकका नामकरण सुल्तानके नाम पर किया था। ख़िलजी और तुग़लक़-राजवंशोंका विवरण जाननेके लिए उसकी पुस्तक प्रामाणिक मानी जाती है।

उस कालके इतिहासकार

भारतीय जीवन पर मुस्लिम-विजयका साधारण प्रभाव. दिल्ली में और अन्य राज्योंमें स्थाई मुस्लिम सरकारकी स्थापना हो जाने से भारतवासियोंके सामाजिक और धार्मिक जीवनमें महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए। मध्य एशिया के आक्रमणकारी मुसलमानोंने भारत को अपना वास-स्थान बनाया और इसलिए उन्हें बाध्य होकर यहांकी जनता से सम्पर्क स्थापित करना पड़ा। इसलिए यह स्वाभाविक ही है कि वे यहां के लोगों पर अपना प्रभाव छोड़ते और यहांके लोगोंके रीति-रिवाजोंसे

भी प्रभावित होते।

सामान्य भाषाकी आवश्यकता के कारण उर्दू का विकास ; आ

१. उर्दूका विकास. हिन्दुओं और मुसलमानोंका जैसे-जैसे मेल-जोल बढ़ा, उनको एक सामान्य भाषाकी आवश्यकता अनुभव हुई। विजेता मुसलमान या तो तुर्की बोलते थे या फ़ारसी, जब कि उत्तरी भारतके हिन्दू हिन्दी बोलते थे। आपसके व्यवहारके लिए किसी माध्यम का होना आवश्यक था और इसी आवश्यकतावश उर्दू या 'लश्कर की ज़बान' का विकास हुआ। उर्दू हिन्दी और फ़ारसीके बीचका एक समझौता थी। यह नई भाषा धीरे-धीरे भारतीय मुसलमानोंकी भाषा हो गई और उसका साहित्य भी तैयार होने लगा।

२. धार्मिक सुधारकोंका उदय. इस्लामके प्रभावका दूसरा महत्त्वपूर्ण परिणाम यह हुआ कि कुछ नये धार्मिक मतोंका जन्म हुआ, जिनका उद्देश्य था ऐसे धर्मकी स्थापना जो हिन्दू और मुसलमानों दोनों को स्वीकार्य हो सकें। इस्लाम ख़ुदा के एक होने पर अधिक ज़ोर देता है, इसलिए कई ऐसे सुधारकोंका उदय हुआ जो धार्मिक समानताका उपदेश देते थे। इन सुधारकोंमें सबसे प्रसिद्ध «रामानन्द» हुए, जो वैष्णवमतके संस्थापक श्री रामानुज के शिष्य थे। रामानन्द १४ वीं शताब्दीमें हुए थे। वे दक्षिणके रहनेवाले थे। उन्होंने धर्म या जातिका ख़्याल किये बिना सब लोगोंमें अपने गुरुकी शिक्षाओंका प्रचार किया। उनके सबसे प्रसिद्ध शिष्य «कबीर» थे जो जातिके जुलाहे थे। कबीर ने मूर्तिपूजा और जाति-प्रथाका घोर विरोध किया। कबीर के उपदेशों को हिन्दुओं और मुसलमानों दोनोंने खूब पसन्द किया। उनकी रहस्य-मयी कविता उत्तरी भारत में बहुत प्रचलित है। उनके अनुयायियोंमें हिन्दू-मुसलमान दोनों थे। १५ वीं शताब्दीमें सिक्ख-मतके संस्थापक «गुरु नानक» ने कबीर के ढंग पर अपने शिष्योंको शिक्षा दी। बंगालमें महान् सुधारक और भगवद्भक्त चैतन्य देव (१४८६-१५३४) का नाम तो घर-घरमें प्रचलित है। वे भक्त-सम्प्रदायके अनन्य प्रचारक थे। उनकी शिक्षा थी कि सगुण भगवान्की उपासना करके किसी भी स्त्री या पुरुषको मुक्ति मिल सकती है। उनका सारा जीवन निरभिमानता और दया-धर्मसे ओत-प्रोत था। उन्होंने पशुओंकी बलि और मांस-भक्षण तथा मादक द्रव्योंकी घोर निन्दा की।

हिन्दूधर्मके पुनर्जागरण का उद्देश्य था जनतामें जागृति लाना और इस्लाम की प्रगतिको रोकना

याद रखना चाहिए कि इन सुधारकोंने सवर्ण हिन्दुओं द्वारा ठुकराये हुए नीची जातिके लोगोंको उठानेका प्रयत्न किया, क्योंकि सवर्णोंके अत्याचारोंसे ऊबकर वे इस्लाम मजहबकी ओर झुक रहे थे। उनकी शिक्षाओं और उपदेशोंने इस्लामकी बाढ़को रोकनेमें बड़ा काम किया।

३. समाज पर प्रभाव. (क) मुसलमानोंकी विजयने हिन्दू जाति-प्रथाका बन्धन कड़ा कर दिया। हिन्दुओंने अपना दृष्टिकोण संकुचित कर लिया और जाति-प्रथाकी ढाल पर उन्होंने इस्लामके आक्रमणको रोकनेकी चेष्टा की।

जाति-प्रथा प्रबल हो उठी

(ख) **स्त्रियोंकी स्थिति.** प्राचीन युगमें पर्दा-प्रथा जितनी प्रचलित थी, अब उससे भी अधिक हो गयी, बल्कि एक फ़ैशनकी चीज़ हो गयी। कुछ तो इसका कारण यह था कि शासक-वर्गमें यह प्रथा प्रचलित थी और उसका प्रभाव जनता पर पड़ना स्वाभाविक था। दूसरे, उन अशान्तिमय दिनोंमें महिलाओंको विदेशियोंसे बचानेके लिए उन्हें पर्देमें रखना आवश्यक-सा हो गया।

पर्दा-प्रथा का विकास

(ग) **इस्लाम का प्रसार.** कई हिन्दू, ख़ासतौर से नीची जातियों के, इस्लाम मज़हब क़बूल कर चुके थे। कुछ ने तो जबर्दस्तीके कारण ऐसा किया और कुछने इसलिए कि मुसलमानों द्वारा हिन्दुओं पर लगाये जानेवाले जज़िया टैक्ससे छुटकारा मिल सके।

(घ) बंगाल—भारत में बौद्धधर्मका अन्तिम आश्रय-स्थान—से भी बौद्धधर्मको सम्भवतः इस्लाम के दबावके कारण ही उखड़ना पड़ा।

बौद्धधर्मका ह्रास

मुसलमानोंकी सफलताके कारण. मुस्लिम सेनाओंकी सफलता कुछ तो उनके रणकौशलके कारण हुई और कुछ हिन्दुओंकी फूट और अन्धविश्वासके कारण। आक्रमणकारी ठंडे देशोंसे आये थे, इसलिए वे गरम देशके रहनेवाले अपने विरोधियोंके मुक़ाबलेमें अधिक कष्ट-सहिष्णु, परिश्रमी और जोशीले थे। यद्यपि हिन्दू भी वीरता और आत्मत्यागमें उनसे कम न थे, लेकिन उनकी युद्ध-कला इतनी पुरानी और रण-नीति इतनी कमज़ोर थी कि वे लड़ाईके नये तरीक़ोंको अपनानेवाले मुसलमानोंका सामना न कर सके। उनको अपनी हस्ति-सेना पर क़ाफ़ी भरोसा रहता था, लेकिन जब मुसलमानोंकी सुशिक्षित घुड़सवार सेना ज़ोरसे हमला करती थी तो हाथी रण-क्षेत्रसे भाग चलते थे। इसके अलावा हिन्दुओंमें एक नेतृत्व और एक उद्देश्यका अभाव था। सेनाकी हर टुकड़ी अपने सरदारकी ही आज्ञा मानती थी; किसी एक आदमीको सभी सेनाओंका संयुक्त रूपसे संचालन करनेके लिए सेनापति चुननेमें उनकी आपसी जातिगत और कुलगत फूट, ईर्ष्या तथा द्वेष बाधक हो जाते थे, लेकिन दूसरी ओर मुसलमानोंमें नेतृत्व और उद्देश्यकी एकता थी। घोर धर्मान्धता और स्वर्णकी लालच—दोनोंने मिलकर उन्हें जोशीला बना दिया था। वे समझते थे कि 'काफ़िरों' को मारनेसे जन्नत का दरवाज़ा उनके लिए खुल जायगा, इसलिए हिन्दुओंको लूटने-मारनेसे जहां

वे अच्छे सैनिक थे

हिन्दुओंकी रूढ़िवादिता और उनकी फूट

मुसलमानों की धर्मान्धता

उनको ऐहिक लाभ था, वहां दैवी सुखका आकर्षण भी था। इस भावनासे उनमें शहादतकी प्रेरणा भर जाती थी और वे युद्धमें प्रायः अजेय हो उठते थे। इसके अलावा यह बात भी थी कि विदेशमें इतनी दूरसे आकर उनके लिए पीछे लौटना भी कठिन था ; या तो उनको जीतना था या अपने प्राण गंवाने थे। दूसरा कोई चारा न था। इस विचारसे उनमें और भी उत्साह और शक्ति भर जाती थी।

सुल्तानशाही के पतन के कारण

निरंकुश शासनकी भीतरी कमजोरियोंने उसे खत्म किया

१. दिल्ली की सुल्तानशाहीके पतनके मूलमें जितनी उनके शासनकी भीतरी कमज़ोरियां हैं उतना ही बाहरी दुश्मनोंका दबाव भी है। अगर कोई सिंहासन तलवारके बल पर उपद्रवी राजाओंकी राजभक्ति पर टिका हुआ हो तो उसके लिए आवश्यक है कि उसका अधिकारी असाधारण योग्य और दबग व्यक्ति हो। अगर तलवारको पकड़नेवाला हाथ कमजोर हुआ तो शक्तिशाली सामन्तों पर उसका नियंत्रण ढीला पड़ जाता है। फल होता है--राज्यकी विशृंखलता। अगर क़ुतुबुद्दीन, इल्तुतमिश, बलबन और अलाउद्दीन जैसे सुल्तानोंको छोड़ दें तो दिल्ली के सुल्तानोंमें बहुत कम सुयोग्य शासक हुए। अधिकांश तो शराब-कबाब और राग-रंगमें मस्त रहनेवाले थे और जो अच्छे सुल्तान थे भी, वे निर्बल शासक थे।

मुहम्मद बिन तुग़लक़ के अत्याचार

२. साम्राज्यके बिखरनेके ये सब कारण तो उपस्थित थे ही, किन्तु मुहम्मद बिन तुग़लक़ के खब्तीपनके कामोंने विनाशकी घड़ीको और निकट ला दिया। उसकी बेतुकी योजनाओं और उनको पूरा करानेमें बरती गयी कठोरताके कारण जनताको अकथनीय दुर्दशा हुई और चारों ओर विद्रोह फैल गया। साम्राज्यकी जड़ हिल उठी और बंगाल तथा दक्खिनके प्रदेश तो सुल्तानोंके हाथसे बिलकुल निकल ही गये। फ़ीरोजशाह के उदार शासनसे देशमें शान्ति और समृद्धिकी वृद्धि तो हुई, लेकिन खोये हुए प्रान्त फिर साम्राज्यमें न मिलाये जा सके। इसके विपरीत, उसने नक़द वेतनके बदलेमें सामन्तों और सैनिक अफ़सरोंको जागीर देनेकी जो प्रथा चलायी, उससे विशृंखलता फैलनेमें मदद मिली और साम्राज्यका विनाश अधिक शीघ्रतासे हुआ।

फ़ीरोजशाह की ग़लत नीति

तैमूर का आक्रमण

३. फ़ीरोजशाह के निर्बल और अयोग्य उत्तराधिकारियोंके शासन-कालमें दिल्ली का साम्राज्य दिल्ली के आस-पासमें सिकुड़कर रह गया था। इस साम्राज्यकी टूटती दीवारोंको तैमूर ने आखिरी धक्का दिया।

उसके जानेके बाद जो अराजकता और अशान्ति फैली, उसने साम्राज्य को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया और कई प्रान्तोंने अपनेको स्वतंत्र घोषित कर दिया।

बाबर का हमला

४. इसमें सन्देह नहीं कि लोदी-सुल्तानोंने किंचित् शक्ति और योग्यताका परिचय दिया, लेकिन उस वंशका अन्तिम सुल्तान इब्राहीम बहुत मूर्ख और घमंडी था। उसका शासन उसके जाति-भाइयों और खानदानवालोंको असह्य हो गया। अन्ततः पंजाब के गवर्नर दौलतखां लोदीने काबुलके शाह बाबर को निमंत्रित किया। बाबर हिन्दुस्तानमें आया और पानीपतके मदानमें सन् १५२६ ई० में उसने इब्राहीम को बुरी तरह हरा दिया। इब्राहीम लड़ाईमें मारा गया और उसकी मृत्युके साथ ही दिल्ली की सुल्तानशाहीका भी अन्त हो गया।

मुसलमानों का पतन

५. इन कारणोंके साथ मुसलमानोंका चारित्रिक पतन भी एक कारण था। धन और ऐश-आरामसे उनमें विलासिता और भ्रष्टाचार फैल गया। जो जाति किसी दिन योद्धाओंकी जाति थी, अब वही शासन सत्ता पर अधिकार करके ऐश-आरामकी जिन्दगी बितानेका उपाय सोचने लगी थी। राजदंडको हथियानकी उनमें होड़ लग गयी। इसके अलावा उन्होंने निम्न जातिके हिन्दुओंको बड़ी आसान शर्तो पर मुसलमान बनाकर मुस्लिम-विजेता जातिका जो एक दबदबा तथा गौरव था, उसे खो दिया।

अध्याय ९

प्रान्तीय राज्य

दिल्ली सुल्तानशाही के अन्तर्गत बंगाल की दशा

बंगाल. सन् ११९२ में बख्त्यार खिलजी के बेटे «मुहम्मद खिलजी» ने बंगाल के सेन-वंशी राजाओंकी राजधानी नदिया पर अधिकार कर लिया और समस्त बंगाल प्रान्तको दिल्ली सुल्तानशाहीके प्रभुत्वमें ले आया। मुहम्मद ने गौड़ या लक्षणावती को इस नये प्रान्तकी राजधानी बनाया और स्वयं उसका गवर्नर बन बैठा। उसके बाद बंगाल पर गवर्नर शासन करते रहे, जिनकी वफ़ादारी दिल्ली के प्रति नाममात्रको थी। वस्तुत: वे स्वतंत्र थे। जब तक ये गवर्नर दिल्ली-साम्राज्यके प्रति पूर्व स्थित राजभक्ति नहीं छोड़ते थे तब तक उनके भीतरी मामलोंमें केन्द्र की ओरसे कोई हस्तक्षेप न होता था। इस हस्तक्षेपका सबसे उल्लेखनीय उदाहरण है बलबन द्वारा बंगाल के विद्रोही गवर्नर तुग़रिलखां का किया हुआ क्रूरतापूर्वक दमन। बलबन ने अपने द्वितीय पुत्र बुग़राखां को बंगाल का गवर्नर नियुक्त किया और तबसे १३३८ ई० तक बंगाल की गवर्नरी बलबन के वंशजोंके पास रही। तुग़लक़शाह के शासन-कालमें दो भाइयों में बंगाल का वाइसराय बननेके प्रश्न पर झगड़ा हो गया, फलत: सुल्तान को हस्तक्षेप करना पड़ा। तुग़लक़शाह बंगाल गया और जिस भाईको वह वाइसराय-पदका अधिकारी नहीं समझता था, उसे अपने साथ दिल्ली ले आया।

फ़खरुद्दीन का विद्रोह

स्वतंत्र प्रान्तके रूपमें बंगाल. दिल्ली की सुल्तानशाहीके पंजेसे बंगाल उस समय मुक्त हुआ जब १३३८ ई० में एक फ़खरुद्दीन नामक व्यक्तिने मुहम्मद बिन तुग़लक़ के अत्याचारोंके विरुद्ध आवाज़ उठाई। गवर्नरको मार डाला और अपनेको पूर्वी बंगालका सुल्तान घोषित कर दिया। उन्हीं दिनों अलाउद्दीनशाह ने पश्चिमी बंगाल में अपना स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिया था। इस प्रकार कुछ दिनोंके लिए बंगाल का सूबा दो भागोंमें बंट गया, जिन पर दो स्वतंत्र तथा प्रतिद्वन्दी राजा राज्य करते थे। लेकिन सन् १३५२ में पश्चिम बंगाल का शासक इलयास-शाह सारे बंगाल का मालिक बन गया और बंगाल का प्रथम स्वतंत्र सुल्तान

हुआ। फ़ीरोजशाह ने बहुत कोशिश की उसे अपने प्रभुत्वमें लाने की, लेकिन इलियासशाह ने उसके प्रयत्न सफल न होने दिये। अन्तमें फ़ीरोज-शाह ने उसकी स्वतंत्रता स्वीकार कर ली। इलियास ने अपनी राजधानी गौड़से पन्दुआ में हटा ली। वह सफल और कुशल शासक गिना जाता है। उसका मृत्यु १३५८ में हो गयी। तत्पश्चात् उसका लड़का सिकन्दर शाह गद्दी पर बैठा। सिकन्दर ने १३८९ ई० तक बड़ी योग्यतासे शासन किया। पन्दुआ के निकट उसने अत्यन्त प्रसिद्ध «अदीना मसजिद» बनवायी। इलियास के वंशज १४०९ ई० तक शासन करते रहे, जब कि एक हिन्दू जमींदार राजा कंस (गणेश) ने गद्दी पर अधिकार कर लिया। यह हिन्दू-राज्य थोड़े समय तक ही रहा। कंस का लड़का मुसलमान हो गया। आगे चलकर १४३८ ई० में इलियास के वंशजोंके हाथमें गद्दी फिर चली गयी और उस वंशका अन्तिम राजा १४८७ ई० तक, जब कि बारबक नामक एक हब्शी नौकर ने उसको मारकर गद्दी छीन ली, शासन करता रहा। बारबक और उसके तीन उत्तराधिकारी १४९३ तक शासन करते रहे। वे हब्शी (मिस्री) राजाओंके नामसे प्रसिद्ध हैं।

इलियास बंगाल का प्रथम स्वतंत्र शासक हुआ

सिकन्दरशाह

राजा कंस

हब्शी सुल्तान

सन् १४९३ में अलाउद्दीन «हुसेनशाह» ने अन्तिम हब्शी राजाको हरा दिया और मार डाला तथा समस्त बंगाल का स्वामी बन गया। बंगाल के मुस्लिम शासकोंमें हुसेनशाह को सबसे महान् कहा जा सकता है। उसने हिन्दुओंके साथ उदारता और सहिष्णुताका व्यवहार किया। उसने चौबीस वर्षों तक सुख-समृद्धिके साथ शासन किया, लेकिन एक भी विद्रोह न हुआ। उसने जौनपुर के सुल्तान हुसेनशाह को शरण दी, क्योंकि बहलोल लोदी ने जौनपुर के शाह को भागनेके लिए विवश कर दिया था। वह १५१८ ई० में मर गया। उसके बाद उसका लड़का नुसरतशाह गद्दी पर बैठा। नुसरत उदार और योग्य शासक था। उसने तिरहुत पर अधिकार करके बाबर की शत्रुता मोल ली, लेकिन बादमें दोनोंमें एक सम्मानजनक समझौता हो गया। उसने बंगला भाषाकी उन्नति करनेमें योग दिया और 'महाभारत' का बंगलामें अनुवाद भी कराया। नुसरतशाह का १५३२ में देहान्त हो गया।

बंगाल के मुस्लिम सुल्तानोंमें हुसेन सबसे महान् था

इसके बाद बंगाल का इतिहास हुमायूं और शेरशाह के बीच हिन्दुस्तान पर अधिकार रखनेके लिए होनेवाले संघर्षोंमें घुल-मिल जाता है। अन्त में शेरशाह विजयी हुआ और कुछ समय तक शेरशाह और उसके उत्तराधिकारी बंगाल पर शासन करते रहे। उनको सुलेमान करारानी ने निकाल बाहर किया और एक नये अफ़ग़ान-राजवंशकी स्थापना की। यों तो सुलेमान शासन करनेमें पूर्ण स्वतंत्र था, परन्तु ऊपरी तौर पर

उसने अकबर का प्रभुत्व स्वीकार कर रखा था। उसके सेनापति 'कालापहाड़' ने, जिसने हिन्दूधर्म छोड़कर इस्लाम-धर्म अंगीकार कर लिया था, उड़ीसा जीत लिया। इस अफ़ग़ान-राजवंशका दूसरा राजा सुलेमान का लड़का दाऊदखां हुआ, जिसने अकबर की अधीनतामें रहनेसे इन्कार कर दिया, जिसका परिणाम यह हुआ कि उसे अपने प्राणों और राज्यसे हाथ धोना पड़ा (१५७६ ई०)। उसके मरनेके बाद बंगाल मुग़ल-साम्राज्यका एक भाग हो गया।

इमारतें. गौड़ के ध्वंसावशेषमें बंगाल के मुसलमान राजाओं द्वारा बनवाये गये कई सुन्दर भवन मिलते हैं। उनमें सबसे उल्लेखनीय हैं हुसेनशाह का मक़बरा और छोटी सुनहली मसजिद, जिसे हुसेनशाह ने बनवाया था। साथ ही नुसरतशाह द्वारा बनवायी गयी बड़ी सुनहली मसजिद और क़दमरसूल भी दर्शनीय स्थान हैं। सिकन्दरशाह द्वारा १३६८ ई० में पन्दुआ में बनवायी गयी « अदीना मसजिद » बंगाल की सबसे अच्छी इमारत मानी जाती है।

बंगला भाषा को संरक्षण

बंगाल के मुसलमान सुल्तान बंगला-साहित्यके बड़े संरक्षक थे। इस सम्बन्धमें हुसेनशाह और उसके लड़के नुसरतशाह के नाम उल्लेखनीय हैं। नुसरतशाह ने 'महाभारत' का बंगला में अनुवाद कराया था, हालांकि उसके पिताके शासन-कालमें भी उसका एक अनुवाद हो चुका था। मुसलमान-सुल्तानोंके संरक्षणके कारण ही बंगला हिन्दू राजाओंके दरबारकी भाषा बन सकी।

जौनपुर-राज्य. जौनपुर नगरकी स्थापना फ़ीरोज़शाह तुग़लक़ ने की थी। १३९४ ई० में उसके उत्तराधिकारी महमूद ने पूर्वी (शर्की) प्रदेश को अपने एक धर्म-परिवर्तित शक्तिशाली सरदार सरवर के अधिकारमें दे दिया। सरवर ने «ख़्वाजाजहां» की उपाधि धारण की, इस प्रकार वह 'मालिक-उश्-शर्क' (पूर्वका स्वामी) बन गया। उसने अपना प्रधान केन्द्र जौनपुर में स्थापित किया और एक प्रकारसे स्वतंत्र होकर शासन करने लगा। तैमूर के आक्रमणके बाद दिल्ली-साम्राज्य में जो विशृंखलता फैली, उसका लाभ उठाकर ख़्वाजाजहां के दत्तक पुत्र ने 'मुबारक़शाह शर्की' की उपाधि धारण करके अपनेको स्वतंत्र सुल्तान घोषित कर दिया (१३९९ ई०)।

मुबारक़शाह

इब्राहीमशाह जौनपुर का सबसे बड़ा सुल्तान था

सन् १४०० में मुबारक का छोटा भाई इब्राहीमशाह गद्दी पर बैठा। यह जौनपुर के शर्की सुल्तानोंमें सबसे सफल सुल्तान सिद्ध हुआ। उसने महमूद तुग़लक़ की कूटनीतिक चालोंको विफल कर दिया और उसके मरने के बाद दिल्ली पर आक्रमण भी किया। दिल्ली के सैयद-सुल्तानों के हमले

से उसने अपने राज्यकी रक्षा भी की और मालवा से युद्ध किया। वह हिन्दुओंका शत्रु था, लेकिन अगर उसकी धर्मान्धताको छोड़ दें तो वह एक उदार, दानशील और उन्नत विचारोंवाला सुल्तान था। कला और साहित्यका वह बड़ा समर्थक और संरक्षक था। खूबसूरत अटाला मसजिद उसीकी बनवायी हुई है। चालीस वर्षों तक सुख-शान्तिपूर्वक शासन करनेके बाद १४४० ई० में उसकी मृत्यु हो गयी। उसके बाद उसका लड़का महमूद गद्दीका अधिकारी हुआ। महमूद भी अपने पिताकी तरह ही योग्य शासक साबित हुआ। जब दिल्ली की सत्ताका सूरज ढल रहा था तब उसने सुल्तानीके लिए होनेवाले संघर्षमें भी भाग लिया और १४५२ ई० में दिल्ली पर घेरा भी डाला। अठारह वर्ष तक राज्य करनेके बाद उसकी मृत्यु हो गयी। उसका पुत्र हुसेनशाह, जो जौनपुर का अन्तिम आजाद सुल्तान था, बहलोल लोदी के द्वारा सन् १४६७ में हरा दिया गया और बंगाल के सुल्तान हुसेनशाह के दरबारमें शरण लेनेके लिए विवश हुआ। बहलोल ने अपने लड़के बारबक को पूरे अधिकार देकर जौनपुर का वाइसरॉय बना दिया, लेकिन बहलोल के दूसरे लड़के सिकन्दर लोदी ने जो दिल्ली की गद्दीका उत्तराधिकारी हुआ, बारबक को भगा दिया और जौनपुर को दिल्ली-साम्राज्यमें मिला लिया।

बहलोल लोदी ने श[illegible] राजवंशको हटा दिया

शर्की सुल्तानोंके जमानेमे जौनपुर मुस्लिम सभ्यताका केन्द्र हो गया और दूर-दूरके विद्वान् उनके दरबारमें आश्रयकी खोजमें आने लगे, लेकिन उनकी प्रसिद्धि विशेषतः उनके बनवाए हुए विशाल भवनोंके कारण है। इब्राहीमशाह की बनवायी हुई «अटाला मसजिद», महमूद का बनवाया हुआ «लाल दरवाज़ा» और हुसेनशाह द्वारा निर्मित «जामी मसजिद» मुग़ल-कालके पहले बनी हुई इमारतोंमें कला और स्थापत्यकी दृष्टिसे सर्वोत्तम हैं। ये विशाल मसजिदे 'विचित्र शैलीमें बनवायी गयी हैं और उनमें हिन्दू स्थापत्यका भी समावेश है।' वे बहुत विशालकाय हैं। उनके दरवाज़े शानदार हैं लेकिन मीनारें उनमें नहीं हैं।

जौनपुर के सुल्तान विशाल भव[illegible] के निर्माण-कर्त्ताओंमें श्रेष्ठ थे औ[illegible] कला तथा साहित्यके संरक्षक थे

मालवा-राज्य

अलाउद्दीन ख़िलजी के एक अफसरने सन् १३१० में मालवा को विजय किया था, तबसे मालवा दिल्ली-साम्राज्यके अन्तर्गत आ गया था। तत्पश्चात् १४०१ ई० तक इसका शासन दिल्ली से प्रान्तीय गवर्नरके द्वारा होता रहा जब कि तत्कालीन गवर्नर दिलावरखां ने, जो मुहम्मद ग़ोरी के वंशका था, तैमूर के हमलेके बाद फैली अराजकताका लाभ उठाकर

मालवा के ग़ोरी सुल्त[illegible]

«धार» में अपनेको स्वतंत्र सुल्तान घोषित कर दिया। उसने 'सुल्तान शहाबुद्दीन ग़ोरी' की उपाधि धारण करके चार वर्ष तक शासन किया। उसके बाद उसका लड़का «होशंगशाह» गद्दी पर बैठा। उसने मांडूमें अपनी राजधानी स्थापित की और उसे सुन्दर भवनोंसे सजाया। मालवा का इतिहास मुख्यत: गुजरात और अन्य पड़ोसी राज्यों, जैसे जौनपुर, मेवाड़ और दक्खिन, से होनेवाले सतत संघर्षोंकी कहानी है। अपने शासन के प्रारम्भमें ही होशंग गुजरात से हुई एक लड़ाईमें हार गया और बन्दी बना लिया गया, लेकिन उसका राज्य बादमें उसे वापस मिल गया। कूटनीति और षड्यंत्रका वह धुरन्धर ज्ञाता था, इसलिए उसके शासन (जो १४३२ तक चला) का अधिकांश समय गुजरात, जौनपुर और दिल्ली के सुल्तानोंसे संघर्ष करते बीता। उसके बाद उसका लड़का सुल्तान महमूद गद्दी पर बैठा, लेकिन वह बिलकुल निकम्मा था; उसको उसके मंत्री महमूदखां ने, जो खिलजी तुर्क था, मार डाला और सिंहासन पर अधिकार कर लिया।

होशंगशाह

सुल्तान महमूद

मालवा के खिलजी सुल्तान

महमूदखां

महमूदखां ने मालवा में एक नए खिलजी-राजवंशकी नींव डाली, जो एक सदी तक क़ायम रहा। वह मालवा के सुल्तानोंमें सबसे योग्य तथा शक्तिशाली सुल्तान था। उसने मालवा-राज्यकी शक्ति बहुत बढ़ा ली। अपने पड़ोसियों, जैसे गुजरात, राजस्थान के राजपूतों और दक्खिनके बहमनी-सुल्तानोंके, विरुद्ध उसने सफल संघर्ष जारी रखा, परन्तु सन् १४४० में उसे चित्तोर के राणा कुम्भ ने बुरी तरह पराजित किया। अपनी इस विजयकी खुशीमें राणा कुम्भ ने चित्तौड़ में एक कीर्ति-स्तम्भ बनवाया जो अभी तक स्थित है। महमूदखां न्यायप्रिय और उन्नत विचारोंवाला शासक था; हिन्दुओंके प्रति सद्व्यवहार करनेके लिए वह विशेषत: प्रसिद्ध है। उसके बाद «ग़यासुद्दीन» ने १४६९ से १५०१ तक शासन किया, लेकिन उसके लड़के नासिरुद्दीन ने उसे ज़हर दे दिया। नासिरुद्दीन बड़ा क्रूर, अत्याचारी सिद्ध हुआ। १५१२ तक वह गद्दी पर रहा। उसके बाद उसका लड़का महमूद (द्वितीय) शासक बना। उसके समयमें मालवा में राजपूतोंका प्रभाव बढ़ गया और एक योग्य राजपूत-सरदार मेदिनी राय राज्यमें सबसे शक्तिशाली व्यक्ति हो गया। उसने बड़ी वफ़ादारी और बहादुरीसे महमूद की सेवा की, लेकिन सुल्तान शीघ्र ही अपने इस शक्तिशाली मंत्रीसे परेशान हो गया और उससे छुटकारा पानेके लिए उसने गुजरात के राजाकी सहायता ली। मेदिनी राय ने खीझकर मांडू छोड़ दिया और चित्तौड़के राणा सांगा की सहायता चाही। उसकी अनुपस्थितिमें महमूद ने गुजरात के राजाकी मददसे अपना

अधिकार पुनः जमा लिया लेकिन मेदिनी राय राणा सांगा के नेतृत्वमें एक बड़ी सेना लेकर लौटा। राणा सांगा ने महमूद और गुजरात के राजाकी सम्मिलित सेनाको पूर्णतया पराजित कर दिया। महमूद बन्दी बना लिया गया, परन्तु राणा सांगा ने शौर्यपूर्ण उदारतासे उसे मुक्त कर दिया, लेकिन कृतघ्न सुल्तानने इसका बदला राणा सांगा के पुत्र पर उस समय आक्रमण करके लिया जब बाबर ने राजपूतोंको प्रायः हरा दिया था। वह गुजरात के राजा बहादुरशाह से भी झगड़ पड़ा, लेकिन हरा दिया गया और १५३१ में मालवा गुजरात में मिला लिया गया।

मालवा गुजरात में मिला लिया गया

हुमायूं ने १५३५ में मालवा को अस्थाई रूपसे दिल्ली के अधीन कर लिया, लेकिन स्थाई रूपसे तो अकबर ने ही १५६४ में मालवा पर विजय प्राप्त की। मालवा के सुल्तान स्थापत्यके प्रशंसक थे और उन्होंने कई विशाल भवनोंका निर्माण कराया।

गुजरात-राज्य. अलाउद्दीन ने १२९७ में जब गुजरात को जीतकर दिल्ली-साम्राज्यमें मिला लिया, तबसे गुजरात मुस्लिम-राज्य बन गया। १३९६ में (स्मिथ के अनुसार १४०१ में) एक धर्म परिवर्तित राजपूतके लड़के जाफ़रखां ने, जो उस समय गुजरात का गवर्नर था, दिल्ली से सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया और «मुजफ़्फ़रशाह» की उपाधि धारण करके स्वतंत्र सुल्तान बन बैठा। उसने १४११ ई० तक शासन किया। उसके बाद उसका पोता «अहमदशाह» राज्याधिकारी हुआ। अहमद ही गुजरात-राज्यका असली संस्थापक हुआ। वह वीर योद्धा था। मालवा और अन्य पड़ोसी राजपूत-सरदारोंके साथ उसकी बहुत दिनों तक लड़ाई रही, लेकिन उसने कभी हार न खायी। वह सुल्तान फ़ीरोज़ बहमनी का घनिष्ठ मित्र था और उसीकी तरह हिन्दुओंको दंड देनेमें कठोर था। उसने अपने राज्यकी सीमाका बहुत विस्तार किया और अच्छा शासन किया। उसका मुख्य स्मारक «अहमदाबाद» नगर है, जिसका निर्माण उसीने कराया था और शानदार इमारतोंसे उसे सजाया था। १४४१ में उसका देहान्त हो गया।

गुजरात का पहला बड़ा सुल्तान अहमदशाह था

गुजरात का दूसरा प्रसिद्ध सुल्तान «महमूद बीगड़» हुआ, जिसने १४५९ से १५११ के लम्बे समयमें सुख-समृद्धिमें शासन किया। वह अहमदशाह का पोता था और इस राजवंशका सबसे शक्तिशाली सुल्तान था। उसने राजपूतोंके दो पहाड़ी दुर्गो—चम्पानेर और गिरनार या जूनागढ़—पर अधिकार कर लिया और कच्छपर आक्रमण किया तथा अहमदनगर के सुल्तानको हराया। इसीके शासन कालमें पुर्त्तगीज़ पहिले पहल भारतवर्ष में आये। इन अनपेक्षित आगन्तुकोंको रोकनेके लिए

उसकी विजय

पुर्त्तगीज़ोंके साथ समुद्री युद्ध

महमूद बीगड़ ने मिस्र के मामलूक सुल्तानसे सहायता ली। दोनोंके सम्मिलित जहाज़ी बेड़ेने चौल से काफ़ी दूर पर पुर्त्तगीज़ोंको समुद्री लड़ाईके बाद हरा दिया (१५०७), लेकिन दो साल बाद पुर्त्तगीज़ोंने गुजरात और मिस्र के संयुक्त जहाज़ी बेड़ेको 'ड्यू' से थोड़ी दूर पर हरा दिया। महमूद को उनके साथ सुलह करनी पड़ी (१५०९)। उसी समय सुल्तान सिकन्दर लोदी ने गुजरात को स्वतंत्र राज्य स्वीकार कर लिया।

बहादुरशाह

जिस दूसरे सुल्तान पर हमारी दृष्टि जाती है, वह था बहादुरशाह। यह महमूद बीगड़ का पोता और महमूद का चौथा उत्तराधिकारी था। उसने १५२६ से १५३७ तक शासन किया। बहादुरशाह ने अपने दादा की वीरता और यौद्धिक गुणोंको विरासतमें प्राप्त किया था। उसके दो कार्य उल्लेखनीय हैं—एक तो उसने महमूद(द्वितीय)से मालवा छीन लिया और दूसरे, राजपूतोंके शक्तिशाली केन्द्र चित्तौड़ पर अधिकार कर लिया (१५३४ ई०)। अहमदनगरका सुल्तान भी उसके प्रभुत्वके आगे सिर झुकाता था। १५३५ में बहादुरशाह को हुमायूं ने बुरी तरह पराजित किया। उसने अपना राज्य लगभग खो ही दिया था, लेकिन किसी प्रकार उसे बचा लिया। पुर्त्तगालियोंके साथ उसका सम्बन्ध शत्रुवत् था, लेकिन मुग़लोंके दबावके कारण उसे «बेसीन» देकर उनसे सन्धि करनी पड़ी। पुर्त्तगीज़ों ने सन्धिका उल्लंघन करके उसे ड्यू बन्दरगाह में मार डाला। बहादुरशाह की मृत्युके बाद राज्यमें अशान्ति फैल गई, जिसका अन्त मुगल बादशाह अकबर ने सन् १५७३ में गुजरात को उसके अन्तिम सुल्तान मुज़फ़्फ़रशाह (तृतीय) से छीन कर किया।

उसने मालवा और चित्तौड़ जीत लिया, किन्तु हुमायूं ने उसे हरा दिया

गुजरात का स्थापत्य

गुजरात अपने सुन्दर स्थापत्य और लकड़ीकी नक़्क़ाशीके लिए प्रसिद्ध है। सोलहवीं सदीके अन्तमें अहमदाबाद अपने सुन्दर भवनों तथा सजावट आदिके कारण संसारका सबसे सुन्दर नगर समझा जाता था। स्थापत्य अभी तक गुजरात की एक विशिष्ट कला समझी जाती है।

काश्मीर-राज्य. काश्मीर में मुसलमानोंका राज्य उस समय स्थापित हुआ जब १४ वीं शताब्दीके प्रारम्भमें तत्कालीन हिन्दू-राजाके मंत्री शाह मिर्ज़ा ने सिंहासन पर जबरदस्ती अधिकार करके मुस्लिम-राजवंश की स्थापना की। यह वंश १६ वीं शताब्दीके मध्य तक चला। काश्मीर के सुल्तानोंका इतिहास क्रमबद्ध नहीं मिलता। प्रथम सुल्तान शाह मिर्ज़ा ने शमसुद्दीन की उपाधि ग्रहण की। छठे सुल्तान सिकन्दर (१३८६-१४१०) के विषयमें कहा जाता है कि वह बहुत धर्मान्ध था और उसने तलवार के बल पर अपनी अधिकांश प्रजाको इस्लाम क़बूल करने पर मजबूर किया। सुल्तान महमूद की तरह वह भी घोर मूर्ति-तोड़क था।

लेकिन आठवां सुल्तान «जैनुल आबिदीन» उससे बिलकुल भिन्न प्रकृति का था। उसने शान्तिपूर्वक १४१७ से १४६७ तक काफ़ी लम्बे समय तक शासन किया। उसका जीवन सन्तकी भांति था। वह स्वयं कभी मांस न खाता था और अपने राज्यमें उसने गोहत्या भी बन्द करा दी थी। सभी धर्मोंके प्रति सहिष्णुताके क्षेत्रमें वह अकबर का पुरोगामी था। उसने हिन्दुओं परसे जज़िया कर उठा लिया और निर्वासित ब्राह्मणोंको वापस बुला लिया तथा सिकन्दर द्वारा तोड़े गये मन्दिरोंको पुनः बनवानेकी अनुमति दे दी। उसने साहित्य, चित्रकारी और संगीत को प्रोत्साहन दिया।

जैनुल आबिदीन प्रगतिशील शासक था

कुछ समय तक (१५४१-५२) हुमायूं के एक सम्बन्धी मिर्ज़ा हैदर ने भी काश्मीर पर शासन किया। इसके बाद बहुत थोड़े समयके लिए चक-वंश राज्यारूढ़ रहा। उसको हटाकर अकबर ने १५८६ ई० में काश्मीर को दिल्ली-साम्राज्यमें मिला लिया।

बहमनी-राज्य (१३४७-१५२६)

बहमनी-राज्य सन् १३४७ मे हसन गंगू नामक एक अफ़ग़ान अफ़सर द्वारा स्थापित किया गया, जो मुहम्मद बिन तुग़लक़ की नौकरी में रह चुका था। मुहम्मद तुग़लक़ के राज्यमें जब अव्यवस्था फैली तब हसन ने मौक़े से लाभ उठाकर दक्खिनमे दौलताबाद (१३४७ ई०) पर अधिकार कर लिया और अपनेको स्वतंत्र घोषित कर दिया। उसने अलाउद्दीन की उपाधि ग्रहण की। उसने जिस राजवंशकी स्थापना की, वह इतिहासमें बहमनी-वंशके नामसे प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि हसन पहले एक गंगू नामके ब्राह्मण ज्योतिषीका नौकर रह चुका था। अपने पूर्व स्वामीके प्रति कृतज्ञता प्रकट करनेके लिए उसने 'बहमनी' नाम धारण किया। लेकिन स्मिथ इस मत को नहीं मानते। उनका कहना है कि हसन अपने को फ़ारस के बहमन नामक बादशाह का वंशज बतलाता था, इसलिए उसने यह उपाधि ग्रहण की। हसन गंगू ने कुलवर्ग (गुलबर्ग़ा) को अपनी राजधानी बनाया और दक्खिनके उस सारे भागको अपने अधिकारमें कर लिया, जिस पर पहले दिल्ली-साम्राज्यका प्रभुत्व था। दूसरे शब्दोंमें उसका राज्य उत्तरमें बरार से लेकर दक्षिणमें कृष्णा नदी तक और पूर्व में वारंगल या तेलंगाना राज्यकी सीमाको छूता हुआ पश्चिममें समुद्र तक फैला हुआ था, जिसमें गोआ और दभोल बन्दरगाह सम्मिलित थे। १३५८ में हसन का देहान्त हो गया।

हसन गंगू ने बहमनी-राज्य की स्थापना की

उसकी राजधानी कुलवर्ग थी

बहमनी-राज्य का विस्तार

अगला सुल्तान मुहम्मदशाह प्रथम (१३५८-७३) हुआ, जिसका

अधिकांश समय विजयनगर और वारंगल के हिन्दू-राजाओंके विरुद्ध युद्ध करते ही बीता। कुछ समयके लिए उसने वारंगल को कर देने पर विवश भी किया। आठवां सुलतान फ़ीरोज़ (१३९७-१४२२ ई०) बहुत धर्मान्ध था। उसने प्रायः हर साल विजयनगर-राज्य पर आक्रमण किया और राजमुन्दरी तकका प्रदेश जीत लिया। अपने शासनके अन्तिम दिनोंमे उसे वारंगलके हिन्दुओंके हाथों गहरी शिकस्त खानी पड़ी। उसके शासनके प्रारम्भमें बारह वर्ष तक अकाल पड़ा था, जिससे समूचा महाराष्ट्र वीरान हो गया था। फ़ीरोज़ ने दो हिन्दू-राजकुमारियों से विवाह किया, उनमें से एक विजयनगर की थी। उसको इमारतें बनवानेका बड़ा शौक़ था। गुलबर्गा को उसने अच्छे-अच्छे भवनोंसे सुसज्जित किया। उसके भाईने उसे गद्दीसे उतार दिया और मार डाला। वह «अहमदशाह» के नामसे गद्दी पर बैठा (१४२२-३५)। अपने भाई की हारका बदला लेनेके लिए अहमदशाह ने विजयनगर-राज्यको निर्दयतापूर्वक उजाड़ दिया और आपसी समझौतेका कोई ख़्याल न किया। वह इतना धर्मान्ध था कि उसके विषयमें कहा जाता है कि जब २० हज़ार हिन्दू मार डाले जाते थे तब वह एक शानदार दावत देता था। उसके शासन-कालमें दो मुख्य घटनाएं हुईं—वारंगल पर विजय और राजधानीको बीदर ले जाना। उसने मालवा और गुजरात के सुलतानों के विरुद्ध भी युद्ध किया। अहमदशाह के बाद अलाउद्दीन (द्वितीय) (१४३५-५७) गद्दी पर बैठा। उसने भी विजयनगर पर आक्रमण करनेकी परम्पराको जारी रखा और राजाको सम्मानप्रद समझौता करने पर विवश किया। उसके शासन-कालमें सरकारी कर्मचारियोंमें शिया-सुन्नीका मतभेद खूब चला, जिससे शासन-प्रबन्ध अच्छा न रह सका। दक्खिनी मुसलमान अधिकतर सुन्नी थे, लेकिन जो बाहरसे मुसलमान आये—जैसे तुर्क, ईरानी और मुग़ल—वे अधिकतर शिया थे।

फ़ीरोज

अहमदशाह भयंकर धर्मान्ध सुलतान था; उसने वारंगल को जीत लिया और बीदरमें राजधानी बदल ली

दूसरा सुलतान अलाउद्दीन का लड़का हुमायूं बना (१४५७-६१)। यह रक्तपिपासु शासक था, जो "पूरब के नीरो" के नामसे प्रसिद्ध है। प्रसिद्ध महमूद गवां उसका मंत्री था। मुहम्मदशाह (तृतीय) (१४६३-८२) के समयमें बहमनी-राज्य अपनी कीर्तिकी चरम सीमा पर पहुंच चुका था। उसके सुयोग्य मंत्री महमूद गवां ने बेलगांव के दृढ़ दुर्ग पर अधिकार कर लिया, पश्चिमी घाटको अधीन किया और गोआ पर, जिस पर विजयनगर का अधिकार हो गया था, पुनः कब्ज़ा कर लिया। उड़ीसा के राजासे उसने कोंडापल्ली और राजमुन्दरी छीन लिया। मछलीपट्टम् भी उसने जीत लिया और कांची या कांजीवरम् को लूटा।

हुमायूं रक्तपिपासु सुलतान था

लेकिन महम्मदशाह की इतनी बड़ी सफलताओं पर भी उसकी एक भयंकर ग़लतीने पानी फेर दिया और उसके राजवंशका विनाश कर दिया। महमूद गवां के विदेशी होनेके कारण दक्षिणी मुसलमान उससे घृणा करते थे और उसको बरबाद करनेके फेरमें रहते थे। अन्ततः दक्खिनी मुसलमानोंने एक बनावटी पत्र दिखाकर सुल्तानको विश्वास दिला दिया कि गवां के इरादे साफ़ नहीं हैं और वह षड्यंत्रका सृजन कर रहा है। सुल्तानने अपने इन सरदारोंके बहकावेमें आकर महमूद गवां को मरवा डाला (१४८१ ई०)। महमूद गवां की हत्याके साथ ही 'बहमनी राज्यकी सारी एकता और ताक़त जाती रही।' मुहम्मदशाह (तृतीय) के बाद उसका द्वादश वर्षीय पुत्र "महमूदशाह" गद्दी पर बैठा, जिसने १५१८ ई० तक नाममात्रको शासन किया, क्योंकि शासनकी असली बागडोर उसके मंत्री कासिम बरीद के हाथमें थी। उसके शासन-कालमें राज्य बिखरने लगा। सभी प्रान्त धीरे-धीरे अपनी स्वतंत्रता घोषित करने लगे और केवल बीदर के आसपासका थोड़ा-सा इलाक़ा महमूद के क़ब्जेमें रह गया। उसकी मृत्युके बाद चार कठपुतली सुल्तान १५२६ ई० तक बीदर में शासन करते रहे। उसी साल तत्कालीन सुल्तानके वज़ीर अमीर बरीद ने गद्दी पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार बहमनी-राज्यका अन्त हुआ। उसके ध्वंसावशेषसे पांच राज्य स्थापित हुए—बरार, बीदर अहमदनगर, गोलकुंडा और बीजापुर।

मुहम्मदशाह (तृतीय) के शासन-काल में बहमनी-राज्य उन्नति की चरम सीमा पर था

महमूद गवां की हत्या और बहमनी-राज्य का विनाश

पतनके कारण. बहमनी-राज्यका पतन बाहरी आक्रमणोंके कारण नहीं बल्कि उसकी भीतरी कमज़ोरियोंके कारण हुआ। दक्खिनी दल और विदेशी दलके पारस्परिक मनमुटावसे शासन-प्रबन्ध बिगड़ गया। महमूद गवां का अन्यायपूर्ण वध बड़ा घातक रहा, क्योंकि यह उसीकी योग्यता थी कि वह राज्यके विभिन्न भागोंको मिला-जुला कर रखता था। उसकी मृत्युसे एक प्रभावशाली व्यक्ति उठ गया और फूटकी ताक़तोंको खुलकर खेलनेका मौका मिल गया। सुल्तानोंका नैतिक पतन और राज्यको बड़े-बड़े प्रान्तोंमें बांट देना भी बहमनी-साम्राज्यके पतन का एक कारण हुआ।

भीतरी अशान्तिके कारण बहमनी-राज्य का पतन हुआ

महमूद गवां. ख्वाजा महमूद गवां जातिका ईरानी था। वह अपनी योग्यता और अध्यवसायके बल पर बहमनी सुल्तान हुमायूं का मंत्री बन गया। उसने उसके उत्तराधिकारियोंकी भी अच्छी सेवा की। शासक और सेनापति दोनोंके रूपमें वह असाधारण योग्य व्यक्ति था। उसने बहमनी-राज्यकी सीमा दूर-दूर तक फैला दी और कई न्याय-सम्बन्धी क़ानूनी सुधार किये। उसका चरित्र निष्कलंक और उच्च था।

उसका चरित्र और उसके महत्वपूर्ण कार्य

उसने बीदर में एक बड़ा कॉलेज (मकनब) स्थापित किया। विद्याका वह बड़ा प्रेमी था। वह दक्षिणी दलकी ईर्ष्या का शिकार हुआ, लेकिन उसकी मृत्युसे बहमनी-राजवंशका एक जबरदस्त हिमायती जाता रहा और अन्त में उस वंशका पतन हो गया।

रूसी यात्री अथनेसियस निकिटिन

विदेशी यात्री के लेख. बहमनी-सुल्तानोंके युगमे जनताकी क्या स्थिति थी, इसकी झांकी हमें एक रूसी यात्री अथनेसियस निकिटिन के लेखोमे मिलती है। निकिटिन बीदर में बहुत दिनों तक रहा था और मुहम्मदशाह (तृतीय) के शासन-कालमें वह बहमनी-राज्योंमे १४७० से १४७४ तक घूमा-फिरा था। वह लिखता है कि राज्यकी आबादी बहुत है, लेकिन जनताकी आर्थिक स्थिति बहुत बुरी है। दूसरी ओर, सामन्तों और जागीरदारोंके पास धनकी कोई कमी नहीं और वे विलासिता में डूबे हुए है। वह बताता है कि सेना पर बहुत अधिक खर्च किया जाता है; हर सामन्तके पास एक बड़ी संख्यामें सैनिक रहते है। सुल्तानको उसने 'नगण्य व्यक्ति' लिखा है, जो पूर्णतया सामन्तोंकी मुट्ठीमे है।

जनसाधारण की दुरवस्था

बहमनी-राजवंशका मूल्यांकन. बहमनी-राजवंशमें कुल चौदह सुल्तान हुए, जिनमें से अधिकतर धर्मान्ध, निरंकुश शासक थे। इस वंश का राजनीतिक इतिहास मुख्यत: वारंगल और विजयनगर के हिन्दू राज्यों के विरुद्ध छेड़े गये इनके लगातार युद्धकी कहानी है। इन युद्धोमे वारंगल की स्वतंत्रता तो पूरी तरह समाप्त हो गयी, परन्तु विजयनगर ने किसी प्रकार अपनी स्वतंत्रता बचाये रखी; फिर भी कभी-कभी उसे कर अथवा नजराना देने पर बाध्य होना पड़ता था। बहमनी-सुल्तान निरकुश शासक थे; उनका शासन कैसा था, इसका परिचय हमें उन सुल्तानों द्वारा जगह-जगह बनवाये गये अभेद्य दुर्गोंसे मिल जाता है। यद्यपि इस राजवंशने दक्षिणके इतिहासमें लगभग दो सौ वर्षो तक महत्त्वपूर्ण भाग लिया, लेकिन बहुत थोड़ी चीजें ऐसी हैं जिनके लिए इसकी प्रशसा की जा सकती है। शासन-प्रबन्ध अच्छा न था और दक्खिनी तथा विदेशी दलोंके संघर्षके कारण शासनको बड़ी क्षति पहुंची। केवल एक नाम ऐसा है जिसका उल्लेख किया जा सकता है और वह है महमूद गवां का नाम, परन्तु यह भी धर्मान्धतासे अछूता न था। बहमनी-सुल्तानोंका एक ही उज्ज्वल पक्ष है कि उन्होंने मुस्लिम-साहित्यकी वृद्धि की और पूर्वी प्रान्तोंमें सिचाईके लिए नहरे आदि खुदवायीं।

बहमनी-सुल्तानोंका इतिहास विजयनगर के विरुद्ध किये गये युद्धोंकी दु:खद कहानी है

बहमनी-सुल्तानोंने कोशिश तो की कि हिन्दुओंको दक्खिनसे निकाल दिया जाय, लेकिन वे सफल न हुए। परन्तु उन्होंने हिन्दुओंको जबरदस्ती मुसलमान बनाया और विदेशी मुसलमान भी एक बड़ी संख्यामें आ

गये; इस प्रकार दक्षिणमें मुस्लिम जनसंख्या भी कुछ प्रतिशत हो गई।

बहमनी-राज्यके ध्वंसके बाद बने हुए राज्य

१. बरार-राज्य. बरार प्रान्त बहमनी-राज्यसे सबसे पहिले अलग हुआ। सन् १४८४ में गाविलगढ़ के गवर्नर फ़ातुल्ला ने, जो हिन्दूसे मुसलमान बना था, महमूद बहमनी के विरुद्ध विद्रोह कर दिया और अपने को स्वतंत्र घोषित कर दिया। उसका राजवंश इमादशाही नामसे प्रसिद्ध है, क्योंकि उसने 'इमादुलमुल्क' की उपाधि धारण की थी। एलिचपुर में उसकी राजधानी थी। यह राजवंश नब्बे वर्ष तक, अर्थात् १५७४ ई० तक चला। तत्पश्चात् अहमदनगर ने बरार को छीन लिया।

इमादशाही राजवंश

२. बीदर-राज्य. महमूदशाह बहमनी के एक अफ़सर कासिम बरीद ने सन् १४९२ में अपनेको प्राय: स्वतंत्र कर लिया, परन्तु सुल्तान का दर्जा नहीं अपनाया। उसके लड़के अमीर बरीद ने सन् १५२६ में सुल्तानके समकक्ष अपनेको घोषित कर दिया, लेकिन उसने भी कोई शाही पदवी नहीं धारण की। तीसरे सुल्तान अली बरीद ने 'शाह' की उपाधि ग्रहण की। बरीदशाही राजवंश महत्त्वपूर्ण वंश न था; १६०९ के लगभग इसका अन्त हो गया और बीदर बीजापुर में मिला लिया गया।

बरीदशाही राजवंश

३. अहमदनगर-राज्य. सन् १४९० में अहमदनगर प्रान्त सुल्तान महमूदशाह के प्रभुत्वसे स्वतंत्र हुआ। इसका संस्थापक मलिक अहमद था, जो महमूद गवां की हत्या करानेवालोंमें से प्रमुख व्यक्ति, निज़ामुल-मुल्क का लड़का था। सन् १४९० म उसने महमूदशाह की सेनाको हरा दिया और «अहमद निज़ामशाह» के नामसे स्वतंत्र सुल्तानकी हैसियत से गद्दी पर बैठा। उसके द्वारा संस्थापित राजवंश «निज़ामशाही» के नामसे प्रसिद्ध है। उसने अहमदनगर को बसाया और उसे अपनी राज-धानी बनाया। दौलताबाद के क़िलेको जीतकर उसने अपने राज्यको सुदृढ़ किया। वह १५०८ ई० में मर गया। उसके बाद उसका लड़का बुरहान निज़ामशाह गद्दी पर बैठा। इसने १५५३ ई० तक ४५ वर्ष शासन किया। उसने शिया मतको स्वीकार किया और उसीको राजधर्म बना दिया। गुजरात के बादशाह बहादुरशाह ने इसके शासन-कालमें बरार के सुल्तानकी रक्षाके लिए अहमदनगर पर घेरा डाला। बुरहान को बहादुरशाह का प्रभुत्व स्वीकार करना पड़ा। सन १५५० के लगभग उसने बीजापुर के सुल्तानके विरुद्ध विजयनगर के राजासे समझौता किया। उसका उत्तराधिकारी हुसेनशाह दक्षिणके सुल्तानोंके संघमें शामिल हो

निज़ामशाही वंश

बरार पर विजय

गया। इनकी सम्मिलित सेनाने १५६५ ई० में विजयनगर को बरबाद कर दिया। अहमदनगर के इतिहासमें दूसरी उल्लेखनीय चीज़ हुई १५७४ में बरार पर अधिकार। इसके बादका निज़ामशाहीका इतिहास मुग़ल-सम्राटोंके हमलेके विरुद्ध रक्षात्मक युद्धकी कहानीमात्र है। सन् १५९६ ई० में उत्तराधिकारके मामलेमें कुछ झगड़ा उठ खड़ा हुआ। सम्राट् अकबर ने इस अशान्तिका लाभ उठाया और अपने पुत्र मुराद को अहमदनगर पर घेरा डालनेके लिए भेजा। चांदबीबी ने बड़ी बहादुरीसे अहमदनगरकी रक्षा की, लेकिन बादमें अकबर को सन्तुष्ट करनेके लिए उसे बरार से हाथ धोना पड़ा, परन्तु उसके अफ़सरोंने ही उसे मार डाला और अहमदनगर १६०० ई० में मुगलोंके हाथमें आ गया। राजधानीके चले जानेसे अहमदनगर का पूरा राज्य अकबर के हाथमें नहीं आ गया, बल्कि उसका कुछ हिस्सा ही आया। इस घटनाके बादसे राज्यका सूत्र-संचालन एक असाधारण योग्य अबीसीनियन मंत्री मलिक अम्बर करता रहा। उसने मुग़ल-सेनाके छक्के छुड़ा दिये और १६१० में पुन: अहमदनगर पर कब्ज़ा कर लिया। लेकिन अहमदनगर शीघ्र ही उसके हाथसे निकल गया। फिर भी जब तक मलिक अम्बर जीवित रहा, मुग़लोंकी दक्षिणमें दाल न गली। अहमदनगर सन् १६३७ में अन्तिम रूपसे शाहजहां द्वारा मुगल-साम्राज्यमें मिला लिया गया।

मुग़लों के साथ सम्बन्ध

मलिक अम्बर की सेवायें

टिप्पणी. मलिक अम्बर केवल योद्धा ही न था, वरन् वह अच्छा अर्थशास्त्री भी था। उसने दक्षिणमें एक नया मालगुजारीका तरीक़ा जारी किया। दक्षिणमें उसका नाम न्यायप्रिय सरकारका प्रतीक बन गया था।

कुतुबशाही राजवंश

४. गोलकुंडा-राज्य. इस राज्यकी स्थापना « कुली क़ुतुबशाह » ने की थी, जिसे मुहम्मद गवां ने पूर्वी प्रदेशोंका गवर्नर नियुक्त किया था। मुहम्मद गवां की अन्यायपूर्ण हत्यासे असन्तुष्ट होकर वह बहमनी-दरबारसे निकल आया था, लेकिन महमूदशाह की अधीनता वह मानता रहा। जब बरीद-वंशका प्रभुत्व दरबारमें बढ़ने लगा तो इसे बड़ी निराशा हुई और १५१२ ई० में अपनेको स्वतंत्र घोषित करके इसने सुल्तानकी पदवी ग्रहण कर ली। उसने जिस राजवंशकी स्थापना की, वह «क़ुतुबशाही» कहलाता है। गोलकुंडा-राज्यने दक्षिणी राज्योंके आपसी झगड़ोंमें न पड़ना ही उचित समझा और प्राय: वह तटस्थ ही रहा। प्रथम सुल्तान क़ुतुबशाह ने वारंगल से अपनी राजधानी गोलकुंडा में हटा ली। बादमें सुल्तान हैदराबाद में रहने लगा। क़ुतुबशाह काफ़ी दिनों तक सुख-समृद्धिपूर्वक शासन करता रहा। १५४३ में उसके पुत्र

क़ुतुबशाह

जमशेद ने उसकी हत्या कर दी। जमशेद ने सात वर्षों तक शासन किया। अगला सुल्तान इब्राहीम विजयनगर के विरुद्ध दक्षिणी राज्यों के संघमें शामिल हो गया। वह अच्छा शासक था। हिन्दुओंके प्रति उसकी नीति उदार थी। हिन्दुओंको उसने राज्यके ऊंचे-ऊंचे पदों पर नियुक्त किया। उसके उत्तराधिकारी सुल्तान मुहम्मद कुलीको इमारतें बनवानेका शौक़ था। उसने कई शानदार इमारतें बनवायीं। सन् १६११ ई० में उसकी मृत्यु हो गयी। तत्पश्चात् गोलकुंडा का मुग़ल-सम्राटोंसे संघर्ष चलने लगा। १६८७ में औरंगज़ेब ने गोलकुंडा को मुग़ल-साम्राज्य में मिला लिया। क़ुतुबशाही वंशका अन्तिम सुल्तान हसन क़ुतुबशाह हुआ।

इब्राहीम

औरंगज़ेब ने गोलकुंडा को मुग़ल-साम्राज्यमें मिला लिया

५. बीजापुर-राज्य. बहमनी-राज्यके ध्वंसावशेषसे जिन पांच राज्योंकी उत्पत्ति हुई, उनमें बीजापुर सबसे प्रमुख था। इसकी स्थापना यसुफ़ आदिलशाह ने की, जो फ़िरिश्ता के कथनानुसार टर्की के सुल्तान मुराद (द्वितीय) का लड़का था। टर्की में उसकी जानको खतरा था, इसलिए उसे ईरान भेज दिया गया, जहांसे वह बीदर आ गया। वहां महमूद गवां ने इसको ग़ुलामकी तरह ख़रीदा था। अपनी योग्यताके कारण वह राज्यमें उत्तरोत्तर उन्नति करता गया और अन्तमें बीजापुर का गवर्नर बना दिया गया। १४८९ में उसने अपनेको स्वतंत्र घोषित कर दिया। उसके राजवंशका नाम उसीके नाम पर «आदिलशाही वंश» पड़ा।

आदिलशाही वंश

«यूसुफ़ आदिलशाह» कुशल और न्यायप्रिय शासक सिद्ध हुआ। उसने शिया मतको अपनाया और उसीको राजधर्म बना दिया, लेकिन सुन्नियोंके प्रति भी उसका व्यवहार सहिष्णुतामय रहता था। इस मत-परिवर्तनके कारण बड़ा विवाद उठ खड़ा हुआ और पड़ोसी राजाओंने बीजापुर के विरुद्ध एक खतरनाक गुटबन्दी कर ली। आदिलशाहने कुछ समयके लिए सुन्नी मतको पुन: पदस्थ कर दिया और इस प्रकार अपने विरुद्ध बने इस गुटको छिन्न-भिन्न कर दिया। जब खतरा टल गया तब उसने पुन: जनतामें शिया मतका प्रचार प्रारम्भ करा दिया। यूसुफ़ आदिलशाह ने विजयनगर और अपने पड़ोसी मुस्लिम राज्योंसे लड़ाइयां लड़ीं, लेकिन उसका सबसे बड़ा कार्य था पुर्तगीज़ सेनापति अलबुक़र्कके हाथसे गोआ को छीन लेना। उसके मरनेके बाद (१५१०) पुर्तगीज़ोंने गोआ पर पुन: अधिकार कर लिया। अपने शासनके प्रारम्भिक दिनोंमें यूसुफ़ ने एक मरहठा लड़कीसे विवाह कर लिया। हिन्दुओंके प्रति उसका व्यवहार अच्छा था; उन्हें वह ऊंचे-ऊंचे पदों पर भी नियुक्त

यूसुफ़ आदिलशाह बीजापुर राज्यका संस्थापक और सबसे बड़ा शासक था

करता था। अपने न्याय और ईमानदारीके लिए वह प्रसिद्ध था। कलाकारों और विद्वानोंका वह सहायक तथा संरक्षक था। उसके बाद उसका नाबालिग लड़का इस्माइलशाह गद्दी पर बैठा। उसकी नाबालिग़ीमें उसके एक मंत्री कमालखां ने अभिभावक (रीजेण्ट) का कार्य किया। उसने स्वयंको सुल्तान बनाना चाहा, लेकिन इस कोशिशमें मारा गया। इस्माइल ने विजयनगर से रायचूर दोआब का इलाक़ा छीन लिया। वह शिया-मतावलम्बी था। उसके दरबारमें फ़ारस के बादशाह ने बीजापुर को स्वतंत्र राज्य मानते हुए अपना राजदूत भेजा था। इस्माइल के बाद उसका लड़का «मल्लू» गद्दी पर बैठा, लेकिन वह बहुत दुष्ट था, इसलिए उसके स्थान पर उसका भाई «इब्राहीम» बैठाया गया। नया सुल्तान कट्टर सुन्नी था, इसलिए उसने फ़ारस और अन्य विदेशोंके रहनेवालोंको अपने दरबारमे हटा दिया। एक बार विजयनगर के कुछ सरदारोंने उसे निमंत्रित किया था। वहासे वह खूब भेंट-नज़राने लेकर लौटा। इसके बाद विजयनगर के मंत्री रामराजा न बीजापुर पर आक्रमण करनेके लिए गोलकुंडा, बीदर और अहमदनगर के साथ संयुक्त मोर्चा बनाया, लेकिन इब्राहीम के योग्य मंत्री असदखा की नीतिज्ञतासे बीजापुर बरबाद होनेसे बच गया। इब्राहीम १५५७ में मर गया और अली आदिलशाह उसका उत्तराधिकारी हुआ। अली ने शिया मत स्वीकार कर लिया और सुन्नियोंको परेशान करने लगा। उसने विजयनगर के मंत्री रामराजा से एक सैनिक समझौता करके दोनों राज्योंकी सम्मिलित सेनासे अहमदनगर पर आक्रमण किया और उसके प्रदेशोंको बरबाद कर दिया। हिन्दुओंने अमानुषिक अत्याचार किये। रामराजाने अपने मुसलमान मित्रोंके साथ इतना अपमानजनक व्यवहार किया कि बरार को छोड़कर दक्षिणके सभी मुसलमानी राज्य उसके विरुद्ध उठ खड़े हुए और तालीकोट की लड़ाईमें उसको हरा दिया तथा १५६५ ई० में विजयनगर को तहस-नहस कर दिया। अली आदिलशाह १५७९ में मार डाला गया और उसके स्थान पर उसका नाबालिग भतीजा इब्राहीम आदिलशाह (द्वितीय) गद्दी पर बैठाया गया। इब्राहीम की नाबालिग़ीमें कुछ समय तक उसकी मां चांदबीबी, जो इतिहासमें बहुत प्रसिद्ध हो चुकी है, राज्य-कार्य संभालती रही। इब्राहीम ने अहमदनगर पर चढ़ाई करनेमें अकबर का साथ दिया और १५९५ ई० में अहमदनगर के सुल्तानको हरा दिया और मार डाला। बीजापुर और अहमदनगर के राज्योंके बीच यह अन्तिम युद्ध था। इब्राहीम आदिलशाह (द्वितीय) सन् १६२६ ई० में मर गया। आदिलशाही सुल्तानोंमें उसका स्थान सम्भवत: सबसे ऊंचा है। वह

इस्माइलशाह

विजयनगर की बरबादी

इब्राहीम आदिलशाह (द्वितीय) सुयोग्य और सुधरे विचारों का सुल्तान था

योग्य शासक भी था। उसने मालगुजारी और बन्दोबस्तका एक अच्छा तरीक़ा लागू किया था। सुन्नी मुसलमान होते हुए भी वह अन्य सम्प्रदायों के प्रति असहिष्णु न था। हिन्दुओं पर उसकी कृपादृष्टि थी, उन्हें उसने शासन और सेनाके उच्च पदों पर भी नियुक्त किया था। पुर्त्तगालवालों से भी उसका सम्बन्ध अच्छा था; उन्हें उसने अपने राज्यमें ईसाई धर्म का प्रचार करनेकी छूट दे दी थी। उसको इमारतें बनवानेका भी शौक़ था और उसने कई शानदार इमारतें बनवायी।

बीजापुर का पतन

इब्राहीम (द्वितीय) के बाद उसका लड़का मुहम्मद बैठा, जिसने शाहजहां को टैक्स देना स्वीकार कर लिया। उसके शासन-कालमें मरहठोंका आक्रमण शुरू हो गया और उसके लड़के अली (द्वितीय) को शिवाजी से लड़ना पड़ा। इस वंशका अन्तिम सुल्तान सिकन्दर था, जिसे औरंगज़ेब ने बन्दी बनाकर सन् १६८६ में बीजापुर को मुग़ल-साम्राज्यमें मिला लिया था।

गोलकुंडा और बीजापुर का स्थापत्य

टिप्पणी. गोलकुंडा और बीजापुर ने उत्तरी भारत से भिन्न एक नयी स्थापत्य शैलीका विकास किया। गोलकुडा के स्थापत्यमें एक विशेष बात है कि 'पतली गरदनवाले विचित्र गुम्बद' उसमें पाये जाते हैं। बीजापुर के सुल्तानोंने भी कई शानदार इमारतें बनवायीं, जो 'भव्यता, विशालता और निर्माण-कौशल' में भारत की किसी भी इमारत से श्रेष्ठ हैं। इन सबमें मुहम्मद का मकबरा सुन्दर है। इसकी बनावट सचमुच अद्वितीय है।

ख़ानदेश-राज्य. ताप्ती की घाटीमें स्थित ख़ानदेशका छोटा-सा राज्य सन् १३८८ में मलिक राजाके नेतृत्वमें स्वतंत्र हो गया था। इस की राजधानी बुरहानपुर में थी। कुछ समय तक ख़ानदेश गुजरात के भी अधीन रहा। इसके शासक फ़ारूक़ी-राजवंशके कहलाते हैं। इस वंशका नवां सुल्तान मीरन मुहम्मदशाह १५३६ ई० में उत्तराधिकारके नियमके अनुसार गुजरात का भी राजा हो गया, लेकिन उसी साल उसकी मृत्यु हो गयी और ये दोनों राज्य अलग-अलग हो गये। ख़ानदेश के सुदृढ़ दुर्ग असीरगढ़ को अकबर ने जीत लिया और सन् १६०१ में ख़ानदेश मुग़ल-साम्राज्यमें मिला लिया गया।

विजयनगर का हिन्दू-राज्य

इसकी उत्पत्ति. मलिक काफ़ूर और उसके बादके मुसलमानोंके सुदूर दक्षिण पर आक्रमण इतने विनाशकारी और हिन्दू-सभ्यताके लिए

इतने घातक सिद्ध हुए कि एक राष्ट्रीय आन्दोलन खड़ा हो गया, जिसकी परिणति विजयनगर के हिन्दू-राज्यकी स्थापनामें हुई। इस आन्दोलन का नेतृत्व पांच भाईयोंने किया था। जब मुसलमानोंने १३२३ में वारंगल पर अधिकार कर लिया, तब ये पांचों भाई वहांसे भाग निकले। मैसूर के होयसल-राजाओंकी राजधानी द्वारसमुद्र के भी मुसलमानोंके हाथमें चले जाने पर इस आन्दोलनने और ज़ोर पकड़ा। इन पांच भाइयोंमें से दो (जो मुस्लिम-सेनाओंकी बाढ़को रोकनेमें अग्रणी थे) का नाम हरिहर राय (प्रथम) और बुक्का राय था। सन् १३३६ में इन्होंने विजयनगर नगरकी नींव डाली। यह नया राज्य बड़ी शीघ्रतासे विस्तृत होने लगा। दोनों भाइयोंके जीवन-कालमें ही मुसलमान मदुरा से निकाल दिये गये और चोल-राज्य विजयनगर में मिला लिया गया।

इस राज्यकी स्थापना बुक्का और उसके भाईयों द्वारा दक्षिण में इस्लामकी प्रगतिको रोकनेके लिए हुई थी

वैदेशिक सम्बन्ध. विजयनगर का बाह्य इतिहास मुख्यत: दक्षिणके मुसलमान-सुल्तानोंसे हुई उसकी निरन्तर लड़ाइयोंकी कहानीमात्र है। इन युद्धोंमें अधिकतर मुसलमानोंको सफलता मिली, लेकिन हिन्दुओंने उनके आक्रमणका अच्छा प्रत्युत्तर दिया और शत्रुओंको उनकी सीमाओं से आगे क़दम न रखने दिया। दक्षिणके सुल्तान बहुधा एक-दूसरेके विरुद्ध युद्ध छेड़ते रहते थे, और उनमें से कोई न कोई पक्ष अवश्य विजयनगर-राज्यकी सहायता लेता था। इस नये हिन्दू-साम्राज्यका पुर्त्तगालियोंसे भी अच्छा सम्बन्ध था।

दक्षिणके सुल्तानोंके साथ युद्ध

विजयनगर का राजा

बुक्का

हरिहर (प्रथम) और बुक्का, जिन्होंने इस राज्यकी स्थापना की, साधारणतया इसके प्रथम दो नरेश गिने जाते हैं, हालांकि उन्होंने कभी राजाका पद ग्रहण नहीं किया। बुक्का ने चीन के सम्राट्के दरबारमें अपना राजदूत भेजा। उसका अधिकांश समय बहमनी-सुल्तान मुहम्मदशाह और उसके उत्तराधिकारी मुजाहिदशाह से युद्ध करते बीता। वह सन् १३७६ में मर गया। उसका लड़का और उत्तराधिकारी हरिहर (द्वितीय) ही असली मानेमें विजयनगर का स्वतंत्र राजा हुआ, क्योंकि उसने सभी राजसी पदवियां धारण कीं। उसने समस्त दक्षिणी भारत में, जिसमें त्रिचनापल्ली और कांजीवरम भी शामिल थे, अपना राज्य सुदृढ़ कर लिया। वह शैव-मतावलम्बी था, लेकिन अन्य मतों तथा सम्प्रदायोंके प्रति भी उदार तथा सहनशील था। १४०४ ई० में उसकी मृत्यु होनेके बादके दो वर्षों तक उत्तराधिकारका झगड़ा चलता रहा। बादमें देव राय

हरिहर (द्वितीय)

(प्रथम) राजा बना। उसके शासन-कालमें बहमनी-सुल्तान फ़ीरोज़ ने निर्दयतापूर्वक विजयनगर राज्य को लूटा। अपनी पुत्रीका सुल्तानसे विवाह करके किसी प्रकार देव राय ने स्वतंत्रता खरीदी। बुक्का के वंश में देव राय (द्वितीय) (१४२१-४८) सबसे प्रतापी राजा हुआ। इसके समयमें विजयनगर-साम्राज्यका विस्तार सुदूर दक्षिणमें हो गया और विजयनगर हिन्दुस्तान के सुन्दरतम नगरोंमें से एक हो गया। इसीके शासन-कालमें इटालियन यात्री निकोलो कोण्टी और अब्दुर्रज़्ज़ाक़ विजयनगर में आये। देव राय को अहमदशाह और अलाउद्दीन आदि बहमनी-सुल्तानोंसे लड़ाइयां लड़नी पड़ीं, किन्तु उन्होंने विजयनगर को बरबाद कर दिया। उसकी मृत्युके बाद काफ़ी दिनों तक अशान्ति और षड्यंत्रोंका बोलबाला रहा, अन्ततः चन्द्रगिरि के गवर्नर «नरसिंह सालुवा» ने तत्कालीन अयोग्य राजाको राज्यच्युत करके और स्वयं सिंहासन पर बैठकर (१४८६ ई०) इस अव्यवस्थाका अन्त किया। यह बलात् शासन हथियानेकी पहिली घटना थी। नरसिंह अच्छा शासक सिद्ध हुआ और अपने सुशासनसे उसने राज्यकी खोयी हुई प्रतिष्ठा पुनः प्राप्त कर ली। तमिल-प्रदेशमें उसने बहुत दूर तक आक्रमण किया और अपने मुस्लिम पड़ोसियोंसे भी लड़ाइयां लड़ीं। सन् १५०५ में उसके सेनापति नरसा नायक ने उसके पुत्रकी हत्या कर दी। विजयनगर के इतिहासमें बलात् शासन हथियानकी यह दूसरी घटना हुई। नरसा नायक तुलवा था और उसका वंश तुलवा-राजवंश कहलाता है।

देव राय (द्वितीय)

नरसिंह सालुवा

तुलवा राजवंश

इस नये राजवंशमें «कृष्णदेवराय» नामक एक बड़ा प्रतापी राजा हुआ। वह १५०९ में गद्दी पर बैठा और १५२९ तक राज्य करता रहा। वह दक्षिणी भारत का अन्तिम हिन्दू-राजा था। उसकी तुलना इतिहासके किसी भी बड़े-से-बड़े नरेश से की जा सकती है। वह जितना महान् युद्ध में था, उतना ही महान् शान्ति-रक्षामें भी था। उड़ीसा के राजासे उसे समय-समय पर बड़ा कष्ट मिलता रहता था, इसलिए उसने उस पर आक्रमण करके उदयगिरि और कोंडाविदु पर अधिकार कर लिया। उसका सबसे उल्लेखनीय कार्य था बीजापुर के सुल्तानसे रायपुर दोआब को छीन लेना। कुछ समयके लिए उसने बीजापुर पर भी क़ब्ज़ा कर लिया था और गुलबर्गा का क़िला तोड़-फोड़ दिया था। अपने समयके अन्य राजाओंके प्रतिकूल कृष्णदेव की विजयमें मानवता और उदारता का पुट अवश्य रहता था। पुर्त्तगीज़ यात्री पेज़ ने खुले शब्दोंमें उसकी प्रशंसा की है। धार्मिक-उत्साह, सहिष्णुता, विदेशियोंका सत्कार, साहित्य-प्रेम और पवित्र जीवनके लिए यह राजा प्रसिद्ध है। उसने पुर्त्तगाली

कृष्णदेव राय विजयनगर का सबसे महान् और अच्छा राजा हुआ

उसका चरित्र

गवर्नर अलबुकर्कके साथ मित्रता रखी और उसको अटकल में क़िला बनाने की अनुमति दे दी। उसके बाद उसका भाई «अच्युत» (१५२९—४२) सिंहासन पर बैठा। अच्युत के शासन-कालमें राज्यके सामन्तोंमें षड्यंत्र का बोलबाला रहा; यहां तक कि एक दलने बीजापुर के सुल्तानको भी सहायताके लिए निमन्त्रित कर दिया। अच्युत के बाद उसका भतीजा «उदाशिव» गद्दी पर बैठा, लेकिन वह नाममात्रका राजा था, वास्तविक शक्ति तो उसके मंत्री रामराजा के हाथमें थी, जिसका राजकुल से वैवाहिक सम्बन्ध था। रामराजा ने पड़ोसी मुसलमान-राज्योंकी भीतरी राजनीतिमें खूब हिस्सा लिया। अहमदनगर और बीजापुर के आपसी झगड़ोंमें उसने अपने हितको ध्यानमें रखते हुए कभी एकका और कभी दूसरेका पक्ष लिया। सन् १५५८ में उसने बीजापुर के साथ मिलकर अहमदनगर पर आक्रमण किया और उस राज्यको निर्दयतापूर्वक बरबाद किया। अपने मुसलमान मित्रोंके साथ उसने इतना बुरा सलूक किया कि बरार को छोड़कर दक्षिणके सभी मुसलमान-सुल्तानोंने संयुक्त मोर्चा बना कर विजयनगर पर आक्रमण कर दिया। दोनों ओर की शत्रु-सेनाएं «तालीकोट» के मैदानमें मिलीं, जहां भीषण लड़ाई हुई। अन्तमें रामराजा हार गया और मार डाला गया (१५६५ ई०)। विजयनगर का भव्य नगर बुरी तरह लूटा गया और बरबाद कर दिया गया। इस विनाशको देखकर सुल्तान महमूद के कृत्य भी पीछे पड़ जाते थे। विजयनगर का नाम-निशान मिट गया, लेकिन इस विनाशके बावजूद मुसलमानोंके हाथमें विजयनगर राज्यका बहुत थोड़ा प्रदेश ही आया; शेष भाग स्थानीय हिन्दू-सरदारोंके अधिकारमें आ गया। इन सरदारोंमें से कुछ शक्तिशाली शासक भी हुए।

रामराजा ने दक्षिणकी राजनीतिमें सक्रिय भाग लिया

तालीकोट का युद्ध (१५६५ ई०)

तालीकोट के युद्धके बाद विजयनगर का विनाश

सदाशिव का उत्तराधिकारी रामराजा का भाई तिरुमाल हुआ, जिसने बलात् सिंहासन पर अधिकार कर लिया। इस राजवंशका सबसे प्रमुख राजा वेंकट (प्रथम) हुआ जो १५८५ में सिंहासन पर बैठा। उसने चन्द्रगिरि में अपनी राजधानी बदल ली। यह तेलगू भाषाका अनन्य संरक्षक और वैष्णव साहित्यका पोषक था। इस वंशके राजा वेंकट (द्वितीय) ने अंग्रेजोंको सन् १६४० में कुछ भूमि पट्टे पर दी, जहां उन्होंने मद्रास की नींव डाली। अनेगुंडी का वर्तमान राजा रामराजा के वंशका प्रतिनिधि है।

विजयनगर-राज्यका शासन-प्रबन्ध

विजयनगर-राज्यकी सरकारका संचालन निरंकुश पद्धति पर होता था।

विजयनगर के राजा निरंकुश शासक थे और उनका शासन-प्रबन्ध अच्छा था

राजाकी शक्ति असीमित थी। उसकी सहायताके लिए एक काउंसिल होती थी, जिसमें मंत्री, गवर्नर तथा बड़े-बड़े सैनिक सम्मिलित थे, परन्तु देशकी समस्त राजकीय, सैनिक तथा न्याय-सम्बन्धी शक्ति राजा ही में केंद्रीभूत थी। साम्राज्य लगभग दो सौ प्रान्तोंमें विभाजित था, जिसमें से हरेक एक गवर्नरके नियंत्रणमें था। गवर्नर एक निश्चित संख्यामें राजस्व (मालगुजारी) और सुसज्जित सैनिक कर-रूपमें देता था। इस प्रकार राज्यका संगठन सामन्तवादी था। गवर्नर अपने प्रान्तमें सर्वोच्च अधिकारी थे, लेकिन उन पर राजाका कड़ा नियंत्रण रहता था। किसानों से उपजका $\frac{1}{6}$ भाग लगान लिया जाता था, किन्तु अनाज न लेकर उतने मूल्यका रुपया लिया जाता था। लगानके अतिरिक्त और भी कई प्रकार के कर थे जो किसानोंको बहुत अखरते थे। दंडका नियम बड़ा कड़ा था। जुर्मोंके लिए कठोर सजाएं मिलती थीं। वेश्यावृत्ति पर भी राज्यका नियंत्रण था और वेश्याओंसे भारी टैक्स लिया जाता था। राजाके पास लगभग दस लाख सुशिक्षित सैनिक थे। विशेष अवसरों पर वह इतनी ही सेना और संगठित कर सकता था। कुल मिलाकर देश सुखी, सम्पन्न और सुशासित था।

टिप्पणी. स्मिथ का यह कहना कि 'साधारण जनता अत्याचार-पीड़ित थी और उसको परेशान किया जाता था', सन्देहास्पद है। जितने विदेशियोंने विजयनगर-राज्यका भ्रमण किया, उन्होंने यही विचार प्रकट किया कि देश घना आबाद था और कृषि तथा व्यापारकी स्थिति अच्छी थी। यह समझनेमें कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए कि यदि जनता पर क्रूर अत्याचार होते या राज्यमें अव्यवस्था रहती, तो न तो देश ही घना आबाद होता और न खेतीकी हालत ही अच्छी होती।

सामाजिक स्थिति. खाने-पीनेमें बड़ी ढिलाई थी। लोगोंमें मांस खानेका प्रचलन था, हालांकि शाकाहारी ब्राह्मण आदरकी दृष्टिसे देखे जाते थे। भेड़ और भैंसोंकी बलि दी जाती थी। सती-प्रथाका भी जोरोंसे प्रचार था। चितामें जलकर स्त्रियोंमें सती होनेका रिवाज था, परन्तु तेलगू-स्त्रियां अपने मृत पतिके साथ जीवित ही गाड़ दी जाती थीं। मंत्रीकी आज्ञा लेकर द्वन्द्वयुद्ध किया जा सकता था और द्वन्द्वयुद्ध करनेवाले सम्मान की दृष्टिसे देखे जाते थे। स्त्रियोंकी दशा सन्तोषजनक थी। उनको शिक्षा दी जाती थी और राजघरानेमें उनको लेखकका पद प्राप्त हो जाता था।

विदेशियोंके लेख. विजयनगर की दशाकी झांकी हमें उन विदेशी यात्रियोंके वर्णनसे मिल जाती है, जिन्होंने विजयनगर का भ्रमण किया

विजयनगर की भव्यता के विषयमें विदेशी यात्रियोंके लेख

था और जो उसकी भव्यतासे बहुत प्रभावित हुए थे। इटालियन यात्री «निकोलो कोण्टी» ने, जो सन् १४२० के लगभग विजयनगर आया था, लिखा है कि नगरके चारों ओर लगभग ६० मीलके घेरेमें प्राचीर खड़ी है। उन दिनों प्रचलित सती-प्रथाका भी उसने उल्लेख किया है। «अब्दुर्रज़्ज़ाक़», जिसे तैमूर के लड़केने कालीकट के राजाके दरबारमें राजदूत बनाकर भेजा था, विजयनगर की प्रशंसा करते हुए लिखता है—'यह नगर ऐसा है, जिसकी टक्करका दूसरा नगर इस संसारमें अन्यत्र होनेकी बात न कानोंने सुनी है, न आंखोंने देखी है।' वह आगे लिखता है—'नगर सात चारदीवारीसे घिरा हुआ है।' वह यहाके शासन-प्रबन्धको देखकर दंग रह गया। उसने लिखा है कि जोहरी खुले आम बाज़ारमें जवाहरात बेचते थे। उसने पुलिसकी योग्यताकी प्रशंसा की है और कहा है कि नगर घना आबाद था और जनता समृद्धिशाली थी। साधारण नागरिक भी जवाहरात और सोनेके गहने पहनते थे। पुर्तगीज़ यात्री «पेज़» ने भी, जिसने सन् १५२२ में कृष्णदेव राय के शासनकाल में विजयनगर की यात्रा की थी, नगरके सौन्दर्यका अथक वर्णन किया है। उसकी सम्मतिमें विजयनगर का विस्तार रोम नगर की भांति था। नगरमें १,००,००० से अधिक मकान थे। अनेक सुन्दर तालाबों, नहरों और उद्यानोसे नगर की शोभा बढ़ायी गयी थी। उसने इस नगरको संसारमें सबसे अधिक साधन-सम्पन्न नगर माना है। राजमहलके अहातेके भीतर ३४ सड़कें थीं। पेज़ राजप्रासादके एक कमरेमें हाथी-दांत पर की हुई नक़्क़ाशीको देखकर इतना विस्मित हुआ कि उसने लिखा है कि समस्त संसारमें ऐसी कला-कृति अन्यत्र न होगी। उसने लिखा है कि राजाके पास एक विशाल सेना थी, जिसके सैनिक शारीरिक दृष्टिसे सबल और व्यक्तिगत रूपसे साहसी थे। एक दूसरे पुर्तगीज़ यात्री नुनिट्ज़ ने १५३५ ई० के लगभग लिखा है कि राजा सोने-चांदीके बर्तनोंका व्यवहार करता था और राजदरबारमें बड़ी शान-शौकत बरती जाती थी।

निकोलो कोण्टी

अब्दुर्रज़्ज़ाक

पेज़

नुनिट्ज़

कला और साहित्य. विजयनगर के राजाओंने कई भव्य प्रासाद और मन्दिर बनवाये और उन्हें कला—मूर्ति तथा चित्रकारी—से ख़ूब सजाया। सिंचाई और उसकी सुविधाके लिए उन्होंने बहुत-से तालाब तथा नहरें खुदवायीं। स्थापत्यमें वे ऐसी वस्तुओंसे भी सुन्दर कला-कृति खड़ी कर लेते थे, जो बहुत मामूली होती थीं। चित्रकला और मूर्तिकला उच्च स्तर पर थीं। राजा लोग संस्कृत और तेलगू साहित्यके संरक्षक थे। सायण, जिन्होंने वेदोंका भाष्य लिखा है, और

उनके भाई माधवाचार्य बुक्का तथा उसके तुरन्त बाद गद्दी पर बैठनेवाले तीन राजाओंके मंत्रिगण थे। कृष्ण राय स्वयं कवि तथा लेखक था और तेलगू-साहित्यका पोषक था।

उड़ीसा-राज्य. उड़ीसा के हिन्दू-राज्यमें आधुनिक उड़ीसा प्रान्तके अतिरिक्त मद्रास प्रान्तके गंजम और विज़गापट्टम ज़िले भी सम्मिलित थे। उड़ीसा के प्रारम्भिक हिन्दू-राजा «गंग-वश» के थे। इस वंशका प्रथम और सर्वप्रमुख राजा अनन्तवर्मन चोल गंगदेव था, जिसका राज्य गंगा और गोदावरी के मध्यमें फैला हुआ था। उसने १०७६ से ११४७ ई० तक, अर्थात् ७१ वर्ष तक, शासन किया। उसने पुरी मे प्रसिद्ध जगन्नाथ-मन्दिर बनवाया। उड़ीसा पर पहला मुस्लिम-आक्रमण मुहम्मद-ए-बख़्त्यार के एक अफ़सरने १२०५ में किया। इसके बाद और भी कई हमले हुए, लेकिन उनका कोई परिणाम न निकला। सोलहवीं सदीके प्रथम चतुर्थाशमें उड़ीसा-राज्यकी टक्कर विजयनगर के राजा कृष्णदेव राय से हुई। उड़ीसा की सेना हार गयी और कृष्णदेव ने उदयगिरि पर अधिकार कर लिया तथा उड़ीसा के राजाको सन्धि करने पर बाध्य किया। १५६८ में बंगाल के सुल्तान सुलेमानशाह के सेनापति «काला-पहाड़» ने उड़ीसा पर आक्रमण किया और पुरी पर अधिकार कर लिया। अन्तमें मुग़ल-सम्राट् अकबर ने दाऊदखां से सन् १५७६ में उड़ीसा-राज्य छीन लिया।

इस राजवंश का सबसे बड़ा शासक अनन्तवर्मन हुआ

कालापहाड़ का हमला

मुसलमानोके आक्रमणके रास्तेसे दूर होनेके कारण उड़ीसा में कई सुन्दर भवन अक्षुण्ण बच गए हैं। राय नृसिह द्वारा तेरहवीं सदीमें कोनरक में बनवाया हुआ सूर्य-मन्दिर और भुवनेश्वर के मन्दिर स्थापत्य-कलाके सुन्दर उदाहरण हैं। उड़ीसा के मन्दिरोंकी विशेषता यह है कि उनमें स्तम्भोंकी संख्या कम है और विशाल मेहराबों तथा शिखरोंकी संख्या ही अधिक है।

मेवाड़-राज्य. राजपूत-राज्योंमें सबसे अग्रणी मेवाड़-राज्य था। इसका इतिहास राजपूतोंकी वीरता और शौर्यकी कहानियोंसे भरा है। मेवाड़ के राणा सीसोदिया या गहलोत वंशके राजपूत थे। इस राजवंशके संस्थापक बप्पा रावल थे, जिन्होंने मुहम्मद इब्न क़ासिम के आक्रमणसे चित्तौड़ की रक्षा की थी। इसके बाद चित्तौड़ पर तीन बार घेरा डाला गया—१३०३ मे अलाउद्दीन खिलजी द्वारा, १५३४ में गुजरात के सुल्तान बहादुरशाह द्वारा, और १५६७ में अकबर द्वारा; किन्तु तीनों ही अवसरों पर राजपूतोंने अपनी असाधारण वीरताका परिचय दिया।

बप्पा रावल इस वंशका संस्थापक था

अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर वहां की सुन्दरी रानी पद्मिनी को पकड़नेके

लोभसे आक्रमण किया था, परन्तु रानीने अपना सतीत्व बचानेके लिए 'जौहर' (चिता में सामूहिक रूपसे जल मरना) किया। हम्मीर ने चित्तौड़गढ़ पर पुनः अधिकार कर लिया। सन् १४४० में राणा कुम्भ ने मालवा के शासक महमूद खिलजी पर शानदार विजय प्राप्त की, लेकिन इस राजवंशका सबसे प्रतापी राजा राणा सांगा हुआ, जिसने मुसलमानोंके विरुद्ध सोलह लड़ाइयां जीतीं। उसने दिल्ली के लोदी बादशाहों और मालवा के सुल्तानको हरा दिया था। बाबर के हमलेके समय राणा सांगा 'अपंग योद्धा' रह गया था क्योंकि विभिन्न युद्धोंमें उसकी एक आंख और एक भुजा जाती रही थी; एक पैर लंगड़ा हो गया था और उसके शरीर पर वीरता-सूचक अस्सी घाव लगे थे! १५२७ में वह फ़तेहपुर सीकरी में बाबर द्वारा हरा दिया गया। दो वर्ष बाद उसकी मृत्यु हो गयी। सन् १५३४ में गुजरात के सुल्तान बहादुरशाह ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया। १५६१ से १५६८ के बीच चित्तौड़ के राजपूतोंने अपने वीर राणा, प्रतापसिंह, के नेतृत्वमें अकबर की सत्ताको चुनौती दी थी। कई बार वे हराए गए, लेकिन उन्होंने मुग़लोंकी अधीनता कभी नहीं स्वीकार की। जब वे चित्तौड़ छोड़ने पर बाध्य कर दिए गए तब उन्होंने उदयपुर को अपनी राजधानी बनाया, जहां इस वंशका राजा अभी तक शासन करता है। [विस्तृत विवरणके लिए अकबर और जहांगीर के शासन-काल देखिए।]

राणा सांगा की सफलताएं

मुग़लोंके साथ मेवाड़ का सम्बन्ध

मेवाड़ के राणाओंने मुसलमान शासकोंसे विवाह-सम्बन्ध करके अपने रक्तको दूषित न होने दिया। भारत की बहुत कम जातियां तथा कुल मेवाड़ के राजपूतोंसे वीरता, शौर्य और आत्मसम्मानमें बराबरी कर सकती हैं।

खंड ३

अध्याय १०

मुग़ल-साम्राज्य

[बाबर के आक्रमण के समय भारत की दशा]

बाबर, हुमायूं तथा शेरशाह

बाबर का आक्रमण ठीक समय पर हुआ। समस्त उत्तरी भारत फूट और असन्तोषसे जर्जरित हो रहा था। दिल्ली के सुल्तान इब्राहीम लोदी का शासन जनतामें बहुत अप्रिय हो गया था। उसके घमंडी स्वभाव और दुर्व्यवहारने अग्रणी अफ़गान-सामन्तोंको असन्तुष्ट कर दिया था; उनमें से कुछने या तो विद्रोह कर दिया था या षड्यंत्र करनेमें जुटे थे। अवध, जौनपुर और बिहार के आस-पासके पूर्वी जिलोंने विद्रोह कर दिया और दरियाखां लोहानी को अपना सरदार चुन लिया। ऐसे समयमें पंजाब का गवर्नर दौलतखां लोदी चौकन्ना हो गया। उसने बाबर की सहायता चाही। यहां तक कि सुल्तानका चाचा आलमखां भागकर काबुल गया और बाबर से तुरन्त हस्तक्षेप करनेकी प्रार्थना की। जब बिहार और पंजाब ने विद्रोह कर दिया तब तो सुल्तानकी स्थिति बड़ी संकटापन्न हो गयी।

इब्राहीम लोदी के अप्रिय होनेके कारण उत्तरी भारत में अशान्ति थी

दिल्लीकी सुल्तानशाहीके अतिरिक्त उत्तरी हिन्दुस्तान में उस समय दो और शक्तियां थीं, एक था पूर्वमें बंगाल का राज्य और दूसरा था पश्चिममें गुजरात-राज्य। इन दोनोंमें से प्रत्येक पर एक मुसलमान-सुल्तान दिल्लीसे स्वतंत्र रहकर शासन करता था। राजपूत-राजाओंमें मेवाड़ का राणा सांगा, जो राजपूत-संघका नेता भी था, पराक्रम और बलमें बढ़ा-चढ़ा था। दक्षिणमें बहमनी-राज्य बिखर चुका था और उसके ढूह पर पांच स्वतंत्र राज्य उठ खड़े हुए थे। सुदूर दक्षिणमें विजयनगर-राज्य था, जिस पर उन दिनों एक सुयोग्य राजा कृष्णदेव राय शासन कर रहा था।

दक्षिणकी हालत

बाबर का प्रारम्भिक जीवन. बाबर पिताकी ओरसे तैमूर का वंशज था और माताकी ओरसे चंगेजखां का। इस प्रकार उसमें मध्य एशिया की दो 'दैवी विपत्तियों' का रक्त था। ग्यारह वर्षकी अवस्थामें ही वह अपने पिताकी जागीर फ़रग़ाना का मालिक बना। फ़रग़ाना तैमूर के विशाल साम्राज्यका एक छोटा-सा टुकड़ा था। उसकी युवावस्था

उसके माता-पिता

उसकी युवावस्था विपत्तियों और कठिनाइयोंके बीच बीता

विपत्तियों और कठिनाइयोंके बीच गुज़री। 'शतरंजके बादशाहकी तरह वह एक स्थानसे दूसरे स्थानको मारा-मारा फिरा और समुद्र-तट पर पड़े हुए कंकड़की तरह भाग्यके थपेड़ोंने अनेक बार उसे उठाया-गिराया।' उसकी बड़ी इच्छा थी कि वह तैमूर की राजधानी समरक़न्द पर अधिकार कर ले। दो बार उसने क़ब्ज़ा किया भी लेकिन उज़बेग कबीलेकी दुश्मनी के कारण वह वहां टिक न सका। वह फ़रग़ाना लौटा, लेकिन वहांसे भी उसे पीछे हटना पड़ा। अन्तमें अपने पूर्वजोंके राज्यको प्राप्त करनेकी कोई आशा न देखकर वह काबुल की ओर चला आया और अपने पराक्रमसे उसने यहीं अपने लिए १५०४ में एक छोटा-सा राज्य स्थापित कर लिया। भारत में आनेके पहले बीस वर्ष तक वह काबुलमें रह चुका था।

उसका काबुल जीतना

भारत पर आक्रमण. काबुल में अपनी स्थिति सुदृढ़ करके बाबर ने अपनी आंखें भारत के समृद्धिशाली मैदानोंकी ओर घुमायी। १५०५ ई० में उसने सिन्धु नदी तक भारत की सीमा पर आक्रमण किया। १५१९ में उसका दूसरा आक्रमण हुआ। इस बार उसने बाजौर पर क़ब्ज़ा कर लिया। सिन्धु नदीको पार किया। पंजाब के उत्तर-पश्चिमी भागको ले लिया तथा तैमूर का वंशज होनेका दावा करके उसने समस्त पंजाब पर अपना अधिकार जताया. लेकिन शुरू-शुरू के ये हमले उसके आगे होने वाले भारी आक्रमणके लिए तैयारी मात्र थे।

बाबर के प्रारम्भिक आक्रमण

उसको सबसे अच्छा मौका उस समय मिला जब पंजाब के गवर्नर दौलतखां लोदी और इब्राहीम लोदी के चाचा आलमखां ने उसे भारत पर आक्रमण करने के लिए आमंत्रित किया। बाबर ने तुरन्त उनका निमंत्रण स्वीकार कर लिया। रास्तेमें लाहौर और दीपालपुर पर अधिकार करता हुआ वह दिल्ली की ओर बढ़ा, लेकिन वह आगे न जा सका, क्योंकि दौलतखां लोदी इब्राहीम की ओर मिल गया। अपनी तैयारी पूरी करने के लिए बाबर को फिर काबुल लौटना पड़ा। सन् १५२५ में उसने हिन्दुस्तान पर आखिरी बार हमला किया। दौलतखां ने विरोध किया, लेकिन वह देर तक टिक न सका। १५२६ में बाबर और इब्राहीम लोदी की सेनाओंमें पानीपतके ऐतिहासिक मैदानमें मुठभेड़ हुई। बाबर के पास अपने शत्रुसे कम सेना थी, लेकिन उसके सैनिक अच्छी तरह शिक्षित थे। इसके अतिरिक्त उसके पास एक अच्छा तोपखाना भी था, जो इब्राहीम के पास न था। दोनों पक्षोंमें जमकर युद्ध हुआ और दोनोंने बहादुरीका परिचय दिया, लेकिन सुल्तान इब्राहीम की सेनाके पैर उखड़ गये। वह युद्ध-क्षेत्रमें ही मारा गया और उसके साथ ही दिल्ली की सुल्तानशाहीका अन्त हो गया।

दौलतखां लोदी के आमंत्रण पर बाबर का हमला

पानीपत में उसकी १५२६ में जीत

पानीपत जीतनेके बाद बाबर ने आगरा और दिल्ली पर भी अधिकार कर लिया। उसके हाथ लूटका बहुत माल लगा जिसे उसने अपनी सेनामें बंटवा दिया। इसके बाद उसने 'बादशाह' की पदवी धारण की और दिल्ली की जामा मस्जिदमें अपने नामसे नमाज़ पढ़े जानेकी आज्ञा दी।

आगरा और दिल्ली पर अधिकार

बाबर की कठिनाइयां. पानीपत की विजयने बाबर को दिल्ली का बादशाह तो बना दिया, परन्तु हिन्दुस्तान का बादशाह नहीं बनाया था। उसके अफ़ग़ान शत्रु यद्यपि हरा दिए गए थे तो भी उन्होंने अभी मुग़ल-शासनका आधिपत्य स्वीकार नहीं किया था। इस परदेशीसे लोगोंका व्यवहार शत्रुवत् था। छोटे-छोटे राजा भी बाबर का मुक़ाबला करने का मनसूबा रखते थे। उसके स्वयंके सैनिक भी हिन्दुस्तान की भीषण गर्मी से परेशान होकर शिकवा-शिकायत करने लगे थे और काबुल के ठंढे पहाड़ी प्रदेशमें लौट जाना चाहते थे। इधर तो सैनिक असन्तुष्ट और उधर यहां के लोग शत्रुवत्; बाबर की स्थिति बड़ी नाज़ुक थी, लेकिन बाबर ने उस समय बड़े साहससे काम लिया। एक मार्मिक भाषण देकर उसने अपने सैनिकोंमें पुनः उत्साह भर दिया और कूटनीति द्वारा उसने अफ़ग़ान सर्दारोंका भी समर्थन प्राप्त कर लिया। इतना कर लेनेके बाद उसने उत्तरी भारत पर पूरी तरह विजय प्राप्त करनेका अभियान प्रारम्भ किया।

पानीपत की जीतके बाद उसकी कठिनाइयां

सीकरी (खानवा) की लड़ाई (१५२७). इसके बाद बाबर की टक्कर चित्तौड़ के राणा सांगा से हुई। वह तत्कालीन राजपूत-गुटका सम्मान्य नेता था और उसने सौ लड़ाइयां लड़ी थीं। राणा सांगा एक विशाल सेना लेकर मैदानमें आया, जिसको देखते ही बाबर के सैनिकोंके होश-हवास उड़ गए। उनकी एक अग्रगामी टुकड़ीको राजपूतोंने पीछे धकेल दिया। मुग़लोंमें इस घटनासे बड़ा निरुत्साह फैला; एक ज्योतिषी की भविष्य-वाणीसे यह निराशा और बढ़ी। इस अवसर पर बाबर ने अपने मदिराके प्यालोंको तोड़ दिया और फिर कभी शराब न पीनेकी सौगन्ध खायी। सीकरी के निकट खानवा या कनवाह नामक स्थानमें दोनों पक्षोंमें भयकर युद्ध हुआ, परन्तु हिन्दू हरा दिए गए (१५२७)। इस जीतसे राजपूतोंकी शक्ति टूट गयी। इसके बाद बाबर ने चन्देरी के क़िले पर अधिकार कर लिया।

मेवाड़ के राणा सांगा के साथ उसका संघर्ष

इस युद्धकी महत्ता

चन्देरी पर अधिकार

घाघरा की लड़ाई (१५२९). राजपूतोंसे निबट लेनेके बाद बाबर बंगाल और बिहार के सुल्तानोंकी ओर मुड़ा, जिन्होंने सुल्तान इब्राहीम के भाई महमूद लोदी का पक्ष लिया था। पटना से कुछ इधर ही घाघरा नदीके तट पर उनसे उसकी मुठभेड़ हुई और सन् १५२९ में उसने उनकी

बंगाल और बिहार के अफ़ग़ानोंके पैर उखाड़ दिए

सेनाओंको पूरी तरह पराजित कर दिया। इसके पश्चात् उसने बंगाल के सुल्तान नुसरतशाह को सन्धि करने पर विवश किया।

रणथम्भोर पर अधिकार

रणथम्भोर का सुदृढ़ क़िला भी सन् १५२९ में बाबर के हाथ आ गया। अब बाबर अपने जीवनका काम प्रायः पूरा कर चुका था। तीन युद्धों—पानीपत, सीकरी और घाघरा—में उसने उत्तरी भारत को अपने अधीन कर लिया था। पंजाब से लेकर बंगाल की सरहद तक और हिमालय से लेकर ग्वालियर तकका प्रदेश उसने जीत लिया था

बाबर की मृत्यु. अपनी अन्तिम विजयके बाद बाबर एक वर्ष ही जीवित रहा। उसकी मृत्युके सम्बन्धमें यह घटना प्रसिद्ध है कि उसने अपने प्रिय पुत्र हुमायूं के प्राण बचानेके लिए उसकी बीमारी अपनी आत्मशक्तिसे अपने ऊपर ले ली और १५३० ई० में उसकी मृत्यु हो गयी।

उसका अध्यवसाय उसके फ़ौजी गुण और उसकी संस्कृत रुचि—इन सभी बातोंने उसे एक आकर्षक व्यक्तित्व प्रदान किया था

उसका चरित्र और मूल्यांकन. बाबर ने जिस अध्यवसाय, वीरता और सफलतासे अपने लिए एक साम्राज्य खड़ा किया, उससे उसको किसी भी देशके किसी भी युगके राजाओंमें उच्च स्थान मिल जाता है। युद्ध-क्षेत्रोंमें वह पला था और जन्मजात सेनापति तो वह था ही, लेकिन उसकी सभ्यता तथा शिष्टता ने उसके सैनिकीय गुणोंमें चार चाद लगा दिए थे। वह फ़ारसीमें सुन्दर कविताएं लिख लेता था और अपनी मातृ-भाषा तुर्कीका तो वह धुरन्धर ज्ञाता था। वह सीधे-सादे स्वभावका था, बहुत तड़क-भड़क और दिखावा उसे पसन्द न था। कभी-कभी उसने अपने पूर्वजोंकी उच्छृंखल निर्दयताका परिचय अवश्य दिया, लेकिन उस ने कभी उनकी तरह रक्तपात नहीं किया। उसे शराबका शौक़ था, लेकिन सुन्दर लताकुंजों और उद्यानोंमें बनी हुई उसकी मधुशाला मद्यपों की भड़ैती का दृश्य उपस्थित करनेवाली न थी, वरन् उसमें उसके निष्कलंक और प्रखर स्वभावकी झांकी मिलती थी। उसकी इच्छा-शक्ति बलवान् थी और खतरेके समयमें उसने अपनी शराबखोरी पर विजय पायी। अपने सारे जीवनमें उसने स्पष्टवादिता और प्रसन्नचित्तता, इन दो गुणोंको बनाए रखा। यद्यपि उसका जीवन ही रक्तपात और युद्धों में बीता और यह स्वाभाविक था कि उसके स्वभावमें कुछ कठोरता आ जाती, तो भी उसका हृदय बड़ा कोमल था और उस पर मानवीय स्नेह तथा प्रकृतिकी सुन्दरताओंका बहुत शीघ्र प्रभाव पड़ता था।

इतिहासमें उसका स्थायी स्थान

इतिहासमें बाबर का स्थान इसलिए है, क्योंकि उसने भारत-विजय करके यहां एक राजवंशकी नींव डाली थी। किन्तु मनुष्यके रूपमें वह अपने प्रारम्भिक जीवनमें किये हुए रोमांचक कार्यों, साहस, अध्यवसाय

ग्रौर विपत्तियोंके सामने कभी न टूटनेवाले धैर्यके कारण स्मरणीय है।

बाबर के संस्मरण. बाबर ने अपने जीवनके संस्मरण भी लिखे हैं। संसारमें लिखे गये संस्मरणोंमें इस संस्मरणको यदि सबसे ऊंचा स्थान दिया जाता है, तो यह उचित ही है। जिस स्पष्टता, उदारता और जिन्दादिलीसे उसने अपने जीवनकी घटनाओं तथा अपने स्वभाव का वर्णन किया है, उससे यह बहुत आकर्षक बन गया है। इसमें उसने ईमानदारीके साथ अपनी अच्छाइयों, कमज़ोरियों, गुणों और भूलोंको सामने रखा है। जिस ईमानदारीसे उसने अपनी शराबकी दावतों, उद्यान-विहारों और निकटवर्ती प्रदेशकी भौगोलिक स्थितिका सूक्ष्म और चित्ताकर्षक वर्णन किया है उसी ईमानदारीसे उसने उस घटनाका भी वर्णन किया है जब शाही महलके सामने क़ैदियोंका क़त्लेआम कर दिया गया था। उसने हिन्दुस्तानका बहुत मार्मिक वर्णन किया है, लेकिन इस देश और यहांके लोगोंसे उसे जो निराशा हुई थी, इसका वर्णन करनेमें भी वह नहीं हिचका है। उसकी दृष्टिमें हिन्दुस्तान के देहात और शहर भद्दे कुरूप थे। यहांके लोग सुन्दर नहीं हैं और न वे मित्र-गोष्ठियोंका आनन्द लेना जानते हैं; यांत्रिक अन्वेषणोंके योग्य उनमें प्रतिभा नहीं है, न वे स्थापत्य तथा नक़शा (डिज़ाइन) की कलाके कुशल ज्ञाता हैं। उसके अनुसार 'हिन्दुस्तानकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह सोने-चांदीसे परिपूर्ण एक बृहत् देश है।' उसको यहां की गर्मी और आंधी-धूलसे बड़ी शिकायत रही और वह शीतल जल तथा मेवों की भूमि काबुल के लिए हमेशा तरसता रहा।

अपने संस्मरणों में उसने स्पष्टतासे आत्माभिव्यक्ति की है

भारत को देख कर बाबर प्रसन्न नहीं हुआ

हुमायूं

उसका राज्यारोहण. बाबर के चार लड़के थे, जिनमें सबसे ज्येष्ठ हुमायूं गद्दी पर बैठा। राज्यारोहणके समय हुमायूं की आयु केवल तेईस वर्षकी थी, लेकिन अपने पिताकी देख-रेखमें उसने युद्ध और शासन-कला में काफ़ी अनुभव प्राप्त कर लिया था। उसके तीन भाइयोंमें «कामरान» काबुल और क़न्धार का गवर्नर था, जब कि उसके दो अन्य भाई «हिन्दाल» और «असकरी» दो छोटे-छोटे राज्यों—सम्बल और मेवात—के शासक थे।

उसकी कठिनाइयां. गद्दी पर बैठनेके बादसे हुमायूं की स्थिति संकटापन्न ही रही। उसके पिताने हिन्दुस्तान पर विजय तो पाई थी, लेकिन अपने साम्राज्यको वह संगठित नहीं कर पाया था, इसलिए हुमायूं

गद्दी पर बैठते ही हुमायूं को चारों ओरका विपत्तियोंक से सामना करना पड़ा

ने अपनेको चारों ओरसे शत्रु राजाओं और सरदारोंसे घिरा हुआ पाया। पूरबमें बंगाल और बिहार के अफ़ग़ान-सरदारोंसे उसे खतरा था। दक्षिण में गुजरात का सुल्तान बहादुरशाह उससे दुश्मनी ठाने हुए था। वह तेज़ीके साथ राजपूतों पर विजय प्राप्त करता हुआ आगरा पर चोट करनेकी दूरी पर पहुँच रहा था। उत्तर-पश्चिममें कामरान ने काबुल और क़न्धार तथा पंजाब पर भी क़ब्ज़ा कर लिया था। इस प्रकार जिन स्थानोंसे हुमायूं को अपनी सेना के लिए रँगरूट मिल सकते थे, वे उसके हाथसे निकल गये। इसके अलावा उसे हमेशा अपने भाइयों और सिंहासन के अन्य तथाकथित उत्तराधिकारियोंके के षड्यंत्रोंका भी सामना करना पड़ जाता था। और हुमायूं के साधन धन-जनके बारेमें सीमित ही तो थे, अतः उसको चारों ओरसे विपत्तियोंका सामना करना पड़ा।

बंगाल और गुजरात उसके शत्रु थे

१. **हुमायूं की लड़ाइयां.** हुमायूं ने सबसे पहिले अपनी सेनाका मुँह पूरबकी ओर मोड़ा, जहां के अफ़ग़ान लोदी वंशके एक शाहज़ादेके नेतृत्वमें उसकी स्थितिको खतरेमें डाले हुए थे। लखनऊ के निकट उनको उसने हरा दिया। इसके बाद उसने चुनार पर घेरा डाला, जिस पर उन दिनों एक योग्य अफ़ग़ान-सरदार शेरखां का क़ब्ज़ा था। उस कूटनीतिज्ञ अफ़ग़ानने ऊपरी तौरसे केवल कुछ दिनोंके लिए हुमायूं की अधीनता स्वीकार कर ली। हुमायूं ने उसकी बात मानकर चुनार उसके हाथमें रहने देकर बड़ी भारी ग़लती की। इसी बीचमें बहादुरशाह की गतिविधि दक्षिण में बढ़ गयी थी, इसलिए हुमायूं ने गुजरात की ओर ध्यान दिया।

अफ़ग़ानों के विरुद्ध युद्ध, क्योंकि वे एक लोदी शाहज़ादेका समर्थन कर रहे थे

शेरशाह ने अस्थायी रूप से अधीनता स्वीकार कर ली

२. **गुजरात के विरुद्ध युद्ध.** गुजरात के सुल्तानका रुख हुमायूं के प्रति प्रारम्भसे ही शत्रुवत् रहा था। उसने हुमायूं के कई शत्रुओंको, विशेषतया कुछ लोदी शाहज़ादोंको, अपने दरबारमें आश्रय दिया था और हुमायूं के बहनोई मेंहदी ख्वाजा को उसने दिल्ली की गद्दीके लिए एक फ़र्ज़ी उम्मेदवार खड़ा किया था। जब मेंहदी ख्वाजा को सिपुर्द करनेकी उसकी मांग बहादुरशाह ने न मानी, तब हुमायूं ने आक्रमण किया। उसके घिरे हुए शिविरसे उसे भगाया और कम्बे (कच्छ) तक उसका पीछा किया। चम्पानेर के मजबूत क़िले पर आक्रमण करनेवाली अपनी सेनाकी एक टुकड़ीका नेतृत्व करके उसने अपने व्यक्तिगत साहसका परिचय दिया। एक तरह सारा गुजरात उसके हाथमें आ गया, लेकिन वह अपनी जीतका सिलसिला और आगे इसलिए नहीं बढ़ा पाया, क्योंकि पूरबमें शेरखां ने विद्रोह कर दिया था। हुमायूं के पीठ फेरते ही बहादुरशाह द्यू से, जहां उसने शरण ली थी, निकला और बड़ी तेज़ीके साथ उसने अपने राज्य पर पुनः अधिकार कर लिया।

कारण उसने गुजरात के सुल्तान बहादुरशाह को हरा तो दिया, लेकिन अपना अधिकार क़ायम न रख सका

३. **शेरखां के विरुद्ध युद्ध.** जिन दिनों हुमायूं बहादुरशाह से उलझा हुआ था, उन दिनों शेरखां पूरबमें अपनी स्थिति सुदृढ़ कर रहा था। वह इस तैयारीमें था कि विदेशी मुग़लोंको हिन्दुस्तान से बाहर निकाल दिया जाय, हुमायूं ने उसके विरुद्ध कूच किया और चुनार पर क़ब्ज़ा कर लिया। इस बीचमें शेरखां बंगाल के प्रदेशों पर अधिकार करनेमें जुटा हुआ था। उसने गौड़ ले लिया। तब तक हुमायूं भी उसका पीछा करता हुआ आ पहुंचा। शेरखां ने हुमायूं का सामना करनेकी कोई कोशिश न की। उसकी नीति थी कि उसे भीतरी भागोंमें भटकाते रहा जाय और अन्तमें उसके लौटनेके सब रास्ते बन्द कर दिये जायं और रसद रोक दी जाय। भारी बरसात होनेके कारण हुमायूं को ६ महीने तक गौड़ में रुक जाना पड़ा और इसी बीच शेरखां ने चुनार और बनारस पर अधिकार करके अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली। इस प्रकार हुमायूं का आवागमन अपनी राजधानीसे कट गया। शेरखां ने 'शाह' की उपाधि धारण की और जौनपुर पर घेरा डाल दिया। अन्तमें हुमायूं की नींद टूटी और उसको लौटने लिए बाध्य होना पड़ा, लेकिन बरसातके मौसममें बीमारी आदिके कारण उसकी सेना बहुत कम रह गयी थी, कुछ सैनिक सेना छोड़ भागे थे, जो बचे थे उनका भी साहस टूट चुका था। लेकिन शेरशाह ने «बक्सर» के निकट «चौसा» नामक स्थानमें एकाएक उसका रास्ता रोक लिया और हुमायूं की सेनाको हरा दिया (१५३९ ई०)। हुमायूं बड़ी मुश्किलसे अपनी जान बचा कर किसी तरह आगरा पहुंच पाया। अगले वर्ष (१५४०) हुमायूं ने अन्तिम बार कन्नौज में शेरशाह से वारा-न्यारा कर लेना चाहा, लेकिन इस बार भी उसकी गहरी हार हुई। हुमायूं को विवश होकर हिन्दुस्तान छोड़ देना पड़ा। राजगद्दी भी उसके हाथसे गयी। उस पर शेरशाह ने क़ब्ज़ा जमाया।

चुनार पर क़ब्ज़ा

हुमायूं बंगाल में बढ़ता चला गया

शेरशाह ने हुमायूं को चौसा में परास्त किया

हुमायूं की भगोड़ावस्था. दूसरी बार शेरशाह से हार खाकर हुमायूं लाहौर की ओर इस आशामें भाग गया कि शायद कामरान से उसे इस विपत्तिमें सहायता मिले। लेकिन कामरान हुमायूं को आता देखकर काबुल चला गया और उसने पंजाब शेरशाह को सौंपकर उससे समझौता कर लिया। हुमायूं बहुत निराश हुआ। अस्तु, उसने सिन्ध में सेना भरती करनेकी कोशिश की, लेकिन असफल रहा। इसके बाद उसने मारवाड़ के राजा मालदेव से सहायता मांगनेकी चेष्टा की, परन्तु उसने भी रूखा-सा उत्तर दे दिया। रेगिस्तानमें कई दिन तक कष्ट सहकर चलनेके बाद हुमायूं अमरकोट पहुंचा, जहां के राणाने उसकी आवभगत की।

हुमायूं इधर-उधर भटकता रहा

कठिनाइयां सहनेके बाद अमरकोट में क्षणिक आश्रय

वहांसे वह फ़ारस गया

जिन दिनों हुमायूं इस हिन्दू-राजाके आश्रयमें दिन काट रहा था, उन्हीं दिनों उसकी बेगमने अकबर को जन्म दिया। हुमायूं ने अमरकोट के राजा की सहायतासे सिन्ध को जीतनेकी एक बार फिर कोशिश की, लेकिन किसी बात पर दोनोंमें अनबन हो गयी, इसलिए अमरकोट के राजाने मददसे अपना हाथ खींच लिया, अतः हुमायूं का मनसूबा पूरा न हो सका। अमरकोट से हुमायूं क़न्धार की ओर चला, जहां उसका भाई असकरी शासन करता था, लेकिन बादमें अपने भाईके किसी षड्यंत्र की भनक पाकर उसने ईरान की राह ली।

फ़ारस (ईरान) के शाह की मदद से हुमायूं ने क़न्धार और काबुल जीत लिये

हुमायूं पुनः राज्यारूढ़ हुआ. ईरान में हुमायूं का अच्छा स्वागत हुआ। ईरान के शाह तहमस्प ने एक शर्त पर हुमायूं का मदद देनेका वादा किया कि वह शिया मतको स्वीकार कर ले। हुमायूं ने उसकी शर्त मान ली और फ़ारस की सेनाओंकी सहायतासे उसने अपने भाई कामरान से काबुल और क़न्धार (क़न्दहार) छीन लिया। उसने अपने पुत्र अकबर को भी प्राप्त कर लिया था, जिसे कामरान ने अपने यहां रोक लिया था और तरह-तरहसे तकलीफ़ दे रहा था। कामरान को क़ैद करके अन्धा बना दिया गया।

किन परिस्थितियोंके कारण वह पुनः राज्यारूढ़ हुआ

अपने भाईके विरोधसे छुट्टी पाकर हुमायूं इस हालतमें हो गया कि हिन्दुस्तान को फिरसे जीत सके। उसको बैरमखां नामक एक योग्य व्यक्ति की सेवाएं मिल गयी थीं और समय भी उसके अनुकूल था। शेरशाह के लड़के इस्लामशाह की मृत्युके बाद अफ़ग़ानोंकी पुरानी दुश्मनी उभर आयी थी और उत्तरी भारत में एक तरहसे अराजक स्थिति थी। हुमायूं ने सिकन्दर सूर की अफ़ग़ान सेनाको हरा दिया और आगरा तथा दिल्ली पर सन् १५५५ में अधिकार कर लिया। इसके कुछ दिन बादही दिल्ली में अपने पुस्तकालयकी सीढ़ियोंसे गिरनेके कारण उसकी मृत्यु हो गयी (१५५६)। दूसरी बार उसने मुश्किलसे सात महीने शासन किया।

सिकन्दर सूर से उसने आगरा और दिल्ली छीन लिया

उसकी मृत्यु

हुमायूं का चरित्र. हुमायूं एक संस्कृत व्यक्ति, वीर और पराक्रमी सैनिक तथा उदार और सरल स्वभाववाला मनुष्य था, लेकिन उसके चरित्रकी सबसे बड़ी कमी यह थी कि वह दृढतापूर्वक कोई बात निश्चय न कर पाता था। दूसरे शब्दोंमें उसमें धनका अभाव था, इसीलिए राजा के रूपमें वह असफल रहा। अपने बहुमुखी प्रतिभाशील पिताका न अध्यवसाय उसके पास था, न साहस। लगनके साथ अपने उद्देश्यको पूरा करनेका धैर्य उसमें न था। क्षणिक विजयके बाद वह सामाजिक उत्सवों में अपनी शक्ति बिखरा देता था। अफ़ीम खानेकी उसमें बुरी लत थी; इसने उसके सब गुणोंको कुंठित कर दिया था, इसलिए न तो वह दूर-

वह वीर और पराक्रमी व्यक्ति था, परन्तु साहस और निश्चय का उसमें अभाव था।

दर्शी था और न अपनी नीति पर दृढ़तापूर्वक चलनेका दम रखता था। यों व्यक्तिगत जीवनमें वह बहुत ज़िन्दादिल था, लेकिन बादशाह के रूप में वह पूर्णतया असफल सिद्ध हुआ।

शेरशाह का जीवन-चरित्र

उसका प्रारम्भिक जीवन. शेरखां सूर क़बीलेका अफ़ग़ान था। उसका पिता «सहसराम» बिहार में जागीरदार था। कुछ घरेलू झगड़ोंके कारण उसने अपने पिताका आश्रय छोड़ दिया और अपना भाग्य आजमानेके लिए सेनामें भरती हो गया। जब जिसमें उसका लाभ होता, वह कभी मुग़लोंकी सेनामें रहता और कभी अफ़ग़ानोंकी सेनामें। बाबर ने जब हिन्द पर आक्रमण किया तब यह उसकी ओरसे लड़ा था, लेकिन शीघ्र ही वह सिकन्दर लोदी के लड़के महमूद लोदी के पक्षमें चला गया। महमूद दिल्ली की गद्दी पुनः प्राप्त करनेकी चेष्टा कर रहा था। उसका अगला क़दम था रोहतासगढ़ और चुनार के क़िलों पर क़ब्ज़ा करना, जिसने उसे बिहार का स्वामी बना दिया। जब हुमायूं ने महमूद लोदी पर हमला किया तब शेरशाह ने उसका साथ छोड़ दिया। उसने अस्थायी रूपसे हुमायूं की अधीनता स्वीकार कर ली, क्योंकि हुमायूं ने चुनार पर घेरा डाल रखा था।

वह बिहार का स्वामी बन गया

हुमायूं के साथ उसकी लड़ाई. शेरखां की महत्वाकांक्षा थी कि अफ़ग़ानोंका साम्राज्य पुनः स्थापित किया जाय, इसलिए वह किसी एक स्वामी—चाहे वह मुग़ल हो या अफ़ग़ान—के वशमें होकर कैसे रह सकता था? जब हुमायूं गुजरातमें उलझा हुआ था, उसने अपनी ताक़त बढ़ानी शुरू की और मुग़लोंको हिन्दुस्तान से निकालनेकी तैयारी पूरी करने लगा। गुजरात से लौटकर हुमायूं ने चुनार पर अधिकार कर लिया, लेकिन तब तक शेरखां गौड़ पर क़ब्ज़ा कर चुका था। बादमें वह हुमायूं को बंगाल के भीतरी भागोंमें खींच ले गया। हुमायूं की वापसीके समय उसने उसका रास्ता रोका और दो स्थानों पर—एक «बक्सर» के निकट चौसा में (१५३९ में) और दूसरे «कन्नौज» में (१५४० में)—उसे गहरी पराजय दी। इसके बादसे वह शेरशाह की उपाधि धारण करके शासन करने लगा।

उसने दो स्थानों पर हुमायूं को पराजित किया—एक चौसा में और दूसरे कन्नौज में

तत्पश्चात् शेरशाह ने हुमायूं के भाई कामरान से पंजाब छीन लिया। इसके बाद उसने मालवा को जीत लिया, जहां रायसिन के क़िलेमें बन्द सेनाको निर्ममतापूर्वक क़त्ल कराके उसने अपने नामको कलंकित

विस्फोट के कारण कालिंजर में उसकी मृत्यु

किया। मारवाड़ पर उसका आक्रमण असफल रहा, किन्तु मेवाड़ में उसे आंशिक सफलता मिली। उसका अन्तिम आक्रमण कालिंजर पर हुआ, जहां उसने काफ़ी समय तक घेरा डाला, लेकिन एक विस्फोटमें उसकी वहीं मृत्यु हो गयी।

शेरशाह का शासन-प्रबन्ध

उसके सुधार

शेरशाह पहला मुस्लिम शासक था, जिसने नागरिक शासनकी दिशा में रुचि दिखायी। उसने अपने अल्पकालीन शासन—५ वर्ष—में कई महत्त्वपूर्ण सुधार किये, जिनसे उसे राज्यमें शान्ति स्थापित करनेमें बड़ी मदद मिली। उसका अनुशासन बड़ा कड़ा था। वह शासनके प्रत्येक मुख्य कार्यको स्वयं देखता था। उसको पक्षपात छू तक न गया था, उस की न्याय-दृष्टिमें सब बराबर थे। उसने अपने साम्राज्यको ४७ भागोंमें बांटा। प्रत्येक भाग कई परगनोंमें बंटा हुआ था। हरएक परगनेमें राज-कार्य चलानेके लिए पर्याप्त मात्रामें सरकारी अफ़सर होते थे। कुछ परगनोंको मिलाकर एक «सरकार» बनता था जिसमें दो बड़े सरकारी अफ़सर रहते थे, जो परगनाके अफ़सरोंके कार्यकी देख-भाल करते थे। उसने गांववालोंको यह चेतावनी दे दी कि उनकी सरहदमें किसी तरहका जुर्म होने पर ज़िम्मेदारी उनकी होगी और उसके लिए उन्हें सामूहिक दंड मिलेगा। इस प्रकार उसके राज्यमें अपराधोंकी संख्या कम हो गयी। वह खेतिहर किसानोंका बड़ा ध्यान रखता था और उनकी फ़सलको नुक़सान पहुँचाने पर कड़ी सज़ा देता था। उसने पहली बार ज़मीनकी पैमाइश (नाप) करायी और रक़बेके अनुसार मालगुज़ारी तय कर दी। उसने माल के अफ़सरोंको आदेश दे रखा था कि ज़मीनके बन्दोबस्तके समय वे किसान के साथ रियायत करें, परन्तु जब लगान वसूल करनेका समय आवे तो किसी तरहकी रियायत न करें। उसने डाक लाने-ले जानेका प्रबन्ध किया और अधीनस्थ सामन्तोंकी धोखा-धड़ी बन्द करनेके लिए उसने सरकारी काम में आनेवाले घोड़ोंको दाग़नेकी प्रथा चलायी। इसके अलावा सरकारी कर्मचारियोंके भ्रष्टाचारको समूल उखाड़नेका भी उसने प्रयत्न किया। उसने मुद्रा-सम्बन्धी सुधार भी किये। काफ़ी संख्यामें चांदीके सिक्के प्रच-लित कराये, जो विशुद्धता और खरेपनमें उच्चकोटिके थे। उसने पक्की सड़कें बनवायीं और उनके दोनों किनारों पर छायेदार वृक्षोंके पौदे लगवाये। मार्गमें यात्रियोंकी सुविधाके लिए उसने जगह-जगह कुएं और सराएं बनवायीं। उसको इमारतें बनवानेका भी बड़ा शौक़ था। उसने

रयतकी सुरक्षा

मालगुज़ारी-बन्दोबस्त

सरकारी अफ़सरोंके भ्रष्टाचार तथा बेईमानी पर रोक-थाम की

मुद्रा-सम्बन्धी सुधार

उसके सार्वजनिक हितकारी कार्य

दिल्ली में एक नया शहर और पंजाब में एक नया रोहतास बसाया। सहस-राम में उसने अपने लिए जो शाही मक़बरा बनवाया, वह भारत के प्रसिद्ध स्मारकोंमें से एक है।

उसकी बनवायी इमारतें

शेरशाह का मूल्यांकन. शेरशाह की सरकार एक निरंकुश फ़ौजी सरकार थी और उसने लोह-दंडके बल पर शासन किया। उसका शासन भले ही कड़ा हो लेकिन जनताकी सुविधा और आरामका वह बड़ा ख्याल रखता था। उसने देशमें शान्ति तथा सुव्यवस्था स्थापित की, भ्रष्टा-चार दूर किया और सबके साथ एक-सा न्याय किया। ऊंच-नीचका कोई विचार नहीं किया। उसने प्रजाकी रक्षाके लिए कई कार्य किए, और भूखे तथा अपाहिजोंको खाना मुफ्त बंटवाया। पांच सालके अशान्ति-पूर्ण अल्पकालमें ही उसने कितने महत्त्वपूर्ण सुधार किये, इसको देखकर उसकी राजनीतिक योग्यतामें सन्देहको स्थान नहीं रह जाता। वह प्रदेशोंको जीतना और उन पर अच्छा शासन करना—दोनों बातें अच्छी तरह जानता था। उसने जितनी रुचि नागरिक शासनमें दिखायी, उतनी ही रुचि सैनिक विजयमें भी। राजाके कर्तव्योंके सम्बन्धमें उसका आदर्श बहुत ऊंचा था। अशोक की तरह वह कहा करता था 'बड़े लोगोंको हमेशा काममें लगा रहना चाहिए। इसीमें उनका बड़प्पन है।' हिन्दुओं के प्रति उसने सहिष्णुताका व्यवहार किया। उसके द्वारा किए सुधारों का महत्त्व केवल तात्कालिक न था, बल्कि अकबर ने भी उसीके नमूने पर शासन-सुधार किया। इस प्रकार शेरशाह सबसे बड़े मुग़ल-बादशाह का पथ-प्रदर्शक सिद्ध हुआ। उसके शासन-सम्बन्धी सुधार, उसकी ज़मीन का बन्दोबस्त तथा उसकी सहिष्णु नीति—सभीने अकबर के लिए रास्ता तैयार किया।

अपने ज़माने का वह सबसे बड़ा सुल्तान था

उसने कई बातोंमें अकबर का पथ-प्रदर्शन किया

शेरशाह के उत्तराधिकारी. शेरशाह के बाद उसका दूसरा लड़का इस्लामशाह (जिसे सलीमशाह भी कहते हैं) गद्दी पर बैठा। इस्लाम-शाह ने भी कई नए क़ानून जारी किए। वह योग्य सुल्तान माना जाता है, परन्तु अपने पिताके स्तरका न था। परिस्थितियां इतनी प्रतिकूल थीं कि वह कोई प्रभावकारी कार्य न कर सका और आठ वर्ष तक अशान्ति-मय वातावरणमें शासन करनेके बाद सन् १५५३ ई० में उसकी मृत्यु हो गयी।

इस्लामशाह

इस्लामशाह के मरनेके बाद उसके बारह वर्षीय लड़केको उसके मामाने मार डाला और मुहम्मद आदिलशाह के नामसे गद्दी पर बैठा। वह निकम्मा और ऐयाश आदमी था। उसने शासनका सारा भार «हेमू» नामक एक सुयोग्य व्यापारी को, जिसे उसने प्रधान मंत्री बनाया

मुहम्मद आदिलशाह

था, सौंप दिया। स्वाभाविक था कि कई क्षेत्रोंमें विद्रोह हो जाता। शेर-शाह के दो भतीजोंने आदिलशाह के प्रभुत्वको चुनौती दी। उनमेंसे एक, इब्राहीम सूर ने दिल्ली और आगरा पर अधिकार कर लिया और दूसरे, सिकन्दर सूर ने पंजाब पर क़ब्ज़ा कर लिया। निकम्मे आदिल-शाह न चुनार में शरण ली। ऐसी ही अशान्त परिस्थितिको देखकर हुमायूं को दुबारा हिन्दुस्तान पर हमला करनेका साहस हुआ और उसने आगरा और दिल्ली पर पुनः अधिकार कर लिया। अपने पुत्र अकबर पर साम्राज्य को सुदृढ़ करनेका भार छोड़कर हुमायूं शीघ्र ही मर गया।

अध्याय ११

अकबर (१५५६-१६०५)

अकबर का राज्यारोहण और बैरमखां की संरक्षकता. हुमायूं की मृत्युके बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र अकबर गद्दी पर बैठा। उस समय उसकी आयु केवल तेरह वर्षकी थी और वह बैरमखां के अभिभावकत्वमें था। अकबर को गद्दी पर बैठानेमें किसी तरहका उपद्रव न हो, इसलिए हुमायूं की मृत्युका समाचार कुछ समय तक गुप्त रखा गया था। जब उपयुक्त समय आया, अकबर को पंजाब के कलनौर नामक नगरमें गद्दी पर बैठाया गया। उसके छोटे भाई मुहम्मद हकीम को काबुल की गवर्नरी मिली। बैरमखां अकबर का अभिभावक और संरक्षक बना रहा।

दो सूर गद्दीके दावेदार थे

राज्यारोहणके समय अकबर की कठिनाइयां. अकबर को ऐसा उत्तराधिकार मिला था, जिसमें कई तरहके झगड़े-झंझट थे। हिन्दुस्तान को जीतनेके तुरन्त बाद ही मर जानेके कारण हूमायूं अपने सभी विरोधियोंको दबा नहीं पाया था; परिणाम यह हुआ कि अकबर को राजगद्दीके कई दावेदार शत्रुओंका सामना करना पड़ा। शेरशाह के दो भतीजे दिल्ली का राज्य पानेका स्वप्न देख रहे थे। उनमें से एक मुहम्मद आदिलशाह तो शेरशाह के लड़के इस्लामशाह का उत्तराधिकारी बन बैठा था। आदिलशाह अपने सुयोग्य मंत्री हेमू पर उत्तरी भारत में अपने हितोंकी रक्षाका भार छोड़कर स्वयं चुनार जाकर रहने लगा था। दूसरा भतीजा सिकन्दरशाह पंजाब में अकबर की राजसत्ता को चुनौती दे रहा था। जिस समय अकबर गद्दी पर बैठा, उस समय बैरमखां सिकन्दरशाह को दबानेमें लगा हुआ था। लेकिन अकबर का सबसे जबरदस्त शत्रु सिद्ध हुआ आदिलशाह का मंत्री हेमू। पहले तो वह अपने स्वामीके नाम पर ही लड़ाइयां लड़ता था, लेकिन जब उसने आगरा और दिल्ली पर अधिकार किया, तब उसने यह वफ़ादारीका ऊपरी ढकोसला उतार फेंका और 'राजा विक्रमाजीत' की उपाधि धारण करके राज्य-सत्ता संभाल ली। ऐसी दशामें, जबकि पंजाब का गवर्नर सिकन्दरशाह दबाया न जा सका हो, दिल्ली और आगरा हेमू के

हेमू तीसरा दावेदार था, जो सबसे खतरनाक था

हाथमें हो, अकबर की स्थिति बड़ी अरक्षित, नाज़ुक थी। विपत्तिमें एक विपत्ति और उठ खड़ी हुई कि काबुल का गवर्नर भी उसका शत्रु हो गया।

पानीपत की दूसरी लड़ाई (१५५६ ई०) में हेमू की हार

पानीपत की दूसरी लड़ाई (१५५६ ई०). संकटकी इस घड़ीमें बैरमख़ां अकबर के लिए शक्तिका सम्बल सिद्ध हुआ। उसने परिस्थिति का बड़ी बहादुरीसे सामना किया और अपने कायर सलाहकारोंकी सलाह की परवाह न करते हुए हेमू की आगे बढ़ती हुई सेनासे टक्कर लेनेका फ़ैसला कर लिया। भाग्यने प्रारम्भसे ही उसका साथ दिया। उसकी सेना की एक अग्रगामी टुकड़ी (हरावल) ने हेमूके तोपखाने पर क़ब्ज़ा कर लिया। इसके बाद दोनों सेनाओंकी मुठभेड़ पानीपत के मैदानमें १५५६ ई० में हुई। तोपखाना छिन जाने पर भी हेमू शुरू-शुरूमें दोनों पार्श्वोंमें विजयी होता दिखायी दिया और ऐसा लगा कि उस दिन विजयश्री उसीके गले पड़ेगी, लेकिन अचानक एक तीर उसकी आंखमें लगा और वह बेहोश होकर गिर पड़ा। उसको मरा हुआ समझकर उसकी नेता-विहीन सेना तितर-बितर होकर भाग चली। मरणावस्थामें हेमू अकबर के सामने लाया गया। बैरमख़ां चाहता था कि इस काफ़िरकी हत्या करके अकबर 'ग़ाज़ी' की उपाधि धारण करे, लेकिन अकबर ने मरते हुए शत्रुको मारना उचित न समझा। लेकिन बैरमख़ां को ऐसी दया छू न गयी थी, उसने उसी स्थल पर हेमू का सिर काट लिया।

टिप्पणी. स्मिथ इस बातको नहीं मानता कि अकबर ने हेमू को मारनेसे इन्कार कर दिया था। वह इसे दरबारियोंकी एक मनगढ़न्त कथा मानता है; लेकिन तत्कालीन लेखकोंने इस घटनाका समर्थन किया है। इसके अतिरिक्त अकबर के स्वभावकी उदारता तो सर्वविदित है, अतः अगर हम मान लें कि उसने ऐसा कहा होगा तो इसमें कोई असंगति नहीं जान पड़ती।

विजयवाहिनीकी प्रगति. पानीपत की विजयने अकबर के एक सबसे प्रबल शत्रुका अन्त कर दिया था। इसके बाद शीघ्र ही उसने आगरा और दिल्ली पर अधिकार कर लिया। पंजाब में सिकन्दर सूर ने मानकोट के क़िलेमें शरण ली थी, लेकिन आठ महीनेके घेरेके बाद उसे आत्मसमर्पण करनेके लिए बाध्य होना पड़ा। अकबर ने उसके साथ उदारताका व्यवहार किया और उसे पूर्वी प्रान्तोंमें एक जागीर दे दी।

सूर-राजवंश का अन्त

मुहम्मद आदिलशाह बंगाल के सुल्तानके साथ लड़ाई करते हुए मारा गया (१५५७ ई०)। इस प्रकार उसके सभी प्रतिद्वन्द्वी एक-एक कर समाप्त हो गये और अकबर की स्थिति दिल्ली की गद्दी पर सुदृढ़ हो गयी।

अगले तीन वर्षों (१५५८-६०) में अकबर ने ग्वालियर, अजमेर और जौनपुर को जीतकर अपने साम्राज्यका विस्तार किया।

बैरमखां का पतन. बैरमखां जन्मका तुर्क था। उसने बाबर और हुमायूं दोनोंकी वफ़ादारीसे सेवा की थी। अकबर का अभिभावक रहते हुए उसने इस नौजवान बादशाहकी बड़ी ईमानदारीसे सेवा की और कहना पड़ेगा कि यह उसीके साहस और दृढ़ निश्चयका परिणाम था कि अकबर ने अपने बाप-दादाके खोये हुए साम्राज्यको पुनः प्राप्त किया। इस प्रकार बैरमखां की सेवाएं मुग़ल-साम्राज्यके लिए बहुमूल्य थीं। वह बड़े दबंग व्यक्तित्वका आदमी था। वह अपनी शक्तिको किसी प्रकार से कम न होने देना चाहता था। जो काम करनेका वह निश्चय कर लेता उसमें किसीकी सलाह लेने, न लेनेकी वह परवाह न करता था। अकबर भी अब यौवनके सोपान पर था, अभिभावककी तानाशाही उसको भी अखरने लगी। इसके अतिरिक्त शाही महलके भीतरी षड्यंत्रोंने भी अकबर का मन बैरमखां की ओरसे खट्टा कर दिया। उसका स्वाभाविक धैर्य भी टूट गया। अन्तमें सन् १५६० में उसने सार्वजनिक रूप से घोषणा कर दी कि अब शासनकी बागडोर वह स्वयं अपने हाथमें लेगा। उसने बैरमखां को पदच्युत कर दिया और उसे मक्का शरीफ़ हज कर आनेको कहा। इस अनपेक्षित आज्ञाको माननेके सिवाय बैरमखां के पास कोई चारा न था, परन्तु « पीर मुहम्मद » नामक एक व्यक्ति की उद्दंडतासे उसने स्वयंको अपमानित अनुभव किया। यह पीर मुहम्मद पहले बैरमखां का नौकर था, लेकिन अब वह अकबर का मुंहलगा बन गया था। वह चाहता था कि बैरमखां को जल्दीसे जल्दी देशसे बाहर निकाल दिया जाय। बैरमखां ने विद्रोह कर दिया, परन्तु उसका विद्रोह असफल रहा और अन्तमें उसने अपनेको अकबर की दया पर छोड़ दिया। अकबर ने अपने गुरु और पूर्व अभिभावकको क्षमा कर दिया और उसे मक्का रवाना कर दिया। बैरमखां गुजरात के पाटन नगर में पहुंचा, जहां एक पठानने उसकी हत्या कर दी, क्योंकि उसके पिताको बैरमखां की आज्ञासे फांसी दी गयी थी।

अकबर की नाबालिगीमें वह उसका बड़ा समर्थक था

अकबर उसकी डिक्टेटरशाही से तंग आ गया और उसे बरखास्त कर दिया

उसका विद्रोह असफल रहा

उसकी मृत्यु

अकबर की व्यक्तिगत सरकार

बैरमखां के पतनसे अकबर के शासनका एक अध्याय समाप्त हो गया। अब तक वह नाममात्रको शासक था, लेकिन अब उसने शासनकी बागडोर अपने हाथमें ली। फिर भी दो वर्षों तक, अर्थात् १५६२ तक, वह हरम

अकबर कुछ दुष्ट स्त्री-पुरुष सलाह-कारोंके फन्दे में फंस गया

की बेगमोंके इशारे पर चलता रहा। इन सबमें सबसे दुष्ट-प्रकृति की थी एक धाय, जिसका नाम माहमग्रंगा था। उसने और उसके बेटे आदमखां ने अकबर के पूर्व शिक्षक तथा विश्वासघाती व्यक्ति पीर मुहम्मद का सहयोग लेकर शासनका सूत्र अपने हाथोंमें ले लिया और मनमानी करना शुरू किया। मालवा-विजयके सिलसिलेमें आदमखां और पीर मुहम्मद ने जो निर्दयतापूर्ण व्यवहार किया, उससे अकबर के पवित्र नाम पर कलंक लगा। गुजरात से लौटने पर पीर मुहम्मद को तो नदीमें डुबा दिया गया और आदमखां को अकबर के नवनियुक्त प्रधान मंत्रीको मारनेके अभियोगमें मरवा डाला गया। इनके थोड़े दिन बाद ही माहमग्रंगा अपने पुत्रकी मृत्युके शोकमें मर गयी। इस प्रकार अकबर ने अपने दुष्ट सलाहकारोंसे छुट्टी पायी।

हरमके प्रभाव से उसका छुटकारा

पानीपत की लड़ाई के बाद उसकी कठिनाइयां

शासन-सूत्र अपने हाथमें लेनेके बाद उसकी कठिनाइयां

पानीपत के युद्ध में विजय और उसके बाद आगरा और दिल्ली पर अधिकार होने तथा कुछ अन्य विजयोंके कारण अकबर अपने पिताकी गद्दी पर बैठ तो गया और उत्तरी भारत के काफ़ी हिस्से पर उसका अधिकार भी हो गया, लेकिन अभी उसके सामने कई कठिनाइयां थीं। देश हाल ही में जीता गया था और हिन्दू तथा मुसलमान दोनों मुग़लोंको विदेशी समझते थे। दूसरी बात यह कि उसके समर्थक भी ऐसे ही लोग थे, जिनको अपने स्वामीके प्रति विशेष भक्ति न थी। उसकी सबसे बड़ी कठिनाई यह थी कि उसके कई सेनापति तक उसकी आज्ञा न मानते थे, और बहुधा उद्दंडता कर बैठते थे। इसके अलावा हिन्दुस्तान से काबुल के अलग हो जानेसे उसके सैनिक साधन भी बहुत सीमित हो गये थे। वह अब अफ़ग़ानिस्तान और उसके आगेके देशोंसे अपने देशवासियोंके लगातार आते रहनेका भरोसा नहीं कर सकता था।

लेकिन अकबर इन कठिनाइयों का सामना करनेमें पूर्ण समर्थ था

लेकिन अकबर परिस्थितिका सामना करनेके पूर्ण योग्य सिद्ध हुआ। कठिनाइयोंके बीच ही उसका जन्म हुआ था और बचपनसे ही उसे शस्त्र चलानेकी शिक्षा मिली थी, जिसका परिचय उसने कई युद्धोंमें दिया था। बैरमखां के साथ उसने जैसे मामला निपटाया, उससे उसकी दृढ़ता और संकल्प-शक्तिका परिचय मिलता है। अकबर का व्यक्तित्व अपने पिता की तरह आकर्षक था, इसलिए वह अपनी प्रजामें बहुत लोकप्रिय और शत्रुओंका सम्मानभाजन था। उसने अपने सामने पड़े तीन कार्योंमें अपना पूरा ध्यान केन्द्रित कर दिया। वे कार्य थे—(क) अपने राज्यकी पुनः

अकबर के सामने कार्य

प्राप्ति, (ख) अपने सरदारों पर नियंत्रण और (ग) सुशासित साम्राज्य की स्थापना।

१५६१ में हिन्दुस्तान की राजनीतिक स्थिति

१५६१ तक अकबर ने अपनी स्थिति काफ़ी सुधार ली थी। जब वह गद्दी पर बैठा तब उसके क़ब्ज़े में वास्तवमें कोई खास प्रदेश न थे। जिन भागों पर उसका कुछ नियंत्रण था, वे थे पंजाब और आगरा तथा दिल्ली के निकटवर्ती प्रदेश। लेकिन इन क्षेत्रोंमें भी उसकी स्थिति सुरक्षित न थी। पंजाब में सिकन्दर सूर का दमन नहीं हो पाया था, आगरा और दिल्ली पर भी हेमू का अधिकार था। परन्तु १५६१ तक अकबर ने पूरे पंजाब पर क़ब्ज़ा कर लिया था और इलाहाबाद तक गंगा-यमुना के बीचका भाग (दोआब या द्वाबा) उसके हाथमें आ गया था। इसके अलावा उसने अजमेर और ग्वालियर पर भी अधिकार कर लिया था। शेष भारत उसके नियंत्रणके बाहर था। बंगाल, बिहार और उड़ीसा के प्रान्त एक अफ़ग़ान-सुल्तान सुलेमान करारानी के हाथमें थे। राजपूताना पर कई स्वतंत्र राजपूत-सरदारोंका शासन था। गुजरात और मालवा पर मुसलमान-सुल्तान शासन करते थे। काश्मीर सहित हिमाचल प्रदेश के राज्य स्वतंत्र थे। काबुल केवल नाममात्रको अकबर के छोटे भाई मिर्ज़ा मुहम्मद हकीम के अधीन था, वास्तवमें तो उस पर मिर्ज़ा हकीम के अभिभावकोंका प्रभुत्व था। पश्चिमी भारत में पुर्त्तगीजोके कई प्रमुख उपनिवेश थे, जैसे — गोआ, बेसीन, बम्बई, डामन, ड्यू। दक्षिणमें बहमनी-राज्यके विनाशके बाद उसके स्थान पर पांच स्वतंत्र रियासतें बन गयी थीं। इन मुस्लिम-राज्योंका स्वतंत्र हिन्दू-राज्य—विजयनगर—से सदा झगड़ा रहता था। विजयनगर-राज्यमें प्रायः समस्त दक्षिणी भारत—कृष्णा और तुंगभद्रा के दक्षिणका सारा प्रदेश—शामिल था।

(हाशिया: १५६१ में अकबर की स्थितिसे उसके राज्यारोहण के समयकी स्थितिसे तुलना)

(हाशिया: पुर्त्तगीज उपनिवेश)

(हाशिया: दक्षिण और सुदूर दक्षिण की स्थिति)

विद्रोहोंका दमन. अकबर के शासनके प्रारम्भिक वर्षोंमें उसके सेनापतियों और उज़बेग-सरदारोंके विद्रोहोंके कारण बड़ी अशान्ति रही। आदमखां, जिस पर अकबर ने मालवा पर अधिकार करनेका भार डाला था, विश्वासघाती सिद्ध हुआ, किन्तु अकबर ने उसके शिविर पर धावा बोलकर उसकी सारी योजनाओंको तीन-तेरह कर दिया। आदमखां ने आत्मसमर्पण कर दिया और वह क्षमा भी कर दिया, गया, परन्तु शीघ्र ही अकबर के प्रधान मंत्रीको मारनेका प्रयत्न करनेके अभियोगमें उसे मृत्यु-दंड दिया गया। दूसरे सेनापति «खानज़मां»-ने, जिसने आदिलशाह

(हाशिया: आदमखां का विद्रोह)

(हाशिया: खानज़मां का विद्रोह)

के लड़के शेरशाह (द्वितीय) को अधीन किया था, अवज्ञाके लक्षण दिखाये, परन्तु उसे भी अकबर के आगे आत्मसमर्पण करना पड़ा। अब्दुल्लाखां नामक उज़बेग-अफ़सर भी, जिसने मालवा को पूरी तरह हरा दिया था, विद्रोह कर उठा, लेकिन अकबर के सामने वह टिक न सका और गुजरातमें उसने भागकर शरण ली। इसके बाद उज़बेग-सरदारों का सम्मिलित विद्रोह हुआ, जिसमें खानजमां और एक दूसरा असन्तुष्ट सेनापति आसफ़खां शामिल था। यह विद्रोह दो वर्ष (१५६५-६७) तक चला। इसी बीच अकबर के भाई हकीम मिर्ज़ा ने पंजाब पर हमला कर दिया। एक साथ आयी इन विपत्तियोंके बीच भी अकबर ने धीरज रखा। उसने मिर्ज़ा हकीम को पीछे हटा दिया और उज़बेग-सरदारोंको भी इलाहाबाद के निकट सन् १५६७ में हराकर कुचल दिया।

उज़बेग सरदारोंका विद्रोह

अकबर की राजपूत-सम्बन्धी नीति

राजपूत सदासे मुस्लिम-विजेताओंके सबसे बड़े शत्रु रहे हैं। अकबर की नीति थी कि इन प्रबल शत्रुओंको घनिष्ठ मित्र बना लिया जाय। आवश्यकताएं तथा परिस्थिति ऐसी थी कि अकबर को राजपूतोंके प्रति समझौतावादी रुख रखना आवश्यक हो गया। अकबर दूरदर्शी राजनीतिज्ञ था, इसलिए उसे यह समझते देर न लगी कि यदि राज्यको दृढ़ तथा स्थायी बनाना है तो जनता के सभी वर्गोंकी सहानुभूति और राज्य-भक्ति प्राप्त करनी होगी, इसीलिए वह राजपूतोंका समर्थन पाना चाहता था, क्योंकि अधिकांश हिन्दू-राज्योंके राजा राजपूत ही थे। इसके अतिरिक्त उसने यह भी सोचा कि यदि इस जन्मजात योद्धा जाति का सहयोग उसे मिल जाय तो उसके सहधर्मियों और अफ़सरोंके कुचक्रों का सामना भी सफलतापूर्वक किया जा सकेगा। हम देख चुके हैं कि अकबर के सेनापति बहुधा विद्रोह कर बैठते थे; इन्हीं सब असुरक्षाओं और राजनीतिक कारणोंसे अकबर ने वैवाहिक सम्बन्धों द्वारा राजपूतों को अपना मित्र बनानेका प्रयत्न किया। उसने अम्बर (जयपुर) के राजा बिहारीमल की पुत्रीसे विवाह किया और उसका तथा उसके लड़के भगवानदास को सेनामें ऊंचे ओहदे दिये। आगे चलकर उसने मारवाड़ (बीकानेर) की राजकुमारीसे भी अपना विवाह किया। उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र सलीम का विवाह भी जयपुर की राजकुमारीसे कर दिया। इन वैवाहिक सम्बन्धोंके कारण और सेना तथा दरबारमें राजपूतोंको ऊंचे मनसब देकर उन पर अकबर ने जो भरोसा किया, इससे राजपूत

नीतिज्ञताके रूपमें उसने राजपूतोंसे समझौता रखा

राजपूतोंके साथ उसके वैवाहिक सम्बन्ध

राजपूतोंको उसने ऊंचे पद दिये

अकबर के प्रबल समर्थक हो गये और मुग़ल-साम्राज्यकी रीढ़ साबित हुए।

लेकिन राजपूतोंके प्रति समझौतावादी रुख रखते हुए भी अकबर उनका स्वतंत्र रहना बरदाश्त नहीं कर सकता था। जिन रियासतोंने उसकी अधीनता स्वीकार करनेसे इनकार कर दिया, उनके विरुद्ध उसने लड़ाई की। मेवाड़के राणाने वैवाहिक सम्बन्ध करना अस्वीकार कर दिया, इसको अकबर ने शाही ताक़तको चुनौती समझा और आक्रमण करके उसकी राजधानी पर क़ब्ज़ा कर लिया।

अकबर को राजपूतोंकी स्वतंत्रता सह्य न थी

टिप्पणी. राजपूतोंके साथ अकबर की इस समझौतावादी नीतिको जहांगीर और शाहजहां ने भी जारी रखा, परन्तु औरंगज़ेब ने इसके विपरीत कार्य किया, इसका परिणाम मुग़ल-सल्तनतके लिए विनाशकारी सिद्ध हुआ।

अकबर के युद्ध और सफलताएं

पहले यह बताया जा चुका है कि अकबर ने अपने शासनके आरम्भिक दिनोंमें अजमेर, ग्वालियर और जौनपुर को जीत लिया था। इसके बाद उसने मालवा पर ध्यान दिया, जिन पर उन दिनों बाज़बहादुर शासन करता था। पहला आक्रमण आदमख़ां के नेतृत्वमें हुआ। उसने बाज़-बहादुर को हरा भी दिया, परन्तु अकबर की अवज्ञा करनेके कारण उसे अपने ओहदेसे हटा दिया गया। दूसरा सेनापति «पीर मुहम्मद» बनाया गया, परन्तु बाज़बहादुर ने उसे हरा दिया। अन्तमें एक उज़बेग-अफ़सर अब्दुल्लाख़ां ने मालवा को पूरी तरह हराया।

मालवा-विजय

राजपूतोंका मिरथा का क़िला १५३२ में लिया गया। मध्यप्रान्तमें गोंडवाना का प्रदेश, जिस पर उन दिनों इतिहास-प्रसिद्ध रानी दुर्गावती का शासन था, आसफ़ख़ां ने जीत लिया।

मिरथा और गोंडवाना पर विजय

मेवाड़ (चित्तौड़) के विरुद्ध युद्ध. चितौड़गढ़ पर घेरा डालना अकबर के शासन-कालकी एक प्रमुख घटना थी। मेवाड़ राजपूताने का एक अग्रणी राज्य समझा जाता था और उसके राणा उदयसिंह को, जो वीरवर राणा सांगा का पुत्र था, इस बातका गर्व था कि उसने मुग़लों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध करना स्वीकार नहीं किया था। अकबर-जैसा महत्वाकांक्षी व्यक्ति भला ऐसी गर्वोक्तिको कैसे बरदाश्त कर सकता था, उसने राणा से अधीनता स्वीकार करानेका हठ ठान लिया। इसी बीच उसको एक बहाना भी मिल गया। उदयसिंह ने मालवा के सुल्तान बाज़बहादुर को शरण दी थी। सन् १५६७ में अकबर स्वयं एक बड़ी

युद्धका बहाना

चित्तौड़ का पतन

सेना और सुसज्जित तोपखाना लेकर चित्तौड़ पर चढ़ दौड़ा। उदयसिंह अपने पिताकी तरह वीर न था। अकबर को आता देखकर वह चित्तौड़ की रक्षाका भार अपने एक सरदार जयमल और उसके भाई पत्ता पर छोड़कर स्वयं वहांसे हट गया। अकबर ने चित्तौड़ का घेरा डाल दिया। जयमल ने चार महीनों तक चित्तौड़ की वीरतापूर्वक रक्षा की, अन्तमें अकबर की गोली लगनेसे उसकी मृत्यु हो गई। नेता-विहीन होकर राजपूत सैनिक लड़ते-लड़ते मर मिटे और स्त्रियोंने अपनी सम्मान-रक्षा के लिए जौहर करके चितामें प्राण दे दिये (१५६८ ई०)

अकबर के साथ राणा प्रतापसिंह का युद्ध

चित्तौड़का विनाश हो जानेके बाद भी मेवाड़ के राजपूत-कुलका अदम्य साहस कुचला न जा सका और अकबर अपने शासन-कालके अधिकांशमें मेवाड़ पर चढ़ाइयां करता रहा। उदयसिंह की मृत्युके बाद उनके लड़के प्रतापसिंह सिंहासन पर बैठे। उन्होंने भी अकबर की अधीनता स्वीकार करनेसे इनकार कर दिया। अकबर ने मानसिंह को इस गर्वीले राजपूत-सरदारको हरानेके लिए भेजा। हल्दीघाटी की लड़ाई (१५७६) में राणा प्रतापसिंह हार तो अवश्य गये, लेकिन उस युद्धमें उन्होंने इतनी वीरता दिखाई कि इतिहासमें उनकी प्रतिष्ठा अमर हो गई। प्रताप के गोगुन्दा और कम्भलमीर के दुर्ग अकबर के क़ब्जे में चले गये और राणा को जंगलोंमें आश्रय लेनेके लिए बाध्य होना पड़ा, लेकिन वह कभी हतोत्साह नहीं हुए और पुन: शक्ति-संग्रह करके उन्होंने अकबर के जीवन-कालमें ही अपना राज्य प्राप्त कर लिया और उदयपुर में अपनी नई राजधानी स्थापित की। १५९७ में उनका देहान्त हो गया।

राजपूताना में अकबर की तूती बोलने लगी

१५६८ में चित्तौड़ से पतनके बाद अकबर ने रणथम्भौर और कालिंजर पर भी अधिकार कर लिया। अब अकबर राजपूताना का स्वामी बन गया। राजपूताना को उसने अपने साम्राज्यका एक 'सूबा' बनाया, जिसका प्रधान केन्द्र अजमेर था। मेवाड़ को छोड़कर अधिकांश राजपूत-कुलोंने अकबर के आगे घुटने टेक दिये थे। अकबर ने भी अपनी नीतिज्ञता तथा उदारतासे राजपूतोंके शौर्यका उपयोग मुग़ल-साम्राज्यकी वृद्धि और विकासमें किया।

गुजरात में अशान्ति एवं अव्यवस्था

गुजरात-विजय. गुजरात की धन-सम्पदा और वहां फैली हुई अव्यवस्था ने अकबर का ध्यान उधर आकर्षित किया। उन दिनों निकम्मे सुल्तान मुज़फ़्फ़रशाह के मंत्री इत्तिमादखां और तैमूर के वंशवर्ती मिर्जाओंमें, जो हुमायूं की आक्रमणकारी सेनाके साथ गुजरात में आये थे, सत्ता-प्राप्तिके सिलसिलेमें झगड़ा चल रहा था, इसलिए राज्यमें

अव्यवस्था फैल गयी थी। इत्तिमादखां ने अकबर की मदद मांगी, जिसके लिए अकबर पहलेसे ही तैयार बैठा था। वह स्वयं सेना लेकर गुजरात गया (१५७२ ई०)। उसने अहमदनगर पर अधिकार कर लिया और मुज़फ़्फ़रशाह से अधीनता स्वीकार करा ली तथा उसके साथ उदारतापूर्ण व्यवहार किया। इसके बाद उसने सूरत पर घेरा डालकर उसे भी विजय कर लिया। तत्पश्चात् वह सीकरी लौट आया, लेकिन अभी वह मुश्किलसे पहुंचा ही था कि उसे मिर्ज़ाओंके उग्र विद्रोहका समाचार मिला। अकबर ने अपनी सेनाको पुन: कूचका आदेश दिया और इतनी तेज़ीसे वह पहुंचा कि विद्रोही हक्के-बक्के रह गए। ६०० मीलकी यात्रा उसने केवल नौ दिनोंमें पूरी की थी। विद्रोही हरा दिए गए। इसके बाद गुजरात को अकबर ने साम्राज्यमें मिला लिया। प्रान्तोंमें शान्ति स्थापित की और टाडरमल को वहांका माल-बन्दोबस्त करनेके लिए छोड़ दिया।

मुज़फ़्फ़रशाह ने अधीनता स्वीकार कर ली

गुजरात कुछ समय तक तो शान्त रहा, परन्तु सन् १५८४ में उसने अपने भूतपूर्व सुल्तान मुज़फ़्फ़रशाह के, जो दिल्ली की नज़रबन्दीसे भाग निकला था, नेतृत्वमें विद्रोहका झंडा ऊंचा किया। अकबर के सेनापति ने उसे हरा दिया, परन्तु वह कच्छकी ओर भाग गया, जहां १५९३ तक वह मोर्चाबन्दी किए रहा। अन्तमें वह दुबारा पकड़ लिया गया और उसने आत्महत्या कर ली।

'गुजरात-विजय अकबर के इतिहासमें एक नये दौरका प्रारम्भ थी।' अब उसका साम्राज्य समुद्रसे मिल गया। सूरत तथा अन्य पश्चिमी बन्दरगाहोंसे व्यापार होनेसे साम्राज्यकी समृद्धिमें वृद्धि हुई। उसकी सरकारको आय भी इससे बहुत बढ़ गयी। पहली बार उसका सम्पर्क पुर्त्तगालवासियोंसे हुआ, जिसके सम्बन्धका भारत के इतिहास पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। इसके अतिरिक्त पुर्त्तगालियोंने उसके मस्तिष्क पर नया प्रभाव डाला।

गुजरात-विजयका महत्त्व

बंगाल-विजय. बंगाल के अफ़ग़ान-सुल्तान सुलेमान करारानी ने पहले अकबर का प्रभुत्व स्वीकर कर लिया था, लेकिन उसके लड़के दाऊदखां ने खुले तौरसे अकबर की अधीनतामें रहनेसे इनकार कर दिया। अकबर ने उसके विरुद्ध कूच किया और उसे पटना तथा हाजीपुर से निकाल भगाया। इसके बाद उसने मुनीमखां और टोडरमल पर बंगाल विजय करनेका भार डाल दिया। दाऊदखां उड़ीसा के तुकरोई नामक स्थानमें हराया गया और उसे नज़राना देने पर बाध्य किया गया, लेकिन उसने शीघ्र ही अपना वादा तोड़ दिया और हथियार उठा लिया। मुग़लोंके विरुद्ध वह काफ़ी आगे बढ़ आया था, लेकिन राजमहल

बंगाल के दाऊदखां ने अकबर की अवहेलना की परन्तु वह अन्तमें हरा दिया गया और मार डाला गया

के निकट सन् १५७६ ई० में वह मार डाला गया। इस प्रकार बंगाल मुग़ल-साम्राज्यका एक सूबा हो गया।

साम्राज्य-निर्माताके रूपमें अकबर : १५७६ ई० में उसकी स्थिति

उसके साम्राज्यका विस्तार

१५७६ में अर्थात् गद्दी पर बैठनेके बीस वर्ष बाद, अकबर समस्त हिन्दुस्तान का बादशाह हो गया था, जिसमें सिन्धु नदी और गंगा नदीके बीचका भूभाग भी सम्मिलित था। अब उसके साम्राज्यका विस्तार अरब सागर से लेकर बंगाल की खाड़ी तक और हिमालय से लेकर नर्बदा तक हो गया। उत्तरी भारत पर अधिकार करनेका सिलसिला पानीपत की लड़ाई (१५५६ ई०) के तुरन्त बाद ही आगरा और दिल्ली पर क़ब्ज़ा करनेके साथ शुरू हुआ और १५७६ ई० में बंगाल पर अधिकार हो जाने पर पूरा हुआ।

अकबर ने अपने साम्राज्यकी स्थापना दृढ़ आधार पर की, क्योंकि उसने हिन्दुओं का सहयोग लिया और अच्छा शासन-तंत्र स्थापित किया

साम्राज्य-विस्तारके प्रमुख कारण ये थे—«प्रथम», हिन्दू राजाओं की स्वेच्छिक सहायता अकबर को मिली; «दूसरे», साम्राज्य-विस्तार का कार्यक्रम शासन-प्रबन्धके साथ-साथ चलता रहा। जिस प्रदेशको अकबर ने विजय किया, उसको सुव्यवस्थित शासन भी दिया। यह एकदम एक नयी नीति थी, जिससे अकबर की राजनीतिज्ञता और साम्राज्य-निर्माता के गुणोंका परिचय मिलता है। इसके पूर्वके मुस्लिम-सुल्तानोंने देशको केवल सैनिक शासनके अन्तर्गत रखा और न तो सुव्यवस्थित सरकार स्थापित की और न हिन्दुओंका सहयोग ही लिया, इसलिए उनके राज्यकी जड़ें कमज़ोर होती थीं और सैनिक शक्तिके निर्बल पड़ते ही राज्यमें अशान्ति फैल जाती थी। अकबर ने अपनी चातुर्यपूर्ण समझौता-नीतिसे हिन्दुओंको राजभक्त बना लिया, जिन्होंने न केवल देश-विजय में ही उसे सहायता पहुंचायी, वरन् विजित प्रदेशोंमें सुशासन स्थापित करनेमें भी मदद की। अपनी उदार वृत्तिके कारण हिन्दुओंका सहयोग प्राप्त करके अकबर ने अपने भीतरी शासनकी भित्तियां दृढ़ कीं और इस प्रकार मुग़ल-शासनकी जड़ें गहरी बैठ गयीं।

विद्रोहके धार्मिक और राजनीतिक कारण

बंगाल में विद्रोह. धर्मके विषयमें अकबर के प्रगतिशील और उदार विचारोंके कारण कई क्षेत्रोंके कट्टर मुसलमानोंमें असन्तोष फैल गया। बंगाल और बिहार के मुसलमानोंने विद्रोह कर दिया—कुछ तो इस कारणसे कि अकबर के अफ़सरोंने बड़ी कड़ाईसे शासन प्रबन्ध लागू किया और कुछ इसलिए कि अकबर की धार्मिक नीति उन्हें पसन्द न थी। विद्रोही अकबर के छोटे भाई मुहम्मद हकीम मिर्ज़ा को, जो काबुल का

शासक था, उसके स्थान पर बादशाह बनाना चाहते थे, लेकिन उनकी कोशिशें बेकार हुई। राजा टोडरमल ने सभी उपद्रवकारियोंको कुचल दिया और शान्ति तथा व्यवस्था पुनः स्थापित कर दी (१५८० ई०)।

काबुल-विजय. काबुल का शासक मुहम्मद हकीम मिर्जा अकबरका भाई था। बंगाल के विद्रोहसे, जिसमें विद्रोहियोंने उसे गद्दी पर बैठाने का वादा किया था, प्रोत्साहित होकर उसने पंजाब पर आक्रमण कर दिया। वह लाहौर तक बढ़ आया, लेकिन जब अकबर ने उसके विरुद्ध धावा किया (१५८१), तब वह पीछे हट गया। अकबर ने काबुल तक उसका पीछा किया। मिर्जा ने काबुल अकबर के हवाले कर दिया और आत्मसमर्पण कर दिया। अकबर ने काबुल को अपने अधीनस्थ प्रान्तके रूपमें उसीके जिम्मे छोड़ दिया। परन्तु मिर्जा इसके तुरन्त बाद ही मर गया और काबुल अकबर के साम्राज्यमें मिला लिया गया। मानसिंह उसका गवर्नर नियुक्त हुआ (१५८५)।

मुहम्मद हकीम ने पंजाब पर आक्रमण किया, लेकिन वह पीछे हटा दिया गया

सरहदी क़बीलेवालोंका दमन. उत्तर-पश्चिमी सरहद पर कड़ी निगाह रखनेके लिए अकबर का उसके निकट रहना आवश्यक हो गया, अतः अकबर ने लाहौर में अपना दरबार हटा लिया। १५८५ से १५९८ ई० तक, यानी १३ वर्षों तक, लाहौर साम्राज्यका प्रधान केन्द्र रहा। अफ़ग़ान-सीमामें उपद्रव होनेका ख़ास कारण यह था कि एक धर्मान्ध क़बायली ने, जो अपनेको मेहदी घोषित करता था, अफ़ग़ानोंको अकबर के विरुद्ध उभार दिया था। क़बीलेवालोंको दबानेके लिए अकबर ने तीन फ़ौजें भेजीं। यूसुफजई कबायलियों ने अकबर की फ़ौजोंको बहुत परेशान किया, बल्कि एक बार तो उसकी एक सेनाको हरा भी दिया। उसी लड़ाईमें अकबर का सबसे प्रिय मित्र बीरबल मारा गया। बीरबल की मृत्युके बाद अकबर ने मानसिंह और टोडरमल को यूसुफ़जई और अन्य क़बायलियों को दबानेके लिए भेजा। उनका आक्रमण सफल रहा। क़बायली बहुत कड़ाईके साथ दबाये गये, लेकिन पूरी तरह वे क़ब्जे में न आये।

सरहदी क़बीलेवालों पर अकबर ने हमला किया, परन्तु उन्होंने हार न मानी

अन्य विजय. जिन दिनों अकबर का प्रधान कार्यालय लाहौर में था, उन दिनों उसने काश्मीर की अव्यवस्थित स्थितिसे लाभ उठानेकी चेष्टा की। उसने काश्मीर के भीतरी मामलोंमें हस्तक्षेप करना प्रारम्भ किया और अन्ततः सन् १५८६ ई० में उसे साम्राज्यमें मिला ही लिया। तब से काश्मीर मुग़ल बादशाहोंका ग्रीष्म-निवास बन गया।

काश्मीर-विजय

सिन्ध भी एक बड़ी लड़ाईके बाद सन् १५९१ में साम्राज्यमें मिला लिया गया। १५९५ में ईरानियोंसे क़न्दहार (क़न्धार) छीन लिया गया और मानसिंह ने १५९२ में उड़ीसा पर क़ब्ज़ा कर लिया।

सिन्ध, उड़ीसा और क़न्दहार पर विजय

अकबर के आक्रमणके समय दक्षिण भारत की दशा

दक्षिणमें अकबर की लड़ाइयां. अब तक अकबर ने उत्तरी भारत को ही जीतनेकी ओर अपना ध्यान केन्द्रित किया था, अब इधरसे छुट्टी पा कर उसने दक्षिणकी ओर ध्यान दिया। उसकी चिरपोषित लालसा थी कि नर्वदा के पार तक साम्राज्यका विस्तार किया जाय। इस लालसा को पूरा करनेका उसने प्रयत्न किया। दक्खिनकी विशृंखल दशाने अकबर को आमंत्रित किया। जब तक विजयनगर था, बहमनी-राज्यके अवशेष मुस्लिम-राज्यों—बीजापुर और अहमदनगर आदि—में सहयोगकी भावना बनी रही। परन्तु उस समान शत्रुके नष्ट हो जानेके बाद ये राज्य आपस में ही लड़ने लगे। उन दिनों अहमदनगर के उत्तराधिकारके सम्बन्धमें दो दावेदारोंमें झगड़ा चल रहा था, उनमें से एकने अकबर को आमंत्रित कर दिया।

दक्षिणका संघर्ष

(क) अकबर ने पहिले तो यही कोशिश की कि दक्षिणके सुल्तानोंसे कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित करके ही उन्हें अपने नियंत्रणमें लाया जाय। उसने खानदेश, बीजापुर, गोलकुंडा और अहमदनगर में अपने राजदूत भेजे और उनके सुल्तानोंसे मांग की कि वे दिल्ली-साम्राज्यका प्रभुत्व स्वीकार कर लें और नज़राना दें। खानदेश को छोड़कर बाक़ी सब सुल्तानों ने अकबर की इस मांगको ठुकरा दिया। अत: अकबर को युद्धका निर्णय करना पड़ा। पहिला निशाना उसने अहमदनगर को बनाया। परिस्थितियां अकबर के अनुकूल थीं। राज्योंमें आपसी फूट फैली हुई थी और अहमदनगर की गद्दीके एक दावेदारने अकबर की सहायता भी मांगी थी। उसने शाहज़ादा मुराद और खानखाना के नेतृत्वमें शाही सेना भेजी, जिसने सन १५९३ में अहमदनगर पर घेरा डाल दिया। चांदबीबी ने बड़ी बहादुरीसे नगरकी रक्षा की। मुराद शहरको जीतनेमें असमर्थ रहा, परन्तु रसद चुक जानेके कारण चांदबीबी को सुलह करने पर मजबूर होना पड़ा। शर्तोंके अनुसार उसने अकबर को बरार दे दिया (१५९५ ई०)।

चांदबीबी की हत्याके बाद अहमदनगर पर दानियाल का अधिकार हो गया

(ख) **अहमदनगर का पतन.** बरार की सीमाके सम्बन्धमें कुछ झगड़ा उठ खड़ा हुआ और दरबारियोंका षड्यन्त्र भी सफल रहा, इस प्रकार चांदबीबी ने अकबर से दुबारा संघर्ष मोल ले लिया, हालांकि वह व्यक्तिगत रूपसे संघर्षको टालनेके ही पक्षमें थी। अकबर ने शाहज़ादा दानियाल के सेनापतित्वमें एक सेना अहमदनगर पर घेरा डालनेके लिए भेजी। चांदबीबी ने अपनेको दुष्ट षड्यन्त्रकारियोंके चंगुलमें पाकर अकबर से समझौतेकी बातचीत चलाई, परन्तु उसके अफ़सरोंने ही उसकी नीति पसन्द न की और उसकी हत्या कर दी गई। चांदबीबी के

मरनेके बाद मुग़लोंने ६ महीने तक घेरा डालकर अहमदनगर पर अधिकार कर लिया और १६०० ई० में उसे साम्राज्यमें मिला लिया गया।

(ग) असीरगढ़ पर क़ब्ज़ा. ख़ानदेश के सुदृढ़ दुर्ग असीरगढ़ पर क़ब्ज़ा करने के साथ अकबर की दक्षिण-विजय प्राय: समाप्त हो गयी। जब अकबर ने दक्षिण पर आक्रमण प्रारम्भ ही किया था, तभी ख़ानदेश ने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली थी, परन्तु इसके शासकने शीघ्र ही अपना सम्बन्ध दिल्ली से तोड़ लिया। अकबर ने उसके विरुद्ध कूच किया और बुरहानपुर पर अधिकार करके असीरगढ़ पर घेरा डाल दिया। एक वर्ष तक असीरगढ़ मुक़ाबला करता रहा, परन्तु इसके बाद उसका पतन हो गया (१६०१)। अकबर की यह अन्तिम विजय थी।

ख़ानदेश भी छीन लिया गया

दक्षिणमें बरार, अहमदनगर और ख़ानदेश पर अधिकार करके अकबर ने उन्हें तीन सूबोंका रूप दे दिया और शाहज़ादा दानियाल को उवका गवर्नर नियुक्त किया।

अकबर के जीवनके अन्तिम दिन. अकबर के जीवनके अन्तिम दिन बहुत दु:खमय और निराशामय बीते। उसके दो लड़के मुराद और दानियाल की मृत्यु अधिक शराब पीनेसे हो गयी। सबसे बड़ा लड़का सलीम, जो काफ़ी मनौतियों और मिन्नतोंके बाद पैदा हुआ था, अवज्ञाकारी सिद्ध हुआ। उसने खुला विद्रोह कर दिया। सन् १६०१ में उसने शाही उपाधि धारण की और इलाहाबाद में अपना दरबार करने लगा। उसने एक बुन्देला द्वारा अकबर के सबसे विश्वासपात्र मित्र और परामर्शदाता अबुलफ़ज़ल को मरवाकर (१६०२) अपने पिताको बड़ा मानसिक क्लेश पहुँचाया। कृतघ्नताकी यह हद थी। अकबर का यह घाव कभी न भरा। किसी प्रकार बाप-बेटेमें समझौता हुआ; सलीम को शाही दरबारमें चलनेके लिए राज़ी किया गया और शाहंशाहने उसे माफ़ कर दिया। अकबर ने उसे विधिवत् अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया, लेकिन सलीम जनतामें प्रिय न था, इसलिए मानसिंह और कुछ अन्य सरदार उसके लड़के खुसरो को गद्दी पर बैठाना चाहते थे। उत्तराधिकार सम्बन्धी यह षड्यंत्र यद्यपि सफल न हुआ, तो भी अन्तिम दिनोंमें अकबर को इससे बड़ी अशान्ति रही। वह १६०५ ई० में मर गया और उसका शव आगरा के निकट सिकन्दरा में दफ़नाया गया।

उसके पुत्रों—मुराद और दानियाल—की मृत्यु

सलीम का विद्रोह

अबुलफ़ज़ल की हत्या

अकबर की मृत्यु

अकबर शासकके रूपमें : उसका भीतरी शासन

उसकी नीति. अकबर ने इस सत्यको अपने शासनके प्रारम्भिक दिनों में ही समझ लिया था कि जब तक साम्राज्यको जाति और सम्प्रदायका

उसकी नीति थी कि हिन्दुओंको मुसलमानों के समान स्तर पर लाकर उन्हें खुश रखा जाय

भेद-भाव किए बिना सारी जनताकी वफ़ादारी नहीं मिलती तब तक उसकी जड़ें गहरी नहीं जायंगी। चूंकि हिन्दू ही आबादीमें अधिक थे, इसलिए उसने यह आवश्यक समझा कि मुसलमानोंके समान ही उन्हें बराबरीका दर्जा देकर खुश रखा जाय। वास्तवमें उसका प्रयत्न यह था कि हिन्दू और मुसलमान अपना जातिगत भेद-भाव भूलकर एक राष्ट्र—भारतीय—के रूपमें संगठित हों। अतः उसने प्रारम्भसे ही विजेता और विजितके बीच अन्तर करनेवाली सारी प्रथाओं और चिह्नोंको हटा दिया। उसने हिन्दुओं पर लगे कई घृणास्पद करोंको उठा लिया। यह उसने इसलिए किया कि हिन्दुओंके मनसे यह छाप मिट जाय कि मुसलमान विजेता-जातिके होनेके कारण हम पर अत्याचार करते हैं। दोनों सम्प्रदायोंमें विवाह-सम्बन्धोंको बढ़ावा देकर वह इन दोनोंके बीचकी खाईको पाटना चाहता था। वास्तवमें उसकी नीति सहिष्णुता और समझौतेकी नीति थी। उसकी नीतिका मुख्य उद्देश्य था कि सभी सम्प्रदायोंके बीचकी असमानताको दूर करके समस्त प्रजाका सहयोग और राजभक्ति प्राप्त की जाय। ऐसी उदार और प्रगतिशील नीतिका दूसरा उदाहरण इतिहासमें शायद ही कहीं मिले।

जज़िया और तीर्थ-यात्रा-कर उठा दिये गये

अकबर के सुधार: (क) सामाजिक. अकबर ने जितने सामाजिक सुधार किए, उनमें उसकी राजनीतिज्ञता और मानवता छिपी हुई थी। हिन्दुओंको प्रसन्न करनेके लिए उसने ग़ैर-मुस्लिमों पर लगे हुए जज़िया या पॉल टैक्सको हटा लिया और हिन्दू तीर्थ यात्रियोंसे जो कर लिया जाता था, उसे भी बन्द कर दिया। इन दोनों करोंके विरुद्ध हिन्दुओंमें बड़ा असन्तोष रहता था, क्योंकि एक तो ये अपमानजनक थे, दूसरे उन पर यह एक अतिरिक्त आर्थिक भार था; अतः इन करोंके हट जानेसे बहुसंख्यक हिन्दू-जनताके मनमें अकबर के प्रति जो हार्दिक प्रेम और विश्वास उत्पन्न हो गया, वह अन्य किसी उपायसे सम्भव न था। लेकिन हिन्दुओंके प्रति जहां समान और न्यायपूर्ण बर्ताव करके उसने उन्हें सन्तुष्ट करनेकी चेष्टा की, वहां उनकी कई निष्ठुर तथा अन्धविश्वासी प्रथाओं में हस्तक्षेप करनेमें भी वह न चूका। उसने बाल-विवाह पर रोक लगा दी, विधवाओंका पुनर्विवाह जायज़ क़रार दे दिया और सती-प्रथा (जो इतना वीभत्स रूप धारण कर गयी थी कि स्त्रीके न चाहते हुए भी समाजवाले उसे ज़बरदस्ती मृत पति की चितामें झोंक देते थे) को बन्द करा दिया। उसने युद्धके बन्दियोंको ग़ुलाम बनाना भी ग़ैरक़ानूनी कर दिया और इस प्रकार फ़ीरोज़शाह की नीतिको पलट दिया।

उसने कुछ हिन्दू-प्रथाओं पर प्रतिबन्ध लगा दिया

(ख) शासन-सम्बन्धी सुधार. (१) अकबर ने मुद्रा-सम्बन्धी

सुधार किये और मुद्रा-प्रणालीमें समरूपता लानेकी चेष्टा की। उसने डाक और पुलिसका भी सगठन किया। (२) सामन्तके विद्रोहोंसे शिक्षा ग्रहण करके उसने सैनिक अधिकारियोंको जागीर या दानमें ज़मीन देना क़तई बन्द कर दिया और इस बातका प्रबन्ध कर दिया कि यथा-सम्भव सेनापतियोंको एक निश्चित वेतन नक़द मिल जाया करे। बहुत-सी जागीरें ज़ब्त कर ली गईं और उन्हें शाही ज़मीन मानकर उन पर वेतनभोगी अफ़सरोंकी देखरेखमें खेती की जाने लगी। इस नीतिसे स्थानीय सामन्तोंका प्रभाव घट गया और अकबर की स्थिति भी सुदृढ़ हो गई। (३) रेकर्ड-विभागका संगठन किया गया और फ़तेहपुर-सीकरी में रेकर्ड (ज़रूरी काग़ज-पत्रों) को सुरक्षित रखनेके लिए एक भवन बनाया गया। (४) मनसबदारी-पद्धति जारी करके उसने एक तरहसे फ़ौजी राजशाही निर्माण करनेका प्रयत्न किया। 'मनसबदार' शासना-धिकारी होते थे, जिन पर सैनिक कर्मके अतिरिक्त साधारण निरीक्षण का भी उत्तरदायित्व रहता था। वे राज्यके उच्चाधिकारियोंमें से थे। उनके तेंतीस दर्जे थे—१०,००० घुड़सवारोंके सेनापतिसे लेकर १० घोड़ोंके सेनापति तकका मनसब रहता था। दस हज़ारी मनसब सबसे बड़ा गिना जाता था। हरेक मनसबके हरेक आदमीको शाही घुड़सवार-सेना में एक निश्चित संख्यामें घोड़े देने पड़ते थे। सबसे ऊंचे तीन मनसब केवल शाही परिवारके व्यक्तियोंको ही दिये जाते थे।

जागीरोंको ज़ब्त कर लिया

'मनसबदार' प्रणालीका पुनस्संगठन

मालगुज़ारीका बन्दोबस्त. अकबर का सबसे महत्त्वपूर्ण शासन-सम्बन्धी सुधार था ज़मीनकी मालगुज़ारी तय कर देना। इस सफलता का मुख्य श्रेय उसके सुयोग्य अर्थमंत्री राजा टोडरमल को था, जो राजस्व-सम्बन्धी मामलोंमें अकबर का दाहिना हाथ था। शेरशाह के दिखाये हुए रास्ते पर चलकर टोडरमल ने ज़मीनकी पैमाइश कराई और उत्पादन-शक्तिके अनुसार ज़मीनका वर्गीकरण कर दिया। वर्गीकरण करनेमें बड़ी सावधानीसे काम लिया गया, जैसे अमुक ज़मीन किस तरहकी है, इसे जाननेके लिए यह मालूम करना आवश्यक था कि इस पर बहुत पहलेसे खेती होती है, या हाल ही में वह खेतीके लिए तोड़ी गई है; बंजर भूमि है या उर्वरा; यदि उर्वरा है तो कौन-कौन-सी फ़सल किस-किस ज़मीनमें उगाई जा सकती हैं आदि। टोडरमल ने औसत उपज और न्यूनतम मूल्यका अनुमान लगाकर उसकी एक-तिहाई सरकारी माल-गुज़ारी तय कर दी। जहां तक सम्भव था, बन्दोबस्त किसानोंसे सीधे किया गया और यह उनकी इच्छा पर छोड़ दिया गया कि वे चाहें तो माल-गुज़ारी नक़द दें या ग़ल्लेके रूपमें। परन्तु अकबर नक़द मालगुज़ारी

टोडरमल ने ज़मीनकी अच्छी तरह पैमाइश करा के और उस की उपजका उचित अनु-मान लगाकर ही माल-गुज़ारी निश्चित की

लेना ही पसन्द करता था। यह बन्दोबन्स्त पहले सालाना था, परन्तु बादमें दससाला कर दिया गया। किसानों पर जो अनुचित लाग-वाग पहलेसे लगी हुई थी, उनको अकबर ने बन्द करा दिया। अगर कोई अफ़सर उनसे अनुचित ढंगसे अधिक मालगुज़ारी वसूल करता था, तो किसानोंको सुविधा दी गई थी कि वे तुरन्त इसकी शिकायत करें और ऐसी शिकायतोंकी सुनवाई तुरन्त होती थी। थोड़ी ज़मीनवाले किसान यदि पूरी मालगुज़ारी न दे पाते थे, तो उनके साथ सख्ती नहीं की जाती थी। आजकल कृषि-बैंक जो काम करते हैं, उसका अन्दाज टोडरमल ने उन्हीं दिनों लगा लिया था और वह ज़रूरतमन्द किसानोंको आसान शर्तों पर सरकारी क़र्ज़ दिया करता था।

अनुचित लाग-बाग तथा नज़राने बन्द कर दिये गये

खेतिहरोंको छोटे-छोटे क़र्ज़

परिणाम

टोडरमल के सुन्दर बन्दोबस्तसे राज्य और ग़रीब किसान दोनोंको लाभ हुआ। सरकारी मालगुज़ारी तय थी, इसलिए माल-अफ़सरोंको बीचमें तिकड़म करनेकी गुँजाइश न रह गई थी, इससे राजकीय कोष भी समृद्ध हो गया। किसानोंको भी यह विश्वास हो गया कि ज़मीन उसने छीनी न जायगी और उनको यह भी मालूम हो गया कि अमुक संख्या और अमुक समय पर उन्हें मालगुज़ारी देनी है; उसके लिए वे पहलेसे ही तैयार रहने लगे। उनसे पहले कई तरहकी अनियमित लाग-वाग ली जाती थी, अब उनके हट जानेसे उन्होंने सन्तोषकी सांस ली। इसका परिणाम यह हुआ कि खेतीकी पैदावार खूब बढ़ गई और ग़ल्ला बहुत सस्ता हो गया।

जागीरदारों की बेईमानी पर रोक-थाम

सेना-सम्बन्धी सुधार. सरकारी सेवामें काम आनेवाले घोड़ोंको दाग़नेकी प्रथा अकबर ने भी शेरशाह के नमूने पर जारी रखी और इस प्रकार जागीरदारों द्वारा सरकारकी आंखोंमें जो कभी-कभी धूल झोंकी जाती थी, वह बहुत कुछ बन्द हो गई। दूसरे उसने युद्ध-बन्दियों को दास बनानेकी प्रथाको भी उठा दिया। तीसरे वह अपने सेनाधिकारियोंको नक़द वेतन देता था। इस प्रकार उसने फ़ीरोज़शाह तुग़लक़ द्वारा चलाई गई प्रथा, जिसमें सैनिक अधिकारियोंको उनकी सेवाओंके लिए जागीरें दी जाती थीं, बिलकुल बन्द कर दी। जागीर देनेकी इस प्रथासे सेनाध्यक्षोंको विद्रोह करनेकी प्रवृत्ति होती थी और उनकी शक्ति बढ़ जाती थी।

जागीरें देना बन्द कर दिया

अकबर के पास स्थायी सेना बहुत कम थी। मनसबदारों और जागीरदारोंके पास जो सेना रहती थी, वही मौक़ा पड़ने पर काम आती थी। सेनाकी हर टुकड़ीका अपना अलग सेनापति होता था, जो प्रायः मनसबदार या जागीरदार होता था।

अकबर का शासन (नागरिक शासन-प्रबन्ध)

शासन-प्रबन्धकी सुविधाके लिए अकबर ने अपने साम्राज्यको पन्द्रह प्रान्तोंमें बांट दिया, जिनमें से हरेक 'सूबा' कहलाता था और एक 'सूबेदार' के नियंत्रणमें रहता था। ये सूबेदार या तो शाही खूनके शाहजादों में से चुने जाते थे या बड़े सामन्तोंमें से। इनको पूरे अधिकार दिये गये थे, शर्त इतनी ही थी कि शाहंशाह जब चाहे उनको वापस बुला सकता था या तबादला कर सकता था। समय पड़ने पर उन्हें शाही कामोंके लिए धन-जनसे सहायता भी देनी होती थी। सूबा 'सरकारों' में विभक्त थे, जिनकी संख्या एक सौ से अधिक थी। 'सरकार' 'परगनों' या 'महालों' में बंटे थे। मालगुजारी वसूल करनेकी सुविधाके लिए कई परगनोंको मिलाकर समूह बना दिये गये थे और सब मिलकर एक इकाई बनाते थे, जिन्हें «दस्तूर» कहते थे।

साम्राज्य १५ सूबोंमें बंटा था। सूबे छोटी प्रादेशिक शासन-इकाइयों, जैसे सरकारों और परगनों, में बंटे हुए थे,

सरकार नौकरशाही थी, क्योंकि शासन छोटे-बड़े हाकिमोंके द्वारा होता था, जिन्हें मनसबदार कहते थे। यों तो वे सैनिक-अधिकारी ही कहे जाते थे, परन्तु वे न्याय-सम्बन्धी अधिकारोंका भी प्रयोग करते थे, विशेषतः फ़ौजदारीके मामलोंमें। सिविल केस या दीवानीके मुक़दमे क़ाज़ियों पर छोड़ दिये जाते थे जो क़ुरानके नियमानुसार फ़ैसला करते थे।

मनसबदार

क़ाज़ी

इस प्रकार एक अच्छी नौकरशाहीका संगठन करके और मालगुजारी के तरीक़ेमें सुधार करके अकबर ने एक अच्छा नागरिक शासन स्थापित किया। इसीके बल-बूते पर अकबर ने सैनिक दृष्टिसे अधिकृत प्रदेशोंको सुव्यवस्थित साम्राज्यका स्वरूप दिया।

टिप्पणी. अकबर का साम्राज्य जिन १५ सूबोंमें विभक्त था, उनके नाम इस प्रकार हैं—आगरा, अहमदाबाद, अजमेर, इलाहाबाद, बंगाल (उड़ीसा समेत), बिहार, दिल्ली, काबुल (जिसमें काश्मीर भी शामिल था), लाहौर, मालवा, मुल्तान (सिन्धु सहित), अवध, अहमदनगर, बरार और ख़ानदेश।

हिन्दुओंके साथ उसका व्यवहार. अकबर ने किसी राजनीतिक कार्यसे उतना लाभ नहीं उठाया, जितना उसने हिन्दुओंसे मेल-जोल रख कर उठाया। उसके पूर्वके किसी बादशाहने हिन्दुओंके साथ समझौता रखनेकी कोई परवाह न की। यही कारण है कि उनमें से कोई स्थायी और दृढ़ साम्राज्य नहीं बना पाया, लेकिन अकबर ने पिछली परम्परासे दूर हटकर हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच सब तरहके भेद-भावोंको समाप्त

अकबर ने राजनीतिक कारणोंसे हिन्दुओंके प्रति समझौता-नीति रखी

जज़िया हटा दिया

कर देनेका बीड़ा उठाया। इस दिशामें पहला काम उसने यह किया कि अत्यन्त घृणास्पद जज़िया कर और हिन्दू तीर्थ-यात्रियों पर लगने-वाले कर को हटा लिया। इसी नीतिवश उसने हिन्दुओं और मुसलमानों में परस्पर शादी-ब्याह करनेका प्रचार किया। इस तरहके अन्तर्जातीय विवाह कोई नयी बात न थी, दक्षिणके सुल्तानोंने पहले ही इसके उदाहरण सामने रखे थे; परन्तु अकबर ने हिन्दू राजकुमारियोंसे बिलकुल दूसरी भावनासे विवाह किये। वह अपने हिन्दू-रिश्तेदारोंको शाही परिवारका ही आदमी समझता था। इससे यह लाभ हुआ कि मुसलमानोंके दिलसे प्रभुत्व, शासक जाति होनेकी ऐंठ और हिन्दुओंको नीचा समझनेकी प्रवृत्ति दूर हो गयी। हिन्दुओंको मुसलमानोंके बराबर दर्जा देनेके लिए उसने दूसरा काम यह किया कि सरकारी नौकरियोंका दरवाज़ा दोनोंके लिए खोल दिया; योग्य व्यक्तिको, चाहे वह जातिका हिन्दू हो या मुसलमान, आगे बढ़नेकी सुविधा मिलती थी। उसने योग्य हिन्दुओंको शासन और सेनाके उच्च पदों पर नियुक्त किया। उसकी लड़ाइयोंमें वीर हिन्दुओंको सदा नेतृत्व करनेका अवसर मिला। भगवान्-दास, मानसिंह और टोडरमल के नाम अकबर के युद्धों और शासनके इतिहासमें प्रसिद्ध हैं। अन्तिम बात यह कि उसने हिन्दुओंको आराधन-पूजनकी पूर्ण स्वतंत्रता दे रखी थी। हिन्दू-मन्दिरोंके लूटे जाने और उन के अपवित्र किये जानेकी कहानियां उस समय सुननेको नहीं मिलती थीं। विजित लोगोंके प्रति किसी भी विजेताका ऐसा सहिष्णु और उदार विचार इतिहासमें एक अनोखी घटना है, क्योंकि समानता-सम्बन्धी अकबर के विचार केवल काग़ज़ी कार्रवाई या ख्याली पुलाव ही न थे, वरन् उनको कार्यरूपमें भी परिणत किया जाता था। उसको भी अपने इस विश्वासका पारितोषिक हिन्दुओंकी अनन्य राजभक्तिके रूपमें मिला। हिन्दू न केवल उसीके राज्य-कालमें मुग़ल-साम्राज्यके प्रबलतम समर्थक सिद्ध हुए, वरन् उसके दो उत्तराधिकारियोंके कालमें भी उनका व्यवहार तद्वत् रहा। औरंगज़ेब ने अकबर की नीतिके विरुद्ध आचरण किया और उसका परिणाम यह हुआ कि मुग़ल-साम्राज्य बिखर गया।

हिन्दुओंके साथ अन्तर्जातीय विवाह

हिन्दुओंकी उच्च पदों पर नियुक्ति

धार्मिक सहिष्णुता

परिणाम

अकबर का मज़हब. अकबर के धार्मिक विचार क्रमशः प्रगति-शील होते गये, यहां तक कि उसने एक नया मज़हब 'दीन इलाही' के नाम से चलाया। अकबर का पालन-पोषण एक पक्के सुन्नी मुसलमानकी तरह हुआ था, परन्तु जीवनके प्रारम्भिक दिनोंमें ही सूफ़ी रहस्यवादसे वह प्रभावित हो गया था, विशेषतः उस समयसे जबसे उसका साथ फ़ैज़ी और अबुलफ़ज़ल नामक दो भाइयोंसे हुआ, जो सूफ़ी थे। उनके प्रभावमें

आकर उसके विचार दिन-पर-दिन उदार होते गए, हर एक धर्ममें उसे अच्छाइयां दिखायी देने लगीं। एक स्वतंत्र चिन्तकके सदृश उसने सभी धर्मोंके सिद्धान्तोंसे परिचित होना प्रारम्भ किया। उसने विभिन्न धर्मों के कई विद्वान् उपदेशकोंको फ़तेहपुर-सीकरी में स्थित अपने «इबादत-खाना» में आमंत्रित किया। सीकरी परस्पर विरोधी धर्मावलम्बियोंका अड्डा बन गया। सभी धर्मोंके विशेषज्ञों, चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान या जैन, ईसाई अथवा यहूदी, सबकी बातें वह निष्पक्ष दृष्टिसे सुनता था। संक्षेपमें, उसने धर्मके विषयमें सत्यका अन्वेषण करनेके लिए अपनेको बहुश्रुत बनानेकी चेष्टा की।

पहले वह सुन्नी मुसलमान था, परन्तु उसकी जिज्ञासा बड़ी प्रबल थी, इसीलिए उसने दूसरे धर्मोंको समझनेका प्रयत्न किया

इन सभी धर्मोंका जो संयुक्त प्रभाव अकबर के मस्तिष्क पर पड़ा, उससे उसे सुन्नियोंकी धार्मिक कट्टरतासे घृणा हो गयी। अतः अबुलफ़ज़ल और फ़ैज़ी के पिता शेख मुबारक के परामर्श पर अकबर ने इस्लामको आध्यात्मिक नेता—पैग़म्बर—का कार्य प्रारम्भ कर दिया। सन् १५७९ में उसने पुरानी परम्पराको बालाए ताक़ रखते हुए मस्जिदके मुल्लाको पदच्युत करके वेदी पर चढकर स्वयं नमाज़का नेतृत्व किया। उसी वर्ष उसने एक शाही फ़रमानके ज़रिये यह हुक्म जारी किया कि मज़हबी मामलोंमें शाहंशाहका फ़ैसला, जो क़ुरान की आयतोंके विरुद्ध न होगा, हर एक मुसलमान पर अनिवार्य रूपसे लागू होगा।

एक शाही फ़रमानके ज़रिये अकबर ने सभी मज़हबी मामलोंमें अपना फ़ैसला सर्वोपरि बना लिया

जिस फ़रमानके ज़रिये अकबर ने धार्मिक प्रश्नों पर अपने निर्णयको सर्वोपरि कर दिया था, वह तत्कालीन मुस्लिम-परम्पराके तो विरुद्ध था, लेकिन मुसलमान मज़हबके विरुद्ध न था। उसके रुखसे यह स्पष्ट हो गया कि उसकी विकासमान आत्माके लिए इस्लामकी सीमा अत्यन्त संकुचित है। उसकी धार्मिक विचार-क्रान्तिकी अन्तिम परिणति तब हुई जब सन् १५८२ में उसने «दीन इलाही» या «दैविक धर्म» प्रचलित किया। यह धर्म एक प्रकारका उदार 'लोकेश्वरवाद' था जिसमें विभिन्न धर्मोंके अच्छे सिद्धान्तोंका समावेश कर लिया गया था। ऐसा लगता है कि अकबर की यह इच्छा थी कि एक ऐसा राष्ट्रीय धर्म प्रचलित हो जाय, जिसे हिन्दू और मुसलमान दोनों मानें और एक ही पूजागृहमें समान विधिसे आराधना करें। लेकिन नया धर्म इतना दार्शनिक तथा सैद्धान्तिक था कि साधारण जनता उसकी ओर आकर्षित न हुई और अकबर के कुछ साथियोंने ही उसको अंगीकार किया। दीन इलाही मज़हब भी अकबर के साथ ही मर गया।

दीन इलाही का औचित्य

स्मिथ के विचारोंकी आलोचना. स्मिथ ने इस धर्मके प्रति बहुत उपेक्षापूर्ण भाषाका प्रयोग किया है। उसने इसे एक 'बेहूदा आविष्कार'

कहा है। लेकिन इस तरहकी छींटाकशी उचित नहीं है। इससे यही झलकता है कि स्मिथ ने पूरी तरह 'दीन इलाही' की विशेषताको समझने की कोशिश नहीं की। यह पहले ही कहा जा चुका है कि अकबर के मजहबका जितना राजनीतिक महत्त्व था, उतना धार्मिक महत्त्व नहीं। यद्यपि धार्मिक प्रश्नोंमें उसकी गहरी दिलचस्पी थी, लेकिन वह धार्मिक प्रचारकके बजाय एक दूरदर्शी राजनीतिज्ञ और साम्राज्य-निर्माता अधिक था। यह निर्विवाद सत्य है कि किसी राष्ट्रको एक रखनेमें समस्त राष्ट्रके लिए एक ही धर्मसे बड़ी सहायता मिलती है। अकबर ने इस सत्यको पहचाना और एक ऐसा धर्म प्रचलित करनेकी चेष्टा की जो सभी धर्मावलम्बियोंके लिए ग्राह्य हो सके। इससे उसकी राजनीतिक कुशलता और उदार विचारोंका ही परिचय मिलता है। लेनपूल ने ठीक ही कहा है कि 'जिन उदार विचारोंके कारण अकबर ने यह कार्य किया, उसका प्रभाव लड़ाकू जातियों और सम्प्रदायोंवाले देश पर बहुत दिनों तक बना रहा।' और इसीका परिणाम था कि जो देश पहले कई टुकड़ोंमें बँटा हुआ था, एक राष्ट्रके रूपमें संगठित हो गया।

वह सभी धर्मोंके प्रति सहिष्णु था, परन्तु उससे मुसलमान-विरोधी रुख की झलक मिलती थी

उसकी धार्मिक सहिष्णुता. अकबर के उदार विचारोंमें सभी धर्मों के लिए समान आदर था, वह मानता था कि सभी धर्मोंमें सत्यका अंश है इसीलिए उसने किसी व्यक्तिको धर्मके नाम पर दंड भुगतने न दिया। उसके राज्यमें हिन्दू, ईसाई, जैन और पारसी तथा अन्य मत वालोंको पूरी स्वतंत्रता थी, सार्वजनिक रूपसे पूजा-पाठ करनेकी उन्हें पूरी छूट थी। जब उसने राजधर्मके रूपमें दीन इलाही को प्रचलित किया, उस समय भी उसने किसीको बलात् उस धर्ममें लानेकी चेष्टा न की।* यह अवश्य था कि इस नये धर्मके प्रचलनके बाद अकबर ने कई ऑर्डिनेंस जारी किए जो इस्लाम-विरोधी कहे जा सकते हैं, जैसे—रमज़ानके दिनों में रोज़ा रखना बन्द करा दिया गया, जुम्माकी नमाज़ बन्द कर दी गयी, मुहम्मद के नाम पर पाबन्दी लग गयी, नयी मस्जिदें नहीं बनवायी जा

* अनुवादकीय टिप्पणी. अकबर के उपर्युक्त कथित आदेशोंका आधार अब्दुल क़ादिर बदायूंनी की किताब है। श्री एस० आर० शर्मा ने अपनी किताब (मुग़लोंकी धार्मिक नीति) में यह सिद्ध किया है कि बदायूंनी की लिखी हुई धर्म-सम्बन्धी बहुत-सी बातें ग़लत हैं और उसने स्वयं अपनी पुस्तकमें कई विरोधात्मक बातें लिखी हैं। अतः इन आदेशोंको सत्य नहीं माना जा सकता। उसने मक्का जाना या रमज़ान का उपवास कभी बन्द नहीं किया।

सकती थीं और मक्का की हज-यात्रा बन्द कर दी गई। ये ऑर्डिनेंस मुसलमानोंको नाराज करने के लिए काफ़ी थे, परन्तु इनको न मानने पर भी किसीको सजा नहीं दी जाती थी। ऐसा रुख अकबर ने कट्टर मुसलमानों की विरोधी भावनाओंका उत्तर देनेके लिए अपनाया था।

तीन मिशन

अकबर और जेसुइट्स' (ईसाई). अकबर ने असीम धार्मिक जिज्ञासाके कारण गोआ के पुर्तगीज अधिकारियोंको लिखा कि वे उसके दरबारमें कुछ विद्वान् धर्म-शास्त्रज्ञोंको भेजें जो ईसाई मतके सम्बन्धमें उसको प्रकाश दे सकें। पुर्तगीजोंकी खुशीका कोई ठिकाना न रहा। उन्होंने समझा कि अगर इतना बड़ा शाहंशाह उनके धर्मको स्वीकार कर ले तो फिर तो उनकी चादी ही है; अतः सन् १५८० में कुछ ईसाई मिशनरी अकुआवाव और मांसरेट के नेतृत्वमें अकबर के दरबारमें भेजे गये। अकबर ने उनकी बड़ी आवभगत की और आगरा में उन्हें एक गिरजाघर बनानेकी अनुमति दी। सम्राट्ने ईसाई मिशनरियोंके उपदेशोंमें बड़ी रुचि ली और अपने पुत्र मुराद के ऊपर उस धर्मके नैतिक सिद्धान्तोका प्रभाव भी देखा। पहिला मिशन १५८३ में वापस लौट गया, परन्तु मिशनरियो ने जो यह आशा बांधी थी कि अकबर को वे अपने धर्ममे दीक्षित कर सकेंगे, वह धूलमें मिल गयी। अकबर की प्रार्थना पर दूसरा मिशन फिर १५९० में भेजा गया, जो १५९२ में वापस बुला लिया गया, परन्तु यह भी पहिले मिशन की भांति ही अपने उद्देश्य में असफल रहा। तीसरा मिशन १५९५ ई० में भेजा गया, यह स्थायी सा बनकर रहा। यद्यपि अकबर को अपने धर्ममें लानेमें यह भी असफल रहा, तो भी इसने अकबर से कई व्यापारिक सुविधाएं प्राप्त कर लीं और ईसाई धर्मका प्रचार करने तथा लोगोंको इस धर्ममें लानेका अधिकार पा लिया। स्मिथ का कहना है कि अकबर ने ईसाई-पादरियोंकी इतनी आवभगत इसलिए की, क्योंकि असीरगढ़के विरुद्ध उसे पुर्तगीजोंकी सैनिक सहायता लेनी थी।

स्मिथ के विचारोंकी आलोचना

अकबर ने क्या इस्लाम मजहब छोड़ दिया था? स्मिथ का यह विचार है कि नया धर्म चलानेके बादसे अकबर इस्लाम धर्मका अनुयायी नहीं रह गया था, 'हालांकि नीतिवश वह कुछ अवसरों पर मुसलमान होनेका सबूत दे देता था और उनके उत्सवोंमें भाग लेता था।' अपनी इस रायके लिए उसने ये कारण दिये हैं—(क) अकबर द्वारा जारी किये गये मुसलमान-विरोधी ऑर्डिनेंस, (ख) ईसाई-पादरी मांसरेट से उसका यह कहना कि मैं मुसलमान नहीं हूं, और (ग) कुछ हिन्दू रीति-रिवाजों का अपनाना आदि। यद्यपि इन कारणोंसे स्मिथ के विचारोंकी पुष्टि

होती है, पर इनसे हम यह नहीं कह सकते कि उसने इस्लाम को त्याग दिया था। बहुत सम्भव है कि उसने जो मुसलमान-विरोधी ऑर्डिनेंस जारी किये, उनमें कट्टर धर्मान्ध मुल्ला-मौलवियोंके शत्रु-भावका उत्तर देनेकी चेष्टा ही प्रमुख रही हो। मांसरेट का कथन भी निष्पक्ष नहीं हो सकता। हमें यह न भूल जाना चाहिए कि ईसाई-पादरी अकबर को ईसाई धर्ममें दीक्षित करनेके लिए बड़े उत्सुक थे, इसीलिए वे उसकी किसी ऐसी बातको, जिससे उसका रूढ़िवादिताके प्रति विरोध झलकता हो, नमक-मिर्च मिलाकर जनताके सामने रख सकते थे, क्योंकि इससे उनका मतलब निकलता था। रह गई अकबर द्वारा हिन्दू रीति-रिवाजोंको अपनानेकी बात। इसके लिए कहा जा सकता है कि इसमें धार्मिक उद्देश्य कम, राजनीतिक उद्देश्य ही अधिक था। स्मिथ ने भी यह स्वीकार किया है कि सन् १५८२ (जब उसने मांसरेट से बातचीत की थी) के बादसे नीतिके रूपमें अकबर मुसलमानोंके धार्मिक समारोहोंमें भाग लेता था। इसी तर्कसे हम यह कह सकते हैं कि अन्य धर्मोंके प्रति उदारता और समानताका व्यवहार भी अकबर ने नीतिवश ही किया।

उसकी शारीरिक शक्ति

अकबर का चरित्र. प्रकृतिने अकबर को शरीर और मस्तिष्ककी असाधारण शक्ति उपहारमें दी थी। अत्यन्त शारीरिक शक्ति और अदम्य साहसके साथ ही उसमें शारीरिक कष्ट-सहिष्णुता भी प्रचुर मात्रा में थी। कई बार जितनी तेज़ीसे उसने अपनी सेनाको साथ लेकर कूच किया उससे पता चलता है कि उसमें कितनी शारीरिक परिश्रमकी बरदाश्त थी। उसके चेहरे पर शाही रोब था, स्वर गम्भीर और आदेशात्मक था और देखनेमें वह सभ्य-सुसंकृत लगता था। उसकी मानसिक शक्ति भी शारीरिक शक्तिकी तरह बढ़ी-चढ़ी थी। उसकी जिज्ञासा असीम थी और उसकी बुद्धि असाधारण, बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न थी। यद्यपि वह कहनेको पढ़ा-लिखा न था, लेकिन सत्संगसे उसने अपनी बुद्धिका बहुत विकास कर लिया; अपने युगके बड़े-बडे विद्वानोंसे वह सम्पर्क स्थापित कर चुका था। विभिन्न विषयोंकी पुस्तकें उसको पढ़कर सुनाई जाती थीं और चूंकि उसकी स्मरणशक्ति उच्चकोटिकी थी और उसकी बुद्धि प्रखर थी, इसलिए वह शास्त्रोंको सुनकर ही इतना ज्ञान प्राप्त कर लेता था, जितना बहुतसे लोग पढ़कर नहीं प्राप्त करते। इसके अलावा यांत्रिक कलामें भी उसकी रुचि थी। उसने बन्दूककी नली भरनेका एक नया तरीक़ा आविष्कार किया और एक ऐसी मशीन ईजाद की जिससे सोलह नलियां एक साथ प्रवाहित होती थीं। लेकिन उसको सबसे ज्यादा शौक़ था प्रतिद्वन्द्वी धर्मानुयायियोंका शास्त्रार्थ सुनने का

उसकी मानसिक प्रतिभा और रुचि

जिन पर वह बीच-बीचमें अपनी निष्पक्ष और विद्वत्तापूर्ण सम्मति भी प्रकट करता था। उसको क्रोध बहुत कम आता था, लेकिन जब आता था तब बड़े भयंकर रूपमें। उस समय वह रौद्र रूप धारण कर लेता था। दूसरोंके साथ उसका व्यवहार सभ्यतापूर्ण और आकर्षक था। 'वह बड़ोंके साथ बड़ा और छोटोंके साथ छोटा था।' स्वभावतया वह क्षमाशील था, लेकिन वह जानता था कि किस प्रकार लोगों पर आतंक रखते हुए भी उनसे प्रेम और सम्मान प्राप्त किया जा सकता है।

उसका व्यवहार

अकबर का मूल्यांकन. अकबर को जो सफलताएं मिलीं उनके कारण उसका नाम संसारके सर्वश्रेष्ठ सम्राटोंमें गिना जाता है। वह मुग़ल-साम्राज्यका वास्तविक संस्थापक था। युद्ध और शान्ति दोनोंमें वह महान् तथा कुशल था। वह पहला मुसलमान बादशाह था जिसके शासनकी जड़ें इस देशमें गहरी पैठीं। साम्राज्य-निर्माताके रूपमें उसको जो सफलता मिली, इसके मूलमें उसके उदार विचार और राजनीतिज्ञता थी। हिन्दुओंके साथ उसका जो व्यवहार रहा, उससे भारत में मुस्लिम-शासनके इतिहासमें एक नये युगका सूत्रपात हुआ। अकबर के पूर्वके मुस्लिम सुल्तानोंके शासन-कालमें हिन्दू शोषित, पीड़ित और उपेक्षित थे, इसलिए वे विद्रोह करने योग्य अवसरकी तलाशमें रहते थे। अकबर में एक सच्चे राजनीतिज्ञके गुण थे, इसलिए उसने हिन्दू-मुसलमानके बीचके सभी भेद-भावोंकी खाईको पाटनेका हर सम्भव प्रयत्न किया और उसने स्वयंको केवल मुस्लिम अल्पसंख्यकोंका बादशाह ही साबित नहीं किया, वरन् समूचे राष्ट्रका नेता सिद्ध किया। इस प्रकार उसका साम्राज्य जनताकी सच्ची राजभक्तिके बल पर टिका हुआ था और इसीलिए पूर्व सुल्तानोंकी सल्तनतसे उसका साम्राज्य अधिक चिरस्थायी रहा। यह कहना असंगत न होगा कि प्राचीन अथवा अर्वाचीन किसी भी राजा ने अपनी प्रजाके साथ इतनी समानताका व्यवहार नहीं किया होगा, जितना अकबर ने हिन्दुओंके साथ किया।

उसकी राज-नीतिज्ञता

अकबर जनताका राष्ट्र-प्रमुख था

जिस प्रतिभाके बल पर उसने एक विशाल साम्राज्यका निर्माण किया और उसको संगठित किया, उसीके बल पर उसने उसका अच्छा शासन-प्रबन्ध भी किया। अकबर एक पिताकी तरह अपनी प्रजा पर वात्सल्य-दृष्टि रखता था, शासन-सम्बन्धी सभी बातोंका वह व्यक्तिगत रूपसे निरीक्षण किया करता था। टोडरमल ने जो भूमि-व्यवस्था (बन्दोबस्त) की और मालगुजारीकी शरह तय की, वह उसके शासनका सबसे उज्ज्वल पहलू था। अकबर की रुचि अनेक बातोंमें थी। वह कला और साहित्य का उदार संरक्षक था और धार्मिक सत्योंके विषयमें उसकी जिज्ञासा

उसकी बहुमुखी कार्यशीलता

बड़ी उत्कट थी। उसमें अवगुण भी थे (और वे किसमें नहीं होते ?) ; उसे कभी-कभी बड़ा क्रोध हो आता था, अफ़ीम खानेकी भी उसकी आदत थी और कभी-कभी वह अमानुषिक दंड भी दे बैठता था, लेकिन उसके दिल-दिमाग़की ख़ूबियोंके सामने ये दोष खिलवाड़ मालूम होते हैं; वास्तवमें उसके गुणोंने उसे अमर बना दिया।

अकबर के मित्र. अकबर अपने मित्रों और अफ़सरोंका चुनाव हिन्दुओं और मुसलमानों दोनोंमें से करता था। मुसलमानोंमें उसके सबसे घनिष्ठ मित्र दो बुद्धिमान् भाई फ़ैज़ी और अबुलफ़ज़ल थे। दोनों का चरित्र निष्कलंक और विचार उदार तथा विद्वत्ता उच्च कोटिकी थी। फ़ैज़ी साहित्यिक रुचिका व्यक्ति था, वह फ़ारसीका कवि और संस्कृत का अच्छा ज्ञाता था। अबुलफ़ज़ल विद्वान् और एक अच्छा शासक था। उसने शासनमें इतनी निपुणता प्राप्त कर ली थी कि वह अकबर का सबसे विश्वासपात्र परामर्शदाता बन गया। अकबर के धार्मिक विचारोंमें जो उदारता और सहिष्णुता थी, वह उसके ही प्रभावके कारण। अपने भाई की तरह उसने भी साहित्य-निर्माणकी ओर प्रवृत्ति की और एक बड़ा इतिहास-ग्रन्थ 'अकबरनामा' रच डाला। अकबर के हिन्दू मित्रोंमें सबसे विश्वासपात्र मानसिंह और टोडरमल थे। मानसिंह उसके सबसे बड़े सेनापतियोंमें से था और काबुल और बंगाल का गवर्नर भी रह चुका था। टोडरमल योग्य सेनानायक सिद्ध हुआ, उसने खैबर-दर्रे और पेशावरमें साम्राज्यकी बड़ी सेवाएं की, लेकिन उसका नाम मालगुज़ारी और राजस्व सम्बन्धी प्रबन्धकी विशेषज्ञताके लिए ही प्रसिद्ध है। बीरबल अपनी हाज़िरजवाबी (प्रत्युत्पन्न मति) और चुटकुलोंके लिए बहुत प्रसिद्ध था। वह अकबर के प्रियतम मित्रोंमें से था। प्रसिद्ध गायक और वादक तानसेन उसके दरबारकी शोभा बढ़ाता था।

फ़ैज़ी और अबुलफ़ज़ल

मानसिंह और टोडरमल

साहित्य और कला. अकबर ने कला और साहित्य दोनों पर समान रूपसे ध्यान दिया और दोनोंकी उन्नतिमें उदारतापूर्वक सहायता दी। उस युगके बड़े लेखकोंमें थे—दो भाई फ़ैज़ी और अबुलफ़ज़ल, और तीन प्रसिद्ध इतिहासकार—«बदायूंनी», «फ़िरिश्ता», और «निज़ामुद्दीन»। फ़ैज़ी फ़ारसीका महान् कवि था और उसे संस्कृतका भी अच्छा ज्ञान था। अबुलफ़ज़ल 'अकबरनामा' नामक ग्रन्थका, जिसका प्रसिद्ध 'आईन-ए-अकबरी' एक अध्याय है, लेखक था। 'आईन-ए-अकबरी' आंकड़ों और ऐतिहासिक तथ्योंका भंडार है। इसमें अकबर के शासन-प्रबन्धका विस्तृत विवरण दिया गया है। उपर्युक्त तीनों इतिहासकारोंमें से सबसे प्रमुख इतिहासकार फ़िरिश्ता ने केवल दक्षिणकी दशाका ही वर्णन किया है।

उस युगके प्रसिद्ध इतिहासकार

फ़िरिश्ता

बदायूंनीं

निज़ामुद्दीन

बदायूंनी कट्टर मुसलमान था, इसलिए वह अकबर की नीति और उसके मित्रोंको पसन्द नहीं करता था, इसलिए उसके लेख यद्यपि आलोचनात्मक हैं, तो भी उनमें ग़लत और पक्षपातपूर्ण बातें दी गयी हैं। अकबर के पास एक अच्छा पुस्तकालय भी था जिसमें २४,००० हस्तलिखित ग्रन्थ संगृहीत थे। हिन्दीके प्रसिद्ध कवि « तुलसीदास » अकबर के शासन-कालमें जीवित थे और उन्होंने अपने प्रसिद्ध काव्य-ग्रन्थ 'रामचरितमानस' का प्रणयन इसी समयमें किया। इस कालमे साहित्यकी इतनी प्रगति इसलिए हुई, क्योंकि एक तो अकबर ने उसे उदारतापूर्वक संरक्षण दिया और दूसरे, उसके शासनमें सुख और समृद्धिकी प्रचुरता थी। कहा भी है—'शस्त्रेण रक्षिते राज्ये शास्त्र-चिन्ता प्रवर्तते।'

तुलसीदास

हिन्दू-चित्रकलाने अकबर के हाथों एक नया स्वरूप ग्रहण किया। अकबर ने हिन्दू कलाकारोंसे फ़ारसी चित्रकला-पद्धतिका समावेश करने को कहा। परिणाम यह हुआ कि एक भारतीय-फ़ारसी चित्रशैलीका विकास हुआ, जो शाहजहां के शासन-कालमें अपनी उन्नतिकी चरम सीमा पर पहुंची। उसके स्थापत्य-प्रेमकी गवाही फ़तेहपुर-सीकरी में बनी इमारतें आज तक दे रही हैं। कोई भी दर्शक उनको देखकर प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकता। आगरा के लाल क़िलेमें, जो उस कालके स्थापत्य का एक उत्कृष्ट नमूना है, हिन्दू और मुसलमान शैलीका सुन्दर सम्मिश्रण है। अकबर द्वारा बनवाये गये भवन उसके व्यक्तिगत विचारों और विश्वासोंके जड़ प्रतीक हैं।

चित्रकला और स्थापत्य

अध्याय १२

जहांगीर तथा शाहजहां

[जहांगीर (१६०५-१६२७)]

उसका राज्यारोहण : खुसरो का विद्रोह. अकबर के बाद उसका एक-मात्र जीवित ज्येष्ठ पुत्र सलीम गद्दी पर बैठा और उसने «जहांगीर» की उपाधि धारण की। नये शाहंशाहने दो लोकप्रिय कार्य अपने शासनके प्रारम्भमें ही किए —एक तो उसने मुस्लिम धर्मकी रक्षा करनेका वादा किये और दूसरे उन लोगोंको क्षमा कर दिया जिन्होंने खुसरो का पक्ष लेकर विद्रोहमें उसका साथ दिया था। इन दोनों वादोंको जहांगीर ने क़ायम रखा।

खुसरो का विद्रोह विफल हुआ

खुसरो ने, जिसको गद्दी पर बैठानेके लिए अकबर के जीवन-कालमें ही षडयंत्र हो चुके थे, यह समझकर कि उसका पिता जहांगीर उससे अप्रसन्न होगा, विद्रोह कर दिया। वह आगरा से भाग निकला और उसने लाहौर पर क़ब्ज़ा कर लिया, परन्तु जहांगीर ने तुरन्त उसका पीछा स्वयं किया। कुछ युद्ध होनेके बाद खुसरो पकड़ लिया गया और जहांगीर ने उसे आजन्म क़ैदकी सजा दी। परन्तु उसके अभागे समर्थकोंको उसने बहुत कड़ा दंड दिया। उनमें से बहुतोंको सड़कके दोनों किनारोंके पेड़ों पर लटकाकर फ़ांसी दे दी गयी, ताकि आगेसे विद्रोहियोंको शिक्षा मिल जाय। सिक्ख गुरु अर्जुनदेव को खुसरो को शरण देनेके अपराधमें कड़ाहे के खौलते तेलमें डालकर मार डाला गया। खुसरो १६२२ ई० तक जीवित रहा। उसकी मृत्यु रहस्यमय ढंगसे हुई। बहुत सम्भव है कि खुर्रम (शाहजहां) ने अपनी राहका कांटा हटानेके लिए उसे समाप्त करा दिया हो।

बंगाल में विद्रोह सन् १६१९ में बंगाल में एक अफ़ग़ान-सरदार उस्मानखां के नेतृत्वमें विद्रोह हुआ, परन्तु उस्मान की लड़ाईमें मृत्यु हो गयी, फलतः विद्रोह भी असफल रहा।

मेवाड़ के राजपूतोंके विरुद्ध युद्ध. प्रसिद्ध राणा प्रतापसिंह के पुत्र अमरसिंह ने जहांगीर की अधीनता माननेसे इनकार कर दिया, इसलिए

जहांगीर ने उसके विरुद्ध एकके बाद एक कई बड़ी सेनाएं भेजीं, परन्तु अमरसिंह दबाया न जा सका। अन्तमें शाहज़ादा खुर्रम को भेजा गया। खुर्रम के आक्रमण सफल रहे और राणा को इतना परेशान कर दिया गया कि उसने सन् १६१४ में आत्मसमर्पण कर दिया। उसने जहांगीर की प्रभुता स्वीकार कर ली और शाही फ़ौजमें १,००० घोड़े भेजनेका वादा किया। जहांगीर ने राणा अमरसिंह के साथ सम्मानजनक व्यवहार किया, मेवाड़ का राज्य उसीके पास रहने दिया और शाही दरबारमें हाज़िरी देनेकी पाबन्दी भी उसके लिए न रखी। इसके अतिरिक्त उसके लड़के कर्ण को शाही सेनामें एक अच्छे पद पर नियुक्त कर दिया। जहांगीर ने राणा और उसके लड़केकी पूरी क़दकी मूर्तियां बनवायीं और उन्हें आगरा के दीवान-आम के सामनेवाले बग़ीचेमें स्थापित कर दिया। इस प्रकार जहांगीर ने अपने विरोधियोंका सम्मान करके स्वयंको भी सम्मानित किया।

अमरसिंह द्वारा अधीनता स्वीकार

जहांगीर ने राणा के प्रति बहुत सम्मानजनक व्यवहार किया

दक्षिणकी लड़ाइयां. अपने पिताकी तरह जहांगीर ने भी दक्षिण में अपना प्रभुत्व स्थापित करनेका प्रयत्न किया। उसके पूरे शासन-काल में दक्षिणकी ये लड़ाइयां चलती रहीं, लेकिन उनमें सफलता कभी न मिली। इस असफलताका कारण कुछ तो उसके सेनापतियोंकी आपसी फूट और झगड़े थे, परन्तु मुख्यतः अहमदनगर-राज्यके अबीसीनियन वज़ीर मलिक अम्बर की योग्यता थी। मलिक अम्बर ने सन् १६१० में अहमदनगर पर, जो सन् १६०० में अकबर के हाथमें चला गया था, पुनः अधिकार कर लिया। इसके बाद उसने शाही सेनाको बुरहानपुर में हटने के लिए बाध्य किया और छोटी-छोटी घुड़सवारोंकी टुकड़ियोंसे उस पर आक्रमण भी किया। अन्ततः जहांगीरने शाहज़ादा खुर्रम को दक्षिण में भेजा। उसने अहमदनगर पर क़ब्ज़ा कर लिया, किन्तु दक्षिणमें उसे आगे बढ़नेमें विशेष सफलता नहीं मिली, क्योंकि मृत्यु-पर्यन्त (१६२६) मलिक अम्बरने मुग़लोंकी प्रगति दक्षिणमें न होने दी।

दक्षिणके युद्धोंकी विफलता

मलिक अम्बर ने मुग़ल-फ़ौजका सफलता-पूर्वक सामना किया

कांगड़ा पर विजय. जहांगीर के शासन-कालकी एक उल्लेखनीय घटना यह थी कि सन् १६२० में उसने कांगड़ा के दुर्गको जीतकर पंजाब में मिला लिया। इस क़िले पर अकबर भी क़ब्ज़ा न कर पाया था, इस लिए जहांगीर को अपनी इस सफलता पर बड़ा गर्व था।

क़न्धार हाथसे निकल गया. अकबर के कालमें ही क़न्धार विजित हो चुका था परन्तु ईरानियों ने उसको १६२२ ई० में छीन लिया।

नूरजहां. नूरजहां के साथ जहांगीर का विवाह होना उसके शासन-कालकी एक महत्त्वपूर्ण घटना है, क्योंकि आगे चलकर नूरजहां ही

उसका प्रारम्भिक जीवन

हिन्दुस्तान की वास्तविक शासिका हो गयी थी। यह प्रतिभासम्पन्न स्त्री एक ईरानी शरणार्थीकी लड़की थी। उसके पिताने अकबर के दरबार में शरण ली थी। उसका पहलेका नाम था—मेहरुन्निसा। वह अली कुलीखां उर्फ़ शेर अफ़ग़ान से ब्याही गयी थी शेर अफ़ग़ान जहांगीर के बादशाह होने पर बंगाल के बर्दवान प्रदेशका गवर्नर नियुक्त हुआ था।

शेर अफ़ग़ान के मारे जाने के बाद जहांगीर से उसका विवाह

किसी कारणसे जहांगीर उस पर नाराज़ हो गया और दिल्ली दरबारमें बुला भेजा, परन्तु शेर अफ़ग़ान ने शाही हुक्मको माननेसे इनकार कर दिया। इसी सिलसिलेमें कुछ संघर्ष हो गया, जिसमें वह मारा गया। अब जहांगीर ने उसकी पत्नी मेहरुन्निसा को, जिस पर वह उसी समयसे मुग्ध था जब वह शाही हरममें रहती थी, दिल्ली मंगा लिया। जहांगीर उसके प्रेममें पागल हो गया और उससे शादी करनेकी प्रार्थना की; किन्तु लगभग चार वर्ष तक मेहरुन्निसा जहांगीर का अनुरोध टालती रही, अन्तमें उसने उसकी मलका बनना स्वीकार कर लिया। जहांगीर ने 'नूरजहां' (विश्वकी ज्योति) की उपाधिसे उसे विभूषित किया। तबसे वह जहांगीर की आराध्य देवी बनी रही।*

राजगद्दीके पीछे वह एक बड़ी भारी शक्ति हो गयी

उसका प्रभाव. सम्राज्ञीके पद पर पहुंचकर नूरजहां ने जहांगीर पर असीम प्रभाव प्राप्त कर लिया, राज्यमें उसका प्रभाव सर्वोपरि था। वह दर्शन देनेकी खिड़कीमें बैठकर लोगोंकी अर्जियों पर विचार करती थी। बादशाहके नामके साथ ही उसका नाम भी सिक्कों पर अंकित होने लगा। उसके हाथमें कितनी सत्ता थी, इसका यह एक प्रमाण था। वह लोगोंको दया और उदारता दिलानेमें ही विशेषत: अपने प्रभाव का उपयोग करती थी। दु:खी और पीड़ितोंके लिए वह सबसे बड़ा आश्रय-स्थल हो गयी थी। अपने पति पर उसका प्रभाव अच्छी दिशामें था, वह उसकी निष्ठुरताओं और क्रूरताओं पर नियंत्रण करनेका काम

*अनुवादकीय टिप्पणी. डॉ० बेनीप्रसाद ने यह सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है कि नूरजहां-सम्बन्धित उपर्युक्त विवरण क्षेपक है। उस काल का कोई इतिहासकार—देशी या विदेशी—इस कहानीको नहीं कहता है। यह कहना कि सलीम मेहरुन्निसा को पहलेसे ही चाहता था, ग़लत है। यह भी ठीक नहीं कि जहांगीर ने शेर अफ़ग़ान का क़त्ल करवाया। फिर भी यह मानना पड़ेगा कि कुछ ऐसी बातें हैं जिससे यह प्रगट होता है कि शेर अफ़ग़ान के क़त्लकी कहानीमें कुछ तथ्य अवश्य है, परन्तु निर्णयात्मक रूपसे कोई बात नहीं कही जा सकती (देखिए डॉ० ईश्वरी प्रसाद—मुस्लिम रूल इन इंडिया)।

करती थी। लेकिन उसका राजनीतिक प्रभाव बुरा था। उसने अपने सम्बन्धियोंका भला करनेकी पूरी कोशिश की। राज्यके पैसेसे उसने अपने कई लालची रिश्तेदारोंको धनी हो जानेमें सहायता की। उसके पिता और भाई (आसफ़ख़ां) शाही दरबारमें बड़े प्रभावशाली व्यक्ति हो गये। इस पक्षपात और ख़ुशामदपरस्तीने आपसी ईर्षा-द्वेषको जन्म दिया; परिणाम हुआ कि राज्यमें षड्यंत्र होने लगे, जिन्होंने जहांगीर के शासनके अन्तिम दिनोंको अशान्तिमय बना दिया। शाहजहां और महावतख़ां के विद्रोह उसके षड्यंत्रोंके तात्कालिक परिणाम थे।

उसके प्रभाव का स्वरूप

शाहजहां का विद्रोह. अपने पहले पतिसे उत्पन्न लड़कीका विवाह नूरजहां ने जहांगीर के सबसे छोटे शाहज़ादे शहरयार से कर दिया था। वह यह षड्यंत्र कर रही थी कि किसी तरह उसका दामाद गद्दीका उत्तराधिकारी हो जाय और इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए उसने शाहजहां का मन खुर्रम की ओरसे, जिसकी दक्षिणकी विजयोंसे वह शंकित और ईर्षालु हो उठी थी, खट्टा करना चाहा। यह जानकर कि नूरजहां उसको पदसे हटा देनेके फ़िराक़में है, खुर्रम (शाहजहां) ने विद्रोह कर दिया, परन्तु उसको शाही सेनापति महावतख़ां ने बलूचपुर में हरा दिया और जगह-जगह उसका पीछा करता फिरा। अन्तमें खुर्रम को बंगाल में आश्रय मिला। यहां वह दूसरी बार हराया गया और दक्षिण में भागनेके लिए विवश कर दिया गया। दक्खिनमें वह अपने पुराने शत्रु मलिक अम्बर के साथ मिल गया। सन् १६२५ में शाहजहां ने अपने पिताके सामने आत्मसमर्पण कर दिया और अपने दो पुत्रोंको शाही दरबारमें ज़मानत के तौर पर भेज दिया; साथ ही उसने रोहतास और असीरगढ़ के क़िले भी समर्पित कर दिये।

नूरजहां ने उसको उत्तराधिकार से वंचित करनेका षड्यंत्र किया था, इसलिए वह उत्तेजित होकर विद्रोही हो गया

महावतख़ां का विद्रोह. नूरजहां की ईर्षा-वृत्तिका दूसरा शिकार योग्य सेनापति महावतख़ां हुआ। उसने हालही में दक्षिणमें जो सफलता प्राप्त की थी, उसके कारण वह राज्यका सबसे प्रभावशाली व्यक्ति हो गया था। नूरजहां भला इसको कैसे सहन कर सकती थी! उसने उसको अपमानित करने और उसका प्रभाव नष्ट करने का इरादा किया। महावतख़ांको आत्मरक्षाके लिए विद्रोह करना आवश्यक हो गया। वह इस हद तक गया कि जहांगीर जब काबुल जा रहा था, तब रास्तेमें ही उसे गिरफ़्तार कर लिया। इस अवसर पर नूरजहां ने बड़े साहस और धैर्य का परिचय दिया। अपने पतिको छुड़ानेके लिए उसने स्वयं शाही सेना का नेतृत्व किया, परन्तु इसका कोई परिणाम न हुआ। जब शक्तिसे काम न चला तब उसने युक्तिसे काम लेनेका विचार किया, और बड़ी

विद्रोहका एक कारण नूरजहां का षड्यंत्र भी था

चतुराईसे जहांगीर को क़ैदसे छुड़ा पाई। महावतखां दक्खिन में भाग गया और शाहजहां से जा मिला! शाहजहां ने दुबारा विद्रोह कर दिया था।

जहांगीर की मृत्यु. जहांगीर के अन्तिम दिन दुःखमय और निराशामय बीते। उसका तीसरा लड़का परवेज़ उससे पहले ही मर गया, जब कि बड़ा लड़का शाहजहां विद्रोह किये बैठा था। जहांगीर सन् १६२७ में मर गया। उसका शव लाहौर के एक ख़ूबसूरत मक़बरेमें दफ़ना दिया गया।

उसने अकबर के नमूने पर ही शासन-प्रबन्ध किया

उसके सुधार

जहांगीर का शासन. यद्यपि जहांगीर स्वतंत्र प्रकृतिका व्यक्ति था, परन्तु शासनके मामलेमें उसने अकबर की उदार नीतिका पालन किया। वह सभी धर्मोंके प्रति सहिष्णु था और अपनी समझौतावादी नीतिके कारण राजपूतोंको राजभक्त रखनेमें समर्थ हो सका था। उसने अकबर के शासन-सुधारोंको तो क़ायम रखा ही, कुछ अन्य अच्छे सुधार भी लागू किये, जैसे—वस्तुओंके यातायातमें लगनेवाली चुंगी हटा दी, सैनिकोंको व्यक्तिगत घरोंमें ठहराना बन्द कर दिया, इत्यादि। उसने शराब और तम्बाकू-सेवन पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया। वह अपनी न्यायप्रियताके लिए प्रसिद्ध था। वह जनताकी शिकायतोंको स्वयं सुनता था और उन पर फ़ैसला देता था। उत्तराधिकारका प्रश्न उठने पर ही प्रतिद्वन्द्वी दावेदारोंने विद्रोह किया, अन्यथा उसके शासन-कालमें विद्रोह न हुए। क़न्दहार को खोनेके अतिरिक्त उसने साम्राज्यको अखंड बनाये रखा। जिस बादशाहने शान्तिपूर्वक शासन किया और अपने विस्तृत राज्यको अक्षुण्ण रखा, वह अवश्य ही एक सफल शासक रहा होगा।

स्मिथ ने जहांगीर के शासनको 'गौरवहीन' बताया है, परन्तु तथ्योंको देखने पर उसका औचित्य नहीं ठहरता। यह शब्द उसके व्यक्तिगत चरित्रके लिए कुछ अंशोंमें भले ही लागू होता हो, परन्तु उसके शासन-काल या शासन-प्रबन्धके लिए इसका प्रयोग निरर्थक है।

उसके चरित्र की परस्पर विरोधी बातें

जहांगीर का चरित्र. जहांगीर बहुत दुआ-मनौतियोंके बाद पैदा हुआ था, इसलिए उसका पालन-पोषण बड़े लाड़-प्यारमें हुआ, फलतः वह युवावस्थामें बिगड़ गया। उसमें ज़िद्द, ऐयाशी, लापरवाही और सुस्ती आदि दुर्गुण आ गये। वह निर्दय था, परन्तु प्रतिशोधात्मक न था। अगर उसकी इच्छाके अनुकूल काम होता चला जाय तो वह बहुत अच्छे स्वभावका दिखाई देता था, परन्तु जहां उसकी इच्छाके विरुद्ध कोई काम हुआ कि उसका क्रोध भड़क उठता था। उसने अपना जो संस्मरण

लिखा है, जिसमें उसके शासनके १६ वर्षोंका हाल आ गया है, उसमें उसने मार्मिक आत्माभिव्यक्ति की है। उन संस्मरणोंसे पता चलता है कि वह दो परस्पर विरोधी वृत्तियोंका व्यक्ति था; क्रूरता और कोमलता, पशुता तथा सभ्यता और न्यायप्रियता तथा झक्कीपनका वह अनोखा सम्मिश्रण था। उसमें प्रकृति-प्रदत्त अनेक गुण थे, परन्तु वह अत्यधिक मदिरा-सेवी था, इसलिए वे गुण बहुत कुछ कुंठित हो गए थे। उसकी पुस्तकोंमें प्राकृतिक वस्तुओंका मार्मिक चित्रण मिलता है। चित्रकला का वह विशेषज्ञ पारखी था, स्थापत्यमें भी उसकी रुचि थी और नृत्य-संगीतका भी वह आनन्द ले सकता था। कलाकारोंको वह खुले हाथ सहायता देता था। प्राकृतिक दृश्योंके प्रति वह बहुत अनुभूतिशील था और सुन्दर दृश्योंका बड़ा प्रशंसक था। उसको 'प्रतिभाशील मद्यप' कहा जाता है, जो बहुत उचित जान पड़ता है।

उसके संस्मरण

उसकी सुसंस्कृत रुचि

उसका मजहब. जहांगीर का झुकाव किसी धर्म-विशेषकी ओर न था और इसीलिए सर टॉमस रो ने अनीश्वरवादी कहकर उसकी निन्दा की है। परन्तु ऐसी बात नहीं थी, क्योंकि जहांगीर ईश्वर पर विश्वास करता था, हालांकि वह उसके किसी एक स्वरूपका भक्त न था। स्मिथ कहता है कि उसके धार्मिक विचार अस्पष्ट ईश्वरवादके थे। वे या तो सूफ़ी मतसे मिलते-जुलते थे, या कतिपय हिन्दू सन्तोंके विचारोंसे। वह सभी धर्मोंके प्रति सहिष्णु और उदार था। अपने पिताकी तरह वह भी दार्शनिक शास्त्रार्थ सुननेमें रस लेता था।

जहांगीर और ईसाई (जेसुइट्स). राजगद्दी पर बैठते समय पहले-पहल जहांगीर ने जेसुइट पादरियोंके प्रति कुछ रुखाई दिखाई, ताकि मुसलमान खुश हो जायं। परन्तु वास्तवमें वह उनके प्रति बहुत आकर्षित था। गद्दी पर बैठनेके एक साल बाद ही उसने उनका स्वागत किया और कृपा के बोझसे उन्हें लाद दिया; इस हद तक वह गया कि उसने राज्य के खजानेसे पादरियोंको आर्थिक वृत्ति दी, गिरजाघरोंकी सहायता की और जो लोग ईसाई धर्ममें आ गए थे, उनकी भी मदद की। ईसाइयोंके चित्रोंके प्रति भी उसने रुचि प्रदर्शित की और कलाकारोंको आज्ञा दी कि राजमहलको ईसाई सन्तोंके चित्रों और प्रतिमाओंसे सुसज्जित किया जाय। स्मिथ का कहना है कि जहांगीर ने ईसाइयों पर इतनी कृपा इसलिए दिखाई, क्योंकि वह पुर्तगीजोंकी सहायता पाना और उनसे व्यापार-सम्बन्ध स्थापित करना चाहता था।

जहांगीर ने ईसाई पादरियोंके प्रति बहुत कृपा प्रदर्शित की

योरोपियनोंके साथ उसका सम्बन्ध. पुर्तगीज और अंग्रेज दोनों प्रतिद्वन्द्वी थे और दोनों अपने लिए जहांगीर से व्यापार-सम्बन्धी अच्छी

से अच्छी सुविधाएं और रियायतें प्राप्त करनेका प्रयत्न कर रहे थे, इसलिए दोनोंसे ही जहांगीर का सम्पर्क बहुत बढ़ा।

प्रारम्भमें जहांगीर पुर्तगालियोंके प्रति विशेष कृपालु था

(१) **पुर्तगालियोंके साथ सम्बन्ध.** प्रारम्भमें जहांगीर का पुर्तगीजों से अच्छा सम्बन्ध था, उनके पादरियोंके प्रति उसने बहुत कृपा दिखायी थी। पुर्तगालियोंका बादशाह पर इतना अधिक प्रभाव था कि उनके कहनेसे उसने अंग्रेजोंको दी हुई सुविधाओंको, जो कैप्टन हॉकिन्स के कारण प्राप्त हुई थीं, छीन लिया। हॉकिन्स एक इंगलिश जहाजी बेड़ेका कप्तान था, जो राजदरबारमें आया था और जिसने जहांगीर से सुन्दर सम्बन्ध स्थापित कर लिया था। लेकिन पुर्तगीजोंका यह प्रभाव अधिक दिनों तक न रहा। सन् १६१३ में उन्होंने चार शाही जहाजोंको पकड़ लिया और उनका सामान लूट लिया। यह समाचार पाकर जहांगीर ने पुर्तगीजोंके विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया और डामन पर आक्रमण कर दिया। मुग़ल-साम्राज्यमें रहनेवाले सभी पुर्तगाली बन्दी बना लिए गए, ईसाई धर्मका सार्वजनिक प्रचार रोक दिया गया और गिरजाघरोंमें ताला डाल दिया गया। जिन दिनों जहांगीर पुर्तगीजों पर इस तरह रुष्ट था, उन्हीं दिनों इंगलैंड के बादशाह जेम्स प्रथमका पत्र लेकर विलियम एडवर्ड्स् नामक एक अंग्रेज-दूत जहांगीर के दरबारमें आया। जहांगीर ने एडवर्ड्स् का अच्छा स्वागत किया, क्योंकि उसकी मंशा थी कि पुर्तगीजों और अंग्रेजोंको हमेशा एक-दूसरेके विरुद्ध रखा जाय।

पुर्तगीजोंसे युद्ध

(२) **अंग्रेजोंके साथ सम्बन्ध.** जहांगीर के शासन-कालमें ही अंग्रेजोंने पूर्वी देशोंके साथ अपना प्रारम्भिक व्यापार बढ़ानेका वास्तविक प्रयत्न किया। हॉकिन्स नामक एक अंग्रेज समुद्री कप्तान बादशाह जेम्स प्रथमका पत्र लेकर जहांगीर के पास आया और कुछ व्यापारिक सुविधाएं देनेके लिए प्रार्थना की। सम्राट् ने उसके साथ अच्छा बर्ताव किया परन्तु उसने जो रियायतें एक बार दीं, उन्हें पुर्तगीजोंके षड्यंत्रके कारण पुनः लौटा लिया। दूसरा अंग्रेज-दूत विलियम एडवर्ड्स् कुछ दिनों बाद जेम्स प्रथम का पत्र लेकर आया। उसकी भी जहांगीर ने आवभगत की। हॉकिन्स और एडवर्ड्स् द्वारा सम्पर्क स्थापित कर लेनेके बाद जेम्स प्रथम ने विधिवत् «सर टामस रो» को मुग़ल-दरबारमें राजदूत बनाकर भेजा। वह चतुर राजनीतिज्ञ था, उसने पुर्तगीजोंकी चाल न चलने दी। यद्यपि वह कोई नियमित सन्धि करा पानेमें असफल रहा, परन्तु उसने इतनी व्यापारिक सुविधाएं प्राप्त कर लीं कि ईस्ट इंडिया कम्पनीको व्यापारके लिए एक सुदृढ़ आधार मिल गया। सूरत में इंगलिश फ़ैक्टरीकी नींव भी मजबूत हो गयी और जहांगीर ने उसके लिए मंजूरी भी दे दी।

हॉकिन्स और एडवर्ड्स् के मिशन

सर टॉमस रो तथा हॉकिन्स द्वारा स्थिति का वर्णन

'रो' और हॉकिन्स द्वारा भारत की स्थितिका वर्णन. सर टॉमस रो ने अपने 'जरनल' में मुख्यत: जहांगीर के दरबार और उस समयके राजनीतिक षड्यन्त्रोंका वर्णन किया है, परन्तु देशकी सामाजिक तथा आर्थिक स्थितिके सम्बन्धमें उसने बहुत कम लिखा है। फिर भी उसके लेखोंसे जहांगीर के शासन-कालमें भारतकी दशा की झांकी मिल जाती है। 'रो' लिखता है कि बन्दरगाहों पर व्यापारियोंके साथ बहुत ज्यादती की जाती थी। वे मनमाने दाम देकर माल पर क़ब्ज़ा कर लेते थे। प्रान्तीय गवर्नर अन्यायी और लोभी अवश्य थे, परन्तु विदेशियों के साथ उनका व्यवहार सहानुभूतिपूर्ण था। दक्षिणके नगरोंकी दशा देखनेमें ऐसी लगती थी मानो उनकी उपेक्षा हो रही हो। रो ने शाही दरबारकी शान-शौकत और सामन्तोंकी सभ्यता की बड़ी प्रशंसा की है, परन्तु लिखा है कि एक वर्गके रूपमें सामन्त-वर्ग बहुत ही असैद्धान्तिक तथा भ्रष्टाचारी था। उच्चाधिकारियोंका वेतन अनावश्यकरूप से अधिक था। जहांगीर बहुत शराब पीता था, परन्तु दिनमें किसीने उसे शराब पीते न देखा था। दैनिक कार्य-क्रमके समय तो वह किसी के मुंहसे मदिरा की गन्ध भी सहन नहीं कर सकता था और ऐसे आदमी को कड़ी सजा देता था। 'रो' ने आगे लिखा है कि जहांगीर अपने क्रोधी स्वभावके बावजूद गुणवान् और भले स्वभावका व्यक्ति था। शाहजादा खुर्रमके सम्बन्धमें उसके विचार अच्छे नहीं हैं, उसे बहुत रूखा और सख्त उसने बताया है। उसने लिखा है कि 'खुर्रम ऐसा व्यक्ति था जिसकी कुछ लोग खुशामद करते थे, कुछ उससे ईर्षा करते थे, परन्तु प्यार उसे कोई भी न करता था।' खुसरो की उसने जी खोलकर प्रशंसा की है।

ललित कला की दशा

ललित कला की जहांगीर के शासन-कालमें उन्नति हो रही थी। 'रो' ने एक इगलिश चित्र जहांगीर को दिया, जिसकी प्रतिलिपि एक भारतीय चित्रकारने तुरन्त करके दे दी। दोनोंमें इतनी अधिक अनुरूपता थी कि टॉमस को मूल प्रति पहचाननेमें बड़ी दिक़्क़त हुई।

«हॉकिन्स» ने अधिकतर जहांगीर के दैनिक जीवनकी विशेषताओं का ही वर्णन किया है। वह कहता है कि बादशाह लोकप्रिय न था और क्रूर था। जहांगीर बहुधा कड़ी सजाएं देता था और निर्दय खेल देखना पसन्द करता था, जैसे आदमी और जंगली जानवर की लड़ाई। वह जनता की शिकायतों और फ़रियादोंको स्वयं सुनता था। वह अत्यधिक शराब पीता था। हॉकिन्स भी कभी-कभी शाही दावतोंमें शरीक हुआ करता था।

शाहजहां (१६२७-१६५८)

शाहजहांके छोटे भाई ने उत्तराधिकारी बननेका प्रयत्न किया परन्तु वह हरा दिया गया और मार डाला गया

उत्तराधिकारके लिए संघर्ष. जहांगीरके मरनेके बाद उसके दो पुत्रों—शाहजहां और उसके छोटे भाई शहरयार—के बीच उत्तराधिकारके प्रश्न पर संघर्ष हो गया। शहरयार की मदद उसकी सास नूरजहां पर रही थी, इसलिए उसने बादशाह होनेकी घोषणा कर दी। शाहजहां उन दिनों दक्खिनमें था, किन्तु उसके श्वसुर आसफ़खां ने उसके हितोंकी रक्षा की। उसने शाहजहां के पास शीघ्रता से समाचार भेजा और इस बीच खुसरो के लड़के दावरबख्श को गद्दी पर बैठा दिया। इसके बाद उसने शहरयार पर हमला किया और उसे बन्दी बना लिया। शाहजहां ने समाचार पाते ही दक्षिणसे कूच किया और इसके पहिले ही शहरयार और अपने कई भतीजोंके मारने का आदेश भिजवा दिया, ताकि दिल्ली पहुंचने पर उसका कोई प्रतिद्वन्दी जीवित न मिले। इस प्रकार अपने वर्तमान और भावी प्रतिद्वन्दियोको रास्तेसे हटाकर शाहजहां सन् १६२८ में गद्दी पर बैठा। नियति ने भविष्यमें शाहजहां के साथ भी वही सलूक किया जो उसने गद्दी पानेके लिए दूसरोके साथ किया था। अभागे दावरबख्श को ईरान भाग जाने दिया गया।

जुझार सिंह का विद्रोह

बग़ावतें. १. शाहजहांके शासनके प्रथम वर्षमें ही बुन्देलखंडमें एक विद्रोह हुआ, जिसका नेतृत्व बुन्देला राजपूतोंके नेता जुझारसिंह ने किया। थोड़े दिनोके लिए वह विद्रोही सरदार दबा दिया गया, परन्तु शीघ्र ही वह पुन: विद्रोह कर उठा। अन्तमें एक युद्धमें वह मार डाला गया।

खानजहां लोदी की बग़ावत

२. उसके शासनके दूसरे वर्षमें जो विद्रोह हुआ, उसने उसकी सत्ता को एक प्रकारसे चुनौती दी। इस विद्रोहका नेता एक अफ़ग़ान-सरदार खानजहां लोदी था, जिसने अहमदनगर के सुल्तानसे सहयोग करके शाही सेनाको बड़ी क्षति पहुंचायी। अन्तमें वह भी सन् १६३१ में मार डाला गया।

हुगली से पुर्त्तगीज़ोंका निष्कासन. अकबर और जहांगीर दोनोंने पुर्त्तगीज़ो पर अनुकम्पा दिखायी थी और उन्हें हुगली में बसने और एक क़िला बनानेकी आज्ञा दे दी गयी थी, किन्तु उन्होंने बड़े लज्जाजनक ढंगसे अपनी व्यापारिक सुविधाओंका अनुचित लाभ उठाया और समुद्री डकैती तथा दासोंका व्यापार करके उन्होंने राज्यके लिए एक परेशानी पैदा कर दी। वे बच्चोंका अपहरण कर लेते थे और उन्हें पाल-पोस कर या तो ईसाई बना लेते थे, या योरोपमें दास बना कर भेज देते थे। इन

ग़ैरक़ानूनी कामोंके अलावा उन्होंने एक सबसे बड़ी ग़लती यह की कि मुमताजमहल की दो बादियोंको नज़रबन्द कर लिया। शाहजहां इस पर बहुत नाराज़ हुआ और उसने उसके विरुद्ध कड़ी कारवाई करनेका निश्चय किया। उसने बंगाल के गवर्नर क़ासिमखां को आज्ञा दी कि इन अनपेक्षित विदेशियोंको प्रान्तसे बाहर निकाल दिया जाय। सन् १६३२ में क़ासिमने हुगली पर घेरा डाल दिया, किन्तु पुर्तगालियोंने तीन महीने तक बड़ी वीरतासे उसकी रक्षा की। बादमें उनकी सारी सेना या तो मारी गई या नदीमें डुबा दी गई। बहुतसे पुर्तगाली बन्दी बनाकर आगरा भेजे गये, जहां उनके साथ बड़ी निर्दयताका व्यवहार किया गया।

परिस्थितियों ने उसके आक्रमणको सफल बना दिया

शाहजहां की दक्षिण-नीति. दक्षिणमें मुग़ल-साम्राज्यकी सीमाके अत्यन्त निकट ही स्वतन्त्र राज्योंका रहना दिल्ली के बादशाहोंकी आंखोंमें खटकता रहता था। शाहजहां अपने पूर्ववर्ती सम्राटोंकी तरह दक्षिणके सुल्तानोंको अनधिकारी शासक समझता था और उन्हे दंड देना चाहता था। दक्षिण पर आक्रमण करनेकी अपनी नीतिमें वह अकबर और जहांगीर दोनोंसे अधिक सफल रहा। समय भी उसके अनुकूल था। एक भयंकर अकालने दक्षिणको उजाड़ दिया था। अहमदनगर का योग्य मंत्री मलिक अम्बर, जिसने सफलतापूर्वक मुग़ल-आक्रमणका सामना किया था, मर चुका था। उसका लड़का फ़तेहखां, जो उसके बाद वज़ीर बना था, बहुत धूर्त और विश्वासघाती था और इसलिए अहमदनगर के सुल्तानके लिए वह शत्रुसे भी अधिक खतरनाक सिद्ध हुआ।

अहमदनगर के मंत्री फ़तेहखां का विश्वासघात

अहमदनगर का पतन. अहमदनगर के सुल्तानने खानजहाँ लोदी को जो सहायता दी, उससे शाहजहां को अहमदनगर के विरुद्ध हथियार उठाने का अच्छा बहाना मिल गया। सन् १६३० में उसकी फ़ौजोंने परेन्दा पर घेरा डाला, परन्तु उसको लेनेमें वह असफल रहीं, लेकिन अहमदनगर के वज़ीरके विश्वासघातके कारण मुग़लोंका सितारा चमक उठा। फ़तेहखां ने अपने मालिकको मारकर उसके स्थान पर शाही खानदानके एक लड़के को गद्दी पर बैठा दिया और मुग़लोंसे जा मिला, परन्तु वह शीघ्र ही शाहजहां से भी घात कर बैठा। उसने दौलताबाद के क़िलेकी रक्षा की, लेकिन मुग़ल-सेनाके दबाव और एक भारी घूसके लालचके कारण उस ने आत्मसमर्पण कर दिया। दौलताबाद के पतनसे अहमदनगर के भाग्यका निपटारा हो गया। वह निर्लज्ज, विश्वासघाती फ़तेहखां तो मुग़लोंका नौकर हो गया और कठपुतली सुल्तान क़ैदी बनाकर ग्वालियर भेज दिया गया। इस प्रकार निज़ामशाही राजवंश और अहमदनगर की स्वतंत्रता का सन् १६३२ में अन्त हो गया। शिवाजी के पिता शाहजी भोंसला ने

शाहजी भोंसला ने निज़ामशाही राजवंशको पुनर्स्थापित करनेका व्यर्थ प्रयत्न किया

कुछ समयके लिए निज़ामशाही वंशको पुनर्स्थापित करनेका प्रयत्न किया और शाही खानदानके एक लड़केको गद्दी पर बैठा दिया, परन्तु उनका प्रयत्न असफल रहा और उन्होंने शाहजहां के सामने आत्मसमर्पण कर दिया। सन् १६३६ में अहमदनगर राज्यका नाम-निशान मिट गया —उस राज्यको शाहजहां और बीजापुर के सुल्तान आदिलशाह ने आपस में बांट लिया।

बीजापुर के विरुद्ध आक्रमण

दक्षिणमें अन्य आक्रमण. अहमदनगर को अधीन करनेके बाद शाहजहां ने गोलकुंडा और बीजापुर के सुल्तानोंकी ओर अपना ध्यान दिया। उसने उन्हें लिखित आदेश दिया कि वे मुग़ल-सम्राट्की अधीनता स्वीकार करें, टैक्स दें और शाहजी भोंसला को मदद न करें। गोलकुंडा का सुल्तान इस फ़रमानसे इतना आतंकित हो गया कि उसने सिर झुका कर सारी आज्ञाएं मान लीं, परन्तु बीजापुर के सुल्तान आदिलशाह ने ऊपरी तौर पर अधीनता स्वीकार करनेका नाटक करते हुए भी भीतर-ही भीतर मुग़ल-आक्रमणका सामना करनेकी तैयारी कर ली। शाहजहां ने बीजापुर राज्यके प्रदेशोंको तहस-नहस कर डाला, परन्तु राजधानी न ले सका।

बीजापुर के साथ सन्धि

आदिलशाह भी लड़ते-लड़ते इतना कमज़ोर हो गया और उसकी सल्तनत इतनी कम हो गई कि उसे शाहजहां के साथ विवश होकर सन्धि करनी पड़ी। सन्धिकी शर्तोंके अनुसार उसने मुग़ल-सम्राट्का प्रभुत्व स्वीकार किया, बीस लाख रुपया नज़राना दिया और शाहजी भोंसला को सहायता न करनेका वचन दिया। इसके बदलेमे शाहजहां ने उसे अहमदनगर-राज्य का आधा साझीदार बना दिया। अहमदनगर का बँटवारा उसके और शाहजहां के बीच सन् १६३६ ई० में पूरा हो गया।

शाहजहां की मध्य एशिया-सम्बन्धी नीति

मध्य एशिया पर विजय. शाहजहां ने अपने साम्राज्यका विस्तार बल्ख और बदख़्शां तक करनेका निश्चय किया, क्योंकि वह प्रदेश प्रारम्भिक मुग़लोंके गौरवपूर्ण इतिहाससे सम्बन्धित था। उसने अपने पुत्र मुराद और क़न्दहार के गवर्नर अली मरदानखां के नेतृत्वमें एक सेना भेजी। अली मरदानखां पहले ईरान के शाह की ओरसे कन्दहार का गवर्नर नियुक्त था, परन्तु उसने धोखा दिया और मुग़लोंकी नौकरी स्वीकार कर ली। यह आक्रमण सफल रहा और बल्ख तथा बदख़्शां दोनों पर मुग़ल फ़ौजों ने क़ब्ज़ा कर लिया। लेकिन शाहज़ादा मुराद शीघ्र ही बुला लिया गया, क्योंकि उसने अनुशासन भंग किया था। उस के स्थान पर औरंगज़ेब भेजा गया; परन्तु वह असफल रहा और उसको सन् १६४७ में बल्ख़ खाली करने पर मजबूर होना पड़ा।

क़न्दहार हाथसे निकल गया. ईरानियोंने जहाँगीर के शासन-काल

में क़न्दहार पर अधिकार कर लिया था, परन्तु उसके गवर्नर अली मरदानखां ने सन् १६३८ में उसे पुनः शाहजहां को सौंप दिया था और स्वयं मुगलोकी सेनामे एक उच्च पद पर नियत हो गया था। सन् १६४८ ई० में ईरानियोंने क़न्दहार पर आक्रमण करके उसे ले लिया। औरंगज़ेब को क़न्दहार को विजय करनेके लिए भेजा गया, किन्तु वह असफल रहा (१६४९)। शाहजहां ने सन् १६५२ और १६५३ में क़न्दहार लेनेका फिर प्रयत्न किया, किन्तु परिणाममें निराशाजनक असफलता ही मिली। अन्तिम आक्रमणका नेतृत्व शाहज़ादा दारा ने किया था।

क़न्दहार पर तीन बार घेरा डाला गया, लेकिन असफलता ही हाथ लगी

औरंगज़ेब : दक्षिणके वाइसरॉय के रूपमें. बीजापुर के सुल्तानको सुलह करने पर विवश करनेके बाद शाहजहां ने औरंगज़ेब को दक्षिण का गवर्नर नियुक्त किया।

औरंगज़ेब पहिली बार सन् १६३६ से १६४४ तक, ८ वर्ष तक दक्षिण, का गवर्नर रहा। यह समय छोटी-छोटी लड़ाइयोंमें ही बीता। उसने नासिक के निकटवर्ती बगलानाको जीत लिया और शाहजी को घुटने टेकने पर विवश किया। इसके बाद उसे दक्षिणसे बुलाकर क़न्दहार पर आक्रमण करनेके लिए भेज दिया गया, किन्तु वह पुनः सन् १६५४ में दक्षिणका वाइसरॉय होकर आ गया। दूसरी बार वाइसरॉय बनने पर वह एक अच्छा शासक सिद्ध हुआ। काफ़ी लम्बे समय तक कुशासन और लड़ाइयां चलते रहनेके कारण खेतीकी दशा बहुत गिर गई थी। औरंगज़ेब ने पहिले उसे उन्नत करनेकी चेष्टा की। एक योग्य माल-अफ़सर मुर्शीदकुलीखां के सहयोगसे उसने टोडरमल की पद्धति पर दक्षिणकी ज़मीनकी पैमाइश और बन्दोबस्त कराया। किसानोंकी बीज तथा खेती के औज़ार आदि खरीदनेके लिए राज्यकी ओरसे कुछ आर्थिक सहायता भी की गई।

औरंगज़ेब ने दक्षिणकी आर्थिक स्थिति सुधारनेकी दिशामें बड़ा काम किया

औरंगज़ेब की आक्रमणात्मक नीति. औरंगज़ेब ने अपनी सारी शक्ति भीतरी प्रबन्धमें ही नहीं उलझा दी, उसका तो मुख्य उद्देश्य था गोलकुंडा और बीजापुर को छीनना। उनकी धन-सम्पत्ति जहां उसके लालचको बढ़ाती थीं, वहां उनके सुल्तानोंका शिया-मतावलम्बी होना उसके धार्मिक कट्टरपनको भड़काता था। मीर जुमला नामक एक ईरानी उसके इन कामोमें सहायक था। यह मीर जुमला पहिले गोलकुंडाका वज़ीर था, परन्तु उसकी महत्त्वाकांक्षा इतने तक ही सीमित न थी, वह अपने लिए एक स्वतंत्र राज्यकी सृष्टि करना चाहता था। इस उद्देश्यसे उसने कर्नाटक में सुल्तानकी सलाह लिए बिना ही शासन-प्रबन्ध करना शुरू किया। इससे उसके क़ुतुबशाही सुल्तानको द्वेष उत्पन्न हुआ. उसने

गोलकुंडा और बीजापुर पर उसकी कड़ी नज़र

उसे मंत्रिपदसे अलग कर दिया। मीर जुमला ने अपनी रक्षा करनेके लिए शाहजहां की सहायता मांगी। अन्ततः वह अपने स्वामीसे विश्वासघात कर बैठा और उसने मुग़लोंकी सेवा स्वीकार कर ली।

मीर जुमला के भड़काने पर गोलकुंडा पर अकारण ही आक्रमण

मीर जुमला की शिकायतोंकी आड़ लेकर औरंगजेब ने गोलकुंडा पर आक्रमण कर दिया और नगर पर घेरा डाल दिया। वह नगरको प्रायः ले ही चुका था कि उसके पिताने लड़ाई बन्द करनेका आदेश दिया। गोलकुंडा के सुल्ताननने काफ़ी नक़द हरजाना और एक ज़िला देनेका वादा करके किसी तरह अपनी जान बचाई। उसने अपनी लड़कीका विवाह औरंगजेब के लड़के मुहम्मद सुल्तानसे करने और उसे ही अपना उत्तराधिकारी बनानेका भी वादा किया (१६५६)। इसके बाद औरंगजेब ने

बीजापुर पर आक्रमण

मीर जुमला की मददसे बीजापुर पर आक्रमण किया, किन्तु इस बार भी शाहजहां ने बीचमें पड़कर युद्ध रोक दिया। बीजापुर के सुल्ताननने काफ़ी हरजाना देनेका वादा करके और बीदर, कल्याणी तथा परेन्दा भेंट करके किसी तरह समझौता किया। इसके बाद औरंगजेब का विचार शिवाजी पर आक्रमण करनेका था, परन्तु शाहजहां की खतरनाक बीमारीका समाचार सुनकर उसे उत्तरकी ओर रवाना होना पड़ा।

शाहजहां की बीमारी: उसके लड़कों में गृहयुद्ध सन् १६५७ में शाहजहां बहुत ज़ोरसे बीमार पड़ा। चूंकि मुग़ल-राजवंशमें उत्तराधिकार का कोई निश्चित नियम न था, इसलिए उसकी बीमारी उसके चारों लड़कोंके बीच गृहयुद्ध होनेकी सूचना थी। शाहजहां दाराशिकोह को गद्दी पर बैठाना चाहता था और इसीलिए उसने जब कि अपने अन्य लड़कोंको दूरस्थ प्रान्तोंका वाइसरॉय नियुक्त किया था, दारा को अपने पास आगरा में रखकर केन्द्रीय शासनकी शिक्षा दे रहा था। दारा स्पष्टवादी, उदार, धार्मिक विचारोंका अत्यन्त गुणसम्पन्न, परन्तु उद्दंड और अदूरदर्शी था। दूसरा लड़का शाहज़ादा शुजा बंगाल का वाइसरॉय था। वह अच्छा योद्धा था, परन्तु हदसे ज़्यादा विलासप्रिय था। तीसरा लड़का औरंगजेब दक्षिणका वाइसरॉय था। वह कट्टर मुसलमान और अपने सब भाइयोंसे अधिक चालाक तथा परिश्रमी था। सबसे छोटा लड़का मुराद बहादुर तो था, परन्तु मूर्ख था। वह शराब पीनेका आदी था। इन सभी लड़कोंने अपने लिए गद्दी हथिया लेनेकी कोशिश की। सभी किसी-न-किसी प्रान्तके गवर्नर थे, अतः साधन-सम्पन्न थे ही। यह स्पष्ट दीख गया कि इस गृहयुद्धका परिणाम बड़ा भयंकर होगा।

सबसे पहिले शुजा आगे बढ़ा। उसने अपनेको सम्राट् घोषित करके अपने नामके सिक्के तक ढलवा लिए और आगरे की ओर बढ़ा, परन्तु

दारा के लड़के सुलेमानशिकोह ने उसे बनारस के निकट हरा दिया और बंगाल की ओर खदेड़ दिया। इसी बीच मुराद ने भी अपनेको बादशाह घोषित कर दिया था और अपना खज़ाना बढ़ानेके लिए सूरत को लूट लिया था। औरंगज़ेब बड़ी सतर्कतासे आगे बढ़ा। वह इतना चालाक था कि उसने अकेले बादशाह बननेका ऐलान करना ठीक न समझा। वह मुराद की सैनिक सहायता प्राप्त करना चाहता था। रास्तेमें उसने मुराद से भेंट की और उसको यह झांसा दिया कि वह स्वयं राज्य नहीं चाहता, वह तो केवल उसकी सहायता करके उसे गद्दी पर बैठाना चाहता है। दोनों भाइयोंकी सम्मिलित सेनाओंने शाही सेनाका सामना किया, जिसका नेतृत्व जसवन्तसिंह कर रहा था। उज्जैन के निकट «धरमट» में शाही सेना हरा दी गयी। इसके बाद दारा ने स्वयं सेनापतित्व ग्रहण किया और आगरा के निकट «सामगढ़» में अपने भाइयोंकी सेनाको रोका। भयंकर युद्ध हुआ और दोनों पक्षोंने उसमें वीरता दिखायी, परन्तु अन्तमें दारा शिकोह हार गया और उसे अपने प्राण बचानेके लिए भागना पड़ा (१६५८)। सामूगढ की लड़ाईने उत्तराधिकारके युद्धका निर्णय कर दिया। औरंगज़ेब ने अपने सबसे बड़े शत्रु को हरा दिया था, उसके दूसरे भाई तो उसकी चालाकी और चालबाज़ीके सामने कोई गिनती न रखते थे।

दाराशिकोह के लड़केने शुजा को हरा दिया

मुराद और औरंगज़ेब में समझौता

औरंगजेब ने गद्दी पा ली. औरंगजेब का अगला क़दम हुआ आगरे पर अधिकार करना, जहां उसने अपने पिता को बन्दी बना लिया। शाहजहां को इस तरह नज़रबन्द करके औरंगजेब और मुराद दारा की तलाशमें आगे बढ़े। मुरादको शक न हो, इसलिए औरंगज़ेब ने शुरूसे आखिर तक मुरादके प्रति बड़ा आदर प्रदर्शित किया। जब उपयुक्त अवसर आया, तब उसने मुराद की सेना को घूस देकर तथा अच्छे पदों का लालच देकर अपनी ओर फोड़ लिया और मुराद को एक दिन खूब शराब पिलाकर बेहोशीमें गिरफ्तार कर लिया। इसके बाद उसने अपने को बादशाह ऐलान कर दिया और अपने प्रतिद्वन्द्वियोंका सफ़ाया करने की कोशिश की। इस प्रकार शाहजहां केशासनका गौरवहीन अन्त हुआ।

शाहजहां बन्दी बना लिया गया

मुराद बन्दी बना लिया गया

शाहजहां की मृत्यु. बन्दी-अवस्थामें शाहजहां ८ वर्ष तक जीवित रहा। नज़रबन्दीके दिनोंमें उसके साथ औरंगज़ेब ने बहुत ओछा व्यवहार किया। शाहजहां का देहान्त सन् १६६६ में हो गया।

शाहजहां का शासन. कुल मिलाकर शाहजहां का शासन दृढ़ और अच्छा था।। मुख्यत: उसने अकबर की प्रगतिशील नीतिका पालन किया हालांकि वह धार्मिक मामलोंमें उसकी तरह उदार और सहनशील न था।

उसने अकबर की शासन-पद्धतिका अनुकरण किया

शाहजहां ने हिन्दुओंको नये मन्दिर बनवानेकी इजाजत न दी और जो बन रहे थे, उनको गिरवा दिया। उसने ईसाइयोंको भी दंडित किया परन्तु उसका क्रोध विशेषत: उनके दास-व्यापार करने के कारण था। फिर भी वह धर्मको राजनीति पर हावी होने नहीं देता था। उसके कई सेनापति हिन्दू थे और ईसाई मिशनरियोंका अभी तक आगरा में स्वागत होता था। उसके शासन-प्रबन्धकी अच्छाईका एक यही प्रमाण था कि उसके शासन-कालमें एक-दो छोटे विद्रोहोंके अतिरिक्त और कोई विद्रोह न हुए। फ्रांसीसी यात्री «टैवर्नियर» ने लिखा है कि शाहजहां का शासन अपने पूर्वजोंके समान ही था, परन्तु नागरिक शासनमें बड़ी कड़ाईसे काम लिया जाता था। तत्कालीन इतिहासकार «खाफ़ीखां» ने भी शाहजहां के अच्छे शासन प्रबन्धकी प्रशंसा की है। उसका समर्थन इटालियन यात्री «मनूची» के लेखोंसे भी होता है। वह लिखता है कि शाहजहां 'बड़ी योग्यता से' शासन करता था और सरकारी अफ़सरोंको ग़लती करने पर कड़ी सजा दी जाती थी। अंग्रेज यात्री «पीटर मुंडी» ने कहा है कि हरेक बड़े शहरके बाहर लकड़ीके ऊंचे खम्भों पर अपराधियोंके सिर टंगे हुए देखे जा सकते थे। इसमें संदेह नहीं कि इस तरहके कड़े दंड लोगोंको अपराध करनेसे रोकनेमें प्रभावकारी सिद्ध होते थे। यद्यपि उसका शासन अच्छा था परन्तु एक निरंकुश राजशाहीके भीतरी दुर्गुण उसमें भी उपस्थित थे, उदाहरणके लिए प्रान्तीय गवर्नरों द्वारा लगाये मनमाने टैक्स और किए जाने वाले अत्याचार। शाहजहां अफ़सरोंका चुनाव करनेमें उनकी योग्यता का ही मुख्यत: ध्यान रखता था। उसके प्रधान मंत्री सादुल्लाखां के बारे में कहा जाता है कि उसके समान प्रधान मंत्री भारतमें दूसरा नहीं हुआ। मुर्शीदकुलीखां ने दक्षिणमें टोडरमलके तरीक़े पर बन्दोबस्त करके वहां की आर्थिक स्थितिको बहुत कुछ ठीक किया।

उसके शासन के प्रति विदेशियोंकी सम्मति

टैवर्नियर

मनूची

पीटर मुंडी

योग्य अफ़सरों की नियुक्ति

स्मिथ के मतकी आलोचना. स्मिथ ने शाहजहां के शासन-प्रबन्ध की जो आलोचना की, वह बहुत कड़ी हो गयी है। शाहजहां द्वारा दिये जानेवाले निर्दय दंडोंके विषयमें वह कहता है कि 'शाहजहां का न्याय भी किसी साधारण एशियाई निरंकुश शासकके क्रोधका नमूना था, जिसमें व्यक्ति और दया का कोई विचार नहीं होता।' निस्सन्देह आधुनिक नैतिक नियमोंकी दृष्टिसे स्मिथ का कहना बिल्कुल उचित है, परन्तु क्या आजके फ़ौजदारी कानूनको निगाहमें रखकर शाहजहांके न्याय पर विचार करना सरासर अन्याय न होगा! जिस युगमें शाहजहां पैदा हुआ था उसकी परिस्थितिको देखते हुए उसके दंडोंको असामान्य नहीं कह सकते क्योंकि उन्हीं दिनों योरोप के राजा इससे भी कड़े और पशुतापूर्ण दंड देते

स्मिथ की आलोचना कठोर है

थे। जिन योरोपियन यात्रियोंका नाम अभी हमने ऊपर गिनाया है, उनको इन दृश्योंको देखकर कोई धक्का न लगा, इससे स्पष्ट है कि उन्होंने ऐसे ही दृश्य अपने देशोंमें भी देखे होंगे।

शाहजहां का चरित्र: शान-शौकतका शौक़. शाहजहां के चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वह शान-शौकत और तड़क-भड़कका बड़ा शौक़ीन था। उसका व्यक्तिगत चरित्र अच्छा न था। वह अपने कई सम्बन्धियोंके खूनमें तलवार रंगकर सिंहासन पर बैठा था; उसका घरेलू जीवन भी विलासमय था। उसके चरित्रका सबसे उज्ज्वल पक्ष यह था कि वह अपनी पत्नी «मुमताजमहल» को अत्यधिक प्यार करता था।

शाहजहाँ की शान-शौकतका प्रमाण उसके द्वारा बनवायी बहुत-सी सुन्दर इमारतोंसे मिलता है। अपनी पत्नी मुमताजमहल की क़ब्र पर उसने «ताजमहल» नामक सुन्दर मक़बरा बनवाया, वह सम्भवत: संसारकी सब से सुन्दर इमारत है। उसकी सुघरता, नक़्क़ाशी, साथ ही उसकी आकर्षक सादगी संसारमें अद्वितीय है। उसकी दूसरी इमारतोंमें से हैं—आगरा की मोती मस्जिद, दिल्ली की जुमा मस्जिद और दीवान-खास। उनकी सुन्दरताकी प्रशंसा संसारके सभी यात्रियोंने की है। शाहजहां ने दिल्ली का पुनर्निर्माण कराया और उसका नाम शाहजहांबाद रखा। वहांका शाही महल अपने तरहकी अकेली इमारत थी। उसको शान-शौकतसे कितना प्रेम था, इसका दूसरा उदाहरण है उसका «मयूर-सिंहासन»। यह ठोस सोनेका बनवाया गया था, जिसमें बहुमूल्य हीरे, जवाहरात जड़े थे।

उसकी बनवायी इमारतें शानदार होती थीं और उनकी 'डिजाइन' अच्छी होती थीं

शाहजहां के जमानेमें चित्रकलाका भी अच्छा विकास हुआ। कलाकारोंने अपनी हस्त-लाघवतासे लोगोंको विस्मित कर दिया। उनके चित्र सजीव-से और आकर्षक लगते थे।

चित्रकला

शाहजहां के शासन-कालमें अधिकतर इतिहास-ग्रन्थ लिखे गये, जिन में अब्दुल हामिद का «बादशाहनामा» और खाफ़ीखां का «मुन्तखाबुल-लुबाब» सबसे प्रमुख थे।

देशकी दशा. शाहजहां के शासनमें देशमें बहुत काल तक जो आन्तरिक शान्ति रही और उसने अकबर के जिन सुधारोंको अपनाया, उनसे देशकी सुख-समृद्धिमें वृद्धि हुई होगी, इसमें सन्देह नहीं। लेकिन कुछ ऐसे भाग भी थे जहांकी जनता स्थानीय अफ़सरों या गवर्नरोंके कुशासनसे बहुत पीड़ित थी। दक्षिण, जिसने अकाल और कुप्रबन्धके कारण बहुत दु:ख उठाया था, उसकी दशा शाहजहां के शासनके अन्तिम भागमें अच्छी हो गयी थी, क्योंकि वहां टोडरमल के राजस्व-सिद्धान्त लागू कर

बर्नियर का लेख

दिये गये थे। फ़ांसीसी यात्री «बर्नियर» ने, जो शाहजहां के शासनके अन्तिम दिनों और औरंगजेब के शासनके प्रारम्भिक दिनोंमें भारत में रहा था, बंगाल की व्यापारिक दशा और उर्वरता की बड़ी प्रशंसा की है। बंगाल के विषयमें वह कहता है कि यह प्रदेश 'जीवनकी सभी आवश्यक वस्तुओंसे भरा-पूरा है।' वहां हर चीज़ बहुतायतसे और काफ़ी सस्ती मिलती थी। परन्तु उत्तरी प्रदेशोंके बारेमें उसके विचार ऐसे नहीं हैं। वह लिखता है कि स्थानीय गवर्नरोंके अत्याचारोंके कारण किसानों और कारीगरोंकी तकलीफ़े बेहद बढ़ गयी थीं, फलत: कृषि और उद्योग की स्थिति अच्छी न थीं।

बंगाल की समृद्धि

सन् १६३०-३२ का अकाल. सन् १६३० और १६३२ के बीच दक्षिण और गुजरात में बड़ा भयंकर अकाल पड़ा और वहांके लोगोंको असीम कष्टोंका सामना करना पड़ा। शाहजहां ने डेढ़ लाख रुपये दान कर दिये; कई भोजनालय खुलवाये, जहां लोगोंको मुफ्त खाना मिलता था और मालगुज़ारीमें सत्तर लाख रुपयेकी छूट दे दी, परन्तु विपत्ति जितनी भयंकर थी, उसकी सहायता उतनी पर्याप्त न थी।

स्मिथ के मत की आलोचना

स्मिथ ने प्रमाणके रूपमें सर रिचर्ड टेम्पुल का वह कथन उद्धृत किया है, जिसमें उसने अकालकी भयंकरताका वर्णन करते हुए मुग़ल-साम्राज्य में भारतीयोंकी दशाकी तुलना अंग्रेजी शासनकी स्थितिसे करनेका प्रयत्न किया है। इस तरहकी तुलना अनुचित है, क्योंकि दो सौ साल की अवधिमें मनुष्यकी कर्तव्य-भावनाका बहुत कुछ विकास हो गया होगा। सन् १७७० के भीषण दुष्कालके समय ईस्ट इंडिया कम्पनीके अफ़सरोंने अकाल-पीड़ितोंके प्रति बड़ी उपेक्षा दिखायी, उन्होंने जनता की जानकी परवाह नहीं की। शाहजहां ने आखिर कुछ तो किया, परन्तु कम्पनीके योरोपियन अफ़सरोंने तो लोगोंके भूखसे तड़पते जीवित कंकालोंसे रुपये वसूल करनेमें भी आगा-पीछा न किया।

उसके शासन-कालमें मुग़ल-साम्राज्य उन्नतिकी चरम सीमा पर पहुंच चुका था

शाहजहांका मूल्यांकन. शाहजहांके शासन-कालमें मुग़ल-साम्राज्य अपनी उन्नति और समृद्धिके उच्चतम शिखर पर पहुंच चुका था। तीस वर्षोंके उसके शासन-कालमें देशमें लगातार शान्ति रही और बाहरसे भी कोई आक्रमण न हुआ। क़न्दहार के निकल जानेके अतिरिक्त साम्राज्यकी सीमामें कोई कमी नहीं हुई। इनसे यह सिद्ध होता है कि शाहजहां का शासन सुदृढ़ और सुव्यवस्थित था। मुख्यत: उसने अकबर की प्रगतिशील नीतिका ही अनुसरण किया, परन्तु वह अकबर की तरह अन्य धर्मोंके प्रति अधिक सहिष्णु न था। लेकिन उसने कभी मज़हबको राजनीति पर हावी होने न दिया। उसके कई सेनापति हिन्दू

थे और आगरा में अभी तक ईसाई मिशनरियों का स्वागत होता था। उसके चरित्रकी सबसे बड़ी विशेषता थी कि ऊपरी तड़क-भड़क और शान-शौकतमें उसकी विशेष रुचि थी। वह भवन-निर्माताओंका सिरमोर था। मुग़ल स्थापत्यके कई सुन्दर नमूने आज भी उसकी यादमें खड़े हैं।

अध्याय १३

औरंगज़ेब तथा मरहठे

[औरंगजेब (१६५६-१७०७)]

अपने प्रतिद्वन्द्वियोंसे औरंगज़ेब ने छुट्टी पाई

गृहयुद्धका अन्त. सामूगढ़ की विजय और उसके बाद शाहजहां और मुराद के बन्दी बनाये जानेसे यह निश्चित हो गया कि मुग़ल-साम्राज्यका उत्तराधिकारी औरंगज़ेब ही होगा। औरंगज़ेब ने सन् १६५८ में गद्दी पर बैठनेका एक साधारण समारोह भी कर डाला, परन्तु अभी गृहयुद्ध समाप्त नहीं हुआ था। दाराशिकोह के लड़के सुलेमानशिकोह से हार कर शुजा बंगाल की ओर भाग गया था, परन्तु उसने पुनः शक्ति बटोरकर अन्तिम बार सिंहासनके लिए प्रयत्न किया। औरंगज़ेब ने उसे खजुवाह नामक स्थान पर हराया और उसका पीछा करनेका काम मीर जुमला को सौंप दिया। शुजा अराकन की तरफ़ खदेड़ दिया गया, जहां अराकानियोंने उसको और उसके परिवारको मार डाला। इसी बीचमें दारा, जो गुजरात की ओर भगा दिया गया था, पुनः सेना-संग्रह करके औरंगज़ेब से आखिरी फ़ैसला करनेके लिए अजमेर की ओर बढ़ा। घमासान युद्धके बाद वह हरा दिया गया और भागने पर उसे विवश होना पड़ा। वह फ़ारस भाग जाना चाहता था, किन्तु एक अफ़ग़ान-सरदारने उसके साथ धोखा किया और उसे औरंगज़ेब के हाथ सौंप दिया। औरंगज़ेब ने दारा को तरह-तरहसे अपमानित किया; अन्तमें काफ़िर होनेका अभियोग लगाकर उसे मरवा डाला। इसके थोड़े दिन बाद ही मुराद को भी हत्याका झूठा जुर्म लगाकर मरवा डाला गया। दारा के लड़के सुलेमान शिकोह को, जिसे धोखा देकर बन्दी बनाकर ग्वालियर में क़ैद कर दिया गया था, विष देकर मार दिया गया।

शुजा की हार

दारा की पराजय और मृत्यु

औरंगज़ेब का दुबारा गद्दी पर बैठना

अपने सभी प्रतिद्वन्द्वियोंसे छुट्टी पाकर औरंगज़ेब दुबारा बाक़ायदा गद्दी पर बैठा और उसने «आलमगीर» की उपाधि धारण की।

टिप्पणी. गृहयुद्धका जो अन्त हुआ, उससे औरंगज़ेब के ढोंगी स्वभावका अच्छा परिचय मिल जाता है। अपनी जान-बूझ करती हुई हत्याओंको भा उसने कानूनी रूप दे दिया। वह जनताको यह विश्वास दिलाना चाहता था कि दारा के मारे जानेका कारण उसका क़ाफ़िर हो

जाना था और मुराद के सम्बन्धमें यह अभियोग लगा दिया कि वह हत्यारा था। लेकिन उसका असली उद्देश्य इतना साफ़ था कि लोगोंकी आंखोंमें धूल नहीं झोंकी जा सकती थी।

प्रारम्भमें उसने क्या किया. उसने गद्दी पर बैठते ही दो लोकप्रिय कार्य किये—मुस्लिम हिजरी संवत्‌का फिरसे प्रचलन किया और अकबर के इलाही संवत्‌का प्रचलन बन्द करा दिया। दूसरा काम उसने यह किया कि कई दमनकारी और अनुचित टैक्सों तथा महसूलोंको उठा दिया। उसके इन कार्योंसे जनता, विशेषकर मुस्लिम जनता, प्रसन्न हो गयी।

करोंमें छूट

मीर जुमला का आसाम पर आक्रमण. उत्तराधिकारके युद्धके समयसे ही मीर जुमला औरंगजेब का प्रबल समर्थक था। औरंगजेब के सिंहासनासीन होनेके बाद भी उसने शुजा को बंगाल से भगाकर उसकी सेवा की थी। औरंगजेब ने उसको बंगाल का गवर्नर बना दिया। आसामियोंके एक आक्रमणका बहाना लेकर मीर जुमला ने आसाम पर हमला कर दिया। वह काफ़ी भीतर तक घुस गया, परन्तु भारी वर्षाके कारण रसद न पहुंच सकी, फलतः उसे पीछे लौटना पड़ा। यद्यपि उसने आसाम के शासकसे एक साधारण सन्धि करनेमें सफलता पा ली, तो भी वापस लौटते समय उसकी बहुत-सी सेना नष्ट हो गयी। यात्राकी थकान और सरदी लग जानेके कारण उसकी शीघ्र ही मृत्यु हो गयी (१६६३)। औरंगजेब तो शक्की स्वभावका था ही, जुमला की मृत्युसे उसने सन्तोषकी सांस ली। उसको आशंका हो गयी थी कि यह शक्तिशाली मित्र किसी दिन शक्तिशाली शत्रु न बन जाय।

औरंगजेब के प्रति उसकी सेवाएं

उसके आक्रमणकी विफलता

उसकी मृत्यु

शाइस्ताखां. मीर जुमला की मृत्युके बाद औरंगजेब ने अपने मामा शाइस्ताखां को बंगाल का गवर्नर बनाया। वह मरहठोंके साथ संघर्ष करनेमें असफल सिद्ध हुआ था (आगेके पृष्ठोंमें देखिए), परन्तु बंगाल के गवर्नर के रूपमें वह बहुत योग्य और सफल शासक सिद्ध हुआ। उसने सबसे बड़ी सफलता चटगांव के आस-पासके समुद्री डाकुओंका दमन करने में प्राप्त की। इसके बाद उसने अराकान के राजाके विरुद्ध आक्रमण किया, क्योंकि राजा समुद्री डाकुओंकी सहायता किया करता था और उन्हें शरण देता था। राजाको बाध्य होकर चटगांव जिला शाइस्ताखां के हवाले करना पड़ा। अंग्रेजोंके साथ शाइस्ताखां के सम्बन्ध अच्छे न थे, क्योंकि 'कस्टम' (चुंगी) के मामलेको लेकर दोनोंमें कुछ झगड़ा चल रहा था। उसने अंग्रेजोंको बंगाल से निकाल दिया। उसकी गवर्नरी के समय बंगाल बहुत समद्ध हो गया और वहांका रहन-सहन अत्यधिक सस्ता हो गया था।

वह बंगाल का सर्वाधिक सफल गवर्नर था

समुद्री डाकुओंका दमन

चटगांव पर अधिकार

अंग्रेजोंके साथ झगड़ा

उसने राज-नीतिज्ञताको मज़हब पर क़ुर्बान कर दिया

औरंगज़ेब की नीति और सिद्धान्त. औरंगज़ेब कट्टर सुन्नी मुसलमान था और उसका एक बड़ा उद्देश्य यह था कि हिन्दुस्तान को 'कट्टर सुन्नी मुसलमानों' का देश बना दिया जाय। उसके सभी कार्य, चाहे वे व्यक्तिगत हों या सार्वजनिक, इसी उद्देश्यसे प्रेरित रहते थे। उसके धार्मिक विश्वास दृढ़ और सच्चे थे तथा उसने अपने साम्राज्यका शासन इस्लाम के असली उसूलोंके अनुसार करनेका प्रयत्न किया। वास्तवमें उसके धर्मने उसके न्याय पर विजय पा ली थी और राजनीतिज्ञता पर हावी हो गया था। उसने दो कार्य ऐसे किये, जिनको दूरदर्शितापूर्ण नहीं कहा जा सकता। यह भी तय है कि वह उन कार्योंके परिणामको समझता था, परन्तु धार्मिक अन्धविश्वासने उससे वे कार्य करा डाले; वे थे—हिन्दुओंके साथ दुर्व्यवहार और दक्षिणकी शिया-रियासतोंका विनाश। परन्तु उसकी दृष्टिमें यह अराजनीतिज्ञता न थी, क्योंकि वह अपने आदर्शों की रक्षाके लिए कोई भी राजनीतिक खतरा उठानेको तैयार रहता था। राजाके कर्तव्योंके सम्बन्धमें उसके विचार बहुत उच्च थे। उसका व्यक्तिगत जीवन साधु-सन्तोंकी तरह था। कहीं यह उल्लेख नहीं मिलता कि इस्लामके नियमोंके विरुद्ध उसने कोई कार्य किया हो। वह निष्पक्ष और दयावान् न्यायाधीश था, जिसके ऊपर पक्षपात अथवा लोभ-लालच का आरोप नहीं लगाया जा सकता। परन्तु शासकके रूपमें वह पूर्णतया असफल रहा। एक संकुचित मस्तिष्कमें अच्छे विचारोंके आ जानेसे जो स्थिति उत्पन्न होती है, औरंगज़ेब के कार्य इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं।

हिन्दू-मन्दिरों का विनाश

हिन्दू-धर्म पर जेहाद. औरंगज़ेब के राज्यारोहणके दस वर्ष बाद तक तो हिन्दुओं पर कोई अत्याचार न हुआ, परन्तु सन् १६६९ से उसने अपने सिद्धान्तों पर अमल करना शुरू किया। मूर्ति-पूजाका दमन करके हिन्दुस्तान को कट्टर इस्लाम का देश बना देना उसका लक्ष्य था। उसने प्रान्तीय गवर्नरोंको आज्ञा दी कि हिन्दुओंके मन्दिर और पाठशालाएं नष्ट कर दी जायँ तथा मूर्ति-पूजा-पद्धतिका प्रचार तथा व्यवहार बन्द करा दिया जाय। चूंकि बनारस सनातनधर्मी हिन्दुओंका गढ़ था, इसलिए उसकी धर्मान्ध दृष्टिका पहला शिकार वही हुआ। औरंगज़ेब ने वहांके एक प्रसिद्ध मन्दिरको गिरा दिया और उसीकी सामग्रीसे एक विशाल मस्जिद बनवायी। मथुरा का भी यही हाल हुआ; यहां तक कि मित्र-राजपूत-राज्योंके मन्दिर भी इस बरबादीसे न बच सके। हिन्दुओं की भावनाको उसके इन धर्मान्धतापूर्ण कार्योंसे जो ठेस पहुंची, वह तो पहुंची ही, परन्तु सबसे बड़ी हानि तो यह हुई कि प्राचीन सभ्यताके कई स्मारक विध्वंस कर दिये गये। उसका अगला क़दम था, सरकारी

नौकरियोंमें हिन्दुओंकी नियुक्ति पर प्रतिबन्ध।

हिन्दू-अफ़सर निकाल दिये गये

हिन्दूधर्मके इस अपमानका परिणाम यह हुआ कि «सतनामी» नामक एक हिन्दू-सम्प्रदायने सन् १६७२ में विद्रोह कर दिया। सतनामियोंने नारनौल पर अधिकार कर लिया और उसे अपना केन्द्र बनाया। दबाये जानेके पहले उन्होंने शाही फ़ौजोंको काफ़ी परेशान किया और हानि पहुंचायी।

जज़िया फिर लगा दिया गया (१६७९)

औरंगज़ेब की धार्मिक कट्टरताका सबसे अप्रिय कार्य यह रहा कि उसने हिन्दुओं पर जज़िया फिर लगा दिया। स्मरण रहे, अकबर ने इस कर को हटा दिया था। हिन्दुओंने बड़ी नम्रतासे इस आज्ञाका विरोध किया, परन्तु औरंगज़ेब ने उनकी एक न सुनी। इस कार्यसे हिन्दुओंके दमनका कार्य पूरा हो गया।

औरंगज़ेब ने जसवन्तसिंह के लड़कोंको पकड़नेकी कोशिश की, इसीलिए राजपूतोंने विद्रोह किया

राजपूतोंका विद्रोह. मारवाड़ (जोधपुर) के राजा जसवन्तसिंह, जिनको औरंगज़ेब ने पंजाब की सरहद पर सेनापति नियुक्त किया था, की मृत्यु सन् १६७८ में हो गयी। उनकी मृत्युके बाद औरंगज़ेब ने उनके दो छोटे लड़कोंको पकड़नेकी कोशिश की, इसमें उसका उद्देश्य उन्हें मुसलमान बनानेका था, परन्तु राजपूतों (विशेषत: दुर्गादास राठौर) की वीरताके कारण उसकी यह योजना असफल रही। दोनों बच्चे कहीं छिपा दिये गये। उनकी माता (रानी) ने मेवाड़ के राणा राजसिंह की सहायता मांगी, जो उसे तुरन्त मिल गयी। एक तो औरंगज़ेब ने राजपूतोंकी भावनाओं पर इस प्रकार आघात पहुंचाया और दूसरे हिन्दुओं पर जज़िया लगा दिया, इसलिए राजपूताना के राजपूतोंने उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया, जिसमें मेवाड़ और मारवाड़ ने अग्रणी भाग लिया। युद्धमें शाही सेनाका नेतृत्व औरंगज़ेब के तीन पुत्रोंने किया था। शाही सेनाको कई प्रतिकूल परिस्थितियोंका सामना करना पड़ा। औरंगज़ेब का चौथा लड़का शाहज़ादा अकबर इस अनुमानमें, कि वह राजपूतोंकी मददसे दिल्ली के सिंहासन पर अधिकार कर सकेगा, उनकी तरफ़ जा मिला। लेकिन औरंगज़ेब ने एक जाली पत्रसे राजपूतोंके मनमें अकबर के प्रति सन्देह उत्पन्न कर दिया। राजपूतोंने अकबर का साथ छोड़ दिया। शाहज़ादा पहले तो दक्षिणकी ओर गया, किन्तु बादमें फ़ारस चला गया। राजपूतोंके साथ औरंगज़ेब की लड़ाई सन् १६८१ तक चलती रही, जब कि उसने मेवाड़ से सन्धि कर ली। घृणित जज़िया टैक्सके बदलेमें राणा ने अपना एक प्रदेश मुग़ल बादशाहके हवाले कर दिया। औरंगज़ेब ने भी जसवन्तसिंह के लड़कोंको मारवाड़ का राजा माननेका बचन दिया। इस सन्धिके बावजूद अधिकांश राजपूताना विद्रोहका झंडा

शाहज़ादा अकबर का विद्रोह

मेवाड़ के साथ सन्धि

उसके राजपूत-युद्धों का परिणाम

ऊंचा किये रहा जो औरंगज़ेब के शासन-कालमें अन्त तक नीचा न किया जा सका। अपनी अबुद्धिमत्तापूर्ण नीतिसे औरंगज़ेब ने राजपूतोंको नाराज़ कर दिया और इस प्रकार एक बहादुर और वफ़ादार जातिका सहयोग खो दिया। दक्षिणको विजय करनेमें राजपूतोंकी सहायता उसके बड़े कामकी सिद्ध होती।*

औरंगज़ेब की दक्षिण-नीति. राजपूत-युद्धके समाप्त हो जाने पर औरंगजेब ने अपना पूरा ध्यान दक्षिणको अधीन करनेकी ओर लगाया। उसका उद्देश्य था कि गोलकुंडा और बीजापुर राज्योंको मुग़ल-साम्राज्य में मिला लिया जाय, ताकि मरहठोंके बढ़ते हुए उपद्रवको रोका जा सके और दक्षिणमें उसके विद्रोही पुत्र अकबर की उपस्थिति से साम्राज्यके लिए जो खतरा उत्पन्न हो गया था, उसे दूर किया जा सके। चूंकि गोल-कुंडा और बीजापुर राज्य कमजोर थे, इसलिए मरहठे उन पर आक्रमण करके और धन तथा प्रदेश छीनकर अपनी शक्ति बढ़ाते जा रहे थे। औरंगजेब का यह विचार था कि यदि ये दोनों राज्य मुग़ल-साम्राज्यमें विलय कर दिये जायँ तो इतने बड़े साम्राज्यसे टक्कर लेते हुए मरहठों को भी कुछ सोचना पड़ेगा, और अगर उन्होंने टक्कर ली हो तो उन 'पहाड़ी चूहों'—औरंगजेब इसी नामसे मरहठोंको पुकारता था—को पकड़नेका एक अवसर हाथ लगेगा। इसलिए उसने सबसे पहले गोलकुंडा और बीजापुर पर आक्रमण किया; इन राज्योंके विरुद्ध उस का कोप इसलिए भी था कि इनके शासक शिया-सम्प्रदायके थे और औरंगज़ेब था कट्टर सुन्नी।

आक्रमणका उसका बहाना

गोलकुंडा और बीजापुर के विरुद्ध संघर्ष. बीजापुर और गोलकुंडा के विरुद्ध युद्ध छेड़नेके लिए औरंगज़ेब को कोई बड़ा बहाना नहीं ढूंढना था। केवल एक यही बात कि उनके शासक शिया थे, उसके धार्मिक अन्धविश्वासको उभाडनेके लिए काफ़ी थी। इसके अलावा वह इसलिए भी नाराज हुआ कि ये राज्य मरहठोंको टैक्स अथवा घूस दिया करते थे। परन्तु लड़ाईका असली कारण तो यह था कि औरंगजेब मुग़ल-साम्राज्यकी ठीक सीमा पर दो स्वतंत्र राज्योंकी स्थितिको सहन नहीं कर सकता था।

---

* अनुवादकीय टिप्पणी. मेवाड़ से १६८१ ई० में सन्धि हो गई परन्तु इस सन्धिमें जसवन्तसिंह के पुत्रको मारवाड़ का राजा स्वीकार करनेका कोई वचन नहीं दिया गया था। इसीलिए मारवाड़से बराबर युद्ध चलता रहा।

औरंगज़ेब स्वयं दक्षिण गया और सन् १६८३ में अहमदनगर पहुंचा। उसने मरहठोंको दबाने और अकबर को पकड़नेके लिए छिटपुट हमले लिए, लेकिन दो वर्ष तक उसका कोई परिणाम नहीं निकला। सन् १६८५ में उसने अपने बेटे मुअज़्ज़म को गोलकुंडा के विरुद्ध आक्रमण करनेके लिए भेजा। मुअज़्ज़म ने हैदराबाद शहर पर क़ब्ज़ा कर लिया, किन्तु उसके शासकसे सन्धि कर ली। औरंगज़ेब इस बात पर बहुत चिढ़ा।

बीजापुर और गोलकुंडा का पतन

इसी समय औरंगज़ेब ने शाहज़ादा आज़म को बीजापुर के विरुद्ध भेजा था, परन्तु उसके आक्रमण असफल रहे। अन्तमें उसने सेनापतित्व अपने हाथमें लिया। बीजापुर पर घेरा डाल दिया और उसको भूखा मरने पर विवश कर दिया, जिससे तंग आकर बीजापुर के सुलताननें आत्मसमर्पण कर दिया। इसके बाद उसने गोलकुंडा की ओर ध्यान दिया। इसके शासक अबुलहसन से वह ख़ास तौरसे नाराज़ था, क्योंकि उसने ब्राह्मणों को मंत्रिपद पर नियुक्त कर रखा था और शम्भाजी को धन दिया था। औरंगज़ेब ने मुअज़्ज़म द्वारा की हुई सुलहको तोड़ दिया और गोलकुंडा पर घेरा डाल दिया। अबलहसन ने बहादुरीसे उसका सामना किया किन्तु उसके एक अफ़सरके विश्वासघातके कारण मुग़ल-सेना गोलकुंडा में प्रविष्ट हो गयी। सन् १६८७ में गोलकुंडा का पतन हो गया। इस प्रकार दो मुसलमान राजवंशोंका अन्त हो गया, जो बहुत दिनोंसे मुगल-शक्तिका विरोध करते आ रहे थे।

परिणाम. गोलकुंडा और बीजापुर का विनाश करके औरंगज़ेब ने बड़ी राजनीतिक भूल की।* उसने उन बाधाओंको हटा दिया जिनका

* अनुवादकीय टिप्पणी. सर यदुनाथ सरकारने लिखा है कि दक्षिणकी शिया-रियासतो को मुग़ल-साम्राज्य में मिलाकर औरंगज़ेब ने कोई भूल नहीं की। शिया-रियासतों तथा मुग़लोंमें कोई स्थाई सन्धि नहीं हो सकती थीं, क्योंकि अकबर महान् के कालसे ही मुग़लोंकी वक्र दृष्टि इन पर थी। दूसरे ये रियासतें औरंगज़ेब के कालमें इतनी कमज़ोर हो गई थीं कि या तो वे मुग़लोंमें मिल जातीं या मरहठोंके अधिकारमें हो जातीं। अतः मुग़ल-सम्राट्ने यह ठीक ही किया कि उनको अपने राज्यमें मिला लिया, नहीं तो ये रियासतें बराबर मरहठोंको सहायता पहुंचाती रहतीं। मरहठों तथा इन शिया-रियासतोंमें मुग़लोंके प्रति शत्रुता थी। वे मुग़लोंके लाभके लिए मरहठोंसे खुल्लमखुल्ला कभी न लड़ते, क्योंकि वे अच्छी तरह जानते थे कि मुग़ल-सम्राट् उनको स्वतंत्र न रहने देगा।

सामना उसके किसी शत्रुको उसके साम्राज्य पर आक्रमण करते समय करना पड़ता। बीजापुर और गोलकुंडा मरहठोंकी बाढ़को उधर ही रोक लेते थे, किन्तु अब विकासमान मरहठा-शक्तिका दक्षिणमें कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं रह गया और वहां उनके प्रभावके बढ़नेमें कोई रुकावट न रह गयी। इसके अलावा एक बात और हुई कि इन दोनों राज्योंकी सेनाओंके बहुत से सैनिक छँटनी होनेके बाद बकार हो गये। उनमेंसे कुछ तो मरहठोंकी सेनामें भरती हो गये और कुछ मनमाने ढंगसे लूट-मार करने लगे। इस प्रकार सारे दक्षिणमें अराजकता और अव्यवस्था फैल गई।

गोलकुंडा और बीजापुर के नाशसे उलटे मरहठों की ही शक्ति बढ़ी

औरंगजेब और मरहठे. औरंगजेब के शासन-कालमें नवजात मरहठा-शक्ति भारतीय राजनीतिमें एक प्रमुख शक्ति बन गई। अपने सुयोग्य नेता «शिवाजी» के नेतृत्वमें मरहठोंने प्रदेशोंको विजय करना और आक्रमण करना शुरू कर दिया, विशेषतः बीजापुर-राज्य उनका सीधा निशाना बना। यों तो औरंगजेब शिवाजी से घृणा करता था, और उनको 'पहाड़ी चूहा' कहता था, परन्तु उसने शिवाजी को प्रारम्भ में इसीलिए आगे बढ़ने दिया, क्योंकि उसने समझा कि शिवाजी से लड़कर बीजापुर-राज्य जब कमजोर हो जायगा तब उसे लेना आसान रहेगा। बीजापुर के प्रदेशों पर धीरे-धीरे अधिकार करके शिवाजी ने अपनी शक्ति काफ़ी बढ़ा ली, यहां तक कि अब मरहठे मुग़ल-साम्राज्यके प्रदेशों पर भी धावा करने लगे। औरंगजेब को तब पता चला कि यह 'पहाड़ी चूहा' तो काट भी सकता है। वह बहुत क्रोधित हुआ। उसने अपने मामा «शाइस्ताखां» के नेतृत्वमें एक विशाल सेना शिवाजी पर आक्रमण करनेके लिए भेजी। शाइस्ताखां ने «पूना» पर अधिकार कर लिया, परन्तु शिवाजी ने एक रातको अचानक उसके डेरे पर हमला कर दिया। शाइस्ताखां भाग निकला, परन्तु उसके हाथ की तीन उंगलियां कट गयीं। औरंगजेब ने उसको वापस बुला लिया और बंगाल में उसका तबादला कर दिया।

मरहठोंके प्रति उसकी नीति

शिवाजी के साथ उसकी लड़ाई

शाइस्ताखां की असफलता

दूसरी सेना शाहज़ादा मुअज़्ज़म और जयसिंह के संयुक्त सेनापतित्व में भेजी गयी। परन्तु इसी बीच शिवाजी ने शाही नगर «सूरत» को लूट लिया। नये सेनापति शिवाजी के विरुद्ध अधिक सफल सिद्ध न हुए, किन्तु जयसिंह ने किसी प्रकार शिवाजी को आत्मसमर्पण करने के लिए राज़ी कर लिया और आगरा में शाही दरबारमें चलनेको भी कहा। औरंगजेब ने शिवाजी के साथ सम्मानजनक व्यवहार नहीं किया। उनको कड़े पहरे के भीतर नज़रबन्द कर दिया गया परन्तु शिवाजी कोई युक्ति करके वहांसे निकल भागे। वे सकुशल दक्षिण लौट आये और मुग़ल-साम्राज्य

शिवाजी ने आत्मसमर्पण कर दिया, मुग़ल-दरबार में गये, पर अनादृत होने पर वहांसे भाग निकले

पर फिर धावा करना शुरू कर दिया। उनके आक्रमण इतने सफल हुए कि जसवन्तसिंह ने, जो औरंगजेब की ओरसे शिवाजी को दबानेके लिए भेजा गया था, औरंगजेब पर इस बातके लिए जोर डाला कि वह शिवाजी को 'राजा' की उपाधि देकर उनसे सन्धि कर ले (१६६८)। परन्तु संघर्ष पुनः प्रारम्भ हो गया। इस बार शिवाजी ने खानदेश, जो मुग़ल-साम्राज्य के अन्तर्गत था, के कुछ स्थानोंसे 'चौथ' (कुल मालगुज़ारीका चौथाई भाग) वसूल किया। इस प्रकार शिवाजी को दबानेके बजाय औरंगजेब ने एक तरहसे शिवाजी की स्वतंत्रता स्वीकार कर ली और मुग़ल-साम्राज्य के दक्षिणी प्रदेशोंसे 'चौथ' वसूल होते चुपचाप देखता रहा। शिवाजी से लड़ाई मोल लेकर उसने भयकर राजनीतिक भूल की। उसने एक ऐसे आदमीको अपना शत्रु बना लिया, जो अगर मित्र रहता तो दक्षिणमें मुग़ल-सत्ता का एक शक्तिशाली स्तम्भ सिद्ध होता।*

शिवाजी को 'राजा' की उपाधि मिली और वह खानदेश से चौथ वसूल करने लगे

औरंगजेब की राजनीतिक अदूरदर्शिता

शिवाजी की मृत्युके बाद उनका पुत्र शम्भाजी गद्दी पर बैठा। वह बहुत ही निष्ठुर और दम्भी शासक था। जिस समय औरंगजेब बीजापुर और गोलकुंडा के विरुद्ध युद्धमें उलझा हुआ था, तब वह विलासमें डूबा

शम्भाजी की गिरफ्तारी और हत्या

* अनुवादकीय टिप्पणी. इस सम्बन्धमे यह याद रखना चाहिए कि शिवाजी ने आगरे से लौटकर (नवम्बर, १६६६) मुग़लोसे युद्ध नहीं छेड़ा। वह बराबर अब भी यही कहता रहा कि वह मुग़लोका मित्र है और पुरन्धर की सन्धि खत्म नहीं हुई है। मिर्ज़ा राजा जयसिंहके जानेके बाद शाहज़ादा मुअज़्ज़म तथा राणा जसवन्तसिंह दक्षिण भेजे गए (मई, १६६७)। ये दोनो ही बड़े सुस्त सेनापति थे। उन्होने सम्राट्से कहकर शिवाजी की राजाकी उपाधिको मान्यता दिलाई; यह कार्य ९ मार्च, १६६८ ई० के पत्र द्वारा हुआ। यह सन्धि दो साल तक रही। शम्भाजी पंचहज़ारी मनसबदार बनाया गया। शिवाजी ने शाहज़ादा मुअज़्ज़म से बीजापुर तथा गोलकुंडा से चौथ लेनेकी आज्ञा भी ले ली। पुर्तगालियोंने शिवाजी से सन्धि कर ली (दिसम्बर, १६६७), इस प्रकार (सन् १६६८ ई०) शिवाजी की शक्ति काफ़ी बढ़ गयी थी और मुग़ल-सेनापति अपने-अपने आपसी झगड़ो तथा सुस्ती के कारण कुछ कर नहीं पाते थे। जब मुग़ल-सम्राट्ने १६६९ ई० मे हिन्दू-मन्दिरोको तोड़नेका आम फ़रमान निकाला तब शिवाजी ने १६७० ई० में मुग़लोंके विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया। इसी समय शाहज़ादा मुअज़्ज़म तथा दिलेरखां का झगड़ा बढ़ गया और दिलेरखां को मालवा भाग जाना पड़ा। इस प्रकार दक्षिणमें मुग़ल कमज़ोर पड़ गए और शिवाजी ने अपनी शक्ति बढ़ानी आरम्भ कर दी।

रहा और उसने अपने शत्रुसे बदला लेनेकी कोई कोशिश न की। ऐसा करके उसने भारी ग़लती की, क्योंकि इन दो राज्योंके नष्ट हो जाने पर मरहठोंको शक्तिशाली मुग़ल-सेनाका सीधे सामना करना पड़ा। थोड़ी देर के लिए औरंगज़ेब की गोटी उगती दिखायी दी; उसने अचानक आक्रमण करके शम्भाजी को गिरफ्तार कर लिया और मरवा डाला (१६८९)। इसके बाद मुग़लोंने मरहठोंके शक्ति-केन्द्र रायगढ़ दुर्ग पर अधिकार कर लिया और शम्भाजी का लड़का शाहू उनके हाथ पड़ गया, जिसे औरंगज़ेब ने ज़मानतके तौर पर अपने पास रोक लिया।

राजाराम और उसके बाद उसका विधवा पत्नी ताराबाई ने सफलता-पूर्वक युद्ध जारी रखा

परन्तु इन विपत्तियोंमें भी मरहठोंका साहस न टूटा। शम्भाजी के मारे जानेके बाद शिवाजी के छोटे लड़के «राजाराम» ने मरहठा-राज्य की बागडोर सम्भाल ली थी। वह जिंजी चला गया और वहांसे छापा-मार युद्ध करने लगा। औरंगज़ेब ने जुलफ़िक़ारखां को राजाराम के विरुद्ध भेजा, परन्तु यह सेनापति जान-बूझ कर सात वर्षों तक जिंजी का घेरा डाले पड़ा रहा और अन्तमें जब उस पर क़ब्ज़ा भी किया तो राजाराम को बचकर निकल जाने दिया (१६९८)। इसके पहले शाहज़ादा कामबख्श ने विश्वासघात करके शत्रु-पक्षसे पत्र-व्यवहार किया था, उसे बन्दी बना कर औरंगज़ेब के पास भेज दिया गया। इन बातोंसे यही झलकता है कि मरहठोंके विरुद्ध औरंगज़ेब का संघर्ष अव्यवस्थित था और मुग़ल-सेना में अनुशासनहीनता आ गयी थी। औरंगज़ेब यद्यपि काफ़ी वृद्ध हो गया था, तथापि वह अद्भुत उत्साहसे कार्य करता था, परन्तु जहां वह मरहठोंके इक्के-दुक्के क़िलों पर क़ब्ज़ा कर पाता था, वहां मरहठे उसके साम्राज्य के प्रदेशोंमें लूट-मार करके अपनी क्षति पूरी कर लेते थे। घाटेमें औरंगज़ेब ही रहता था। जीतते हुए भी मुग़ल क्रमशः कमज़ोर पड़ते जाते थे और हारते हुए भी मरहठे दिन-दिन बलवान् होते जाते थे। राजाराम की मृत्यु के बाद उसकी विधवा ताराबाई ने इतनी कुशलतासे मुगल-प्रदेशोंकी बरबादीकी योजना कार्यान्वित की कि मुग़ल-बादशाह वस्तुतः अपने शिविर में क़ैद-सा होगया।

औरंगज़ेब का पीछे हटना और उसकी मृत्यु

मरहठोंकी छापामार लड़ाईके तरीक़ोंने मुग़लोंके सभी साधनोंको उलझा दिया और उन्होंने औरंगज़ेब की विशाल सेनाको इतना असंगठित और हतोत्साह कर दिया कि अन्तमें औरंगज़ेब को १७०६ में «अहमद-नगर» लौट जाना पड़ा, जहां पर अगले वर्ष उसकी मृत्यु हो गयी।

उसकी दक्षिण सम्बन्धी नीतिकी असफलता

«उसकी दक्षिण-सम्बन्धी नीति पूर्णतया असफल सिद्ध हुई।» मरहठों से उसने बीस वर्ष तक युद्ध जारी रखा, लेकिन परिणाम कुछ न निकला। बीजापुर और गोलकुंडा पर क़ब्ज़ा होनेसे उसकी ताक़त बढ़ने के बजाय

और घट गयी। स्मिथ ने ठीक ही लिखा है कि 'दक्खिन उसकी प्रतिष्ठा और उसके शरीर दोनोंकी क़ब्र साबित हुआ।'

उसकी असफलताके कारण. मरहठोंके विरुद्ध संघर्षमें औरंगजेब को असफलता मिलनेका कारण कुछ तो मुग़ल-सेनाकी अयोग्यता थी और कुछ मरहठों द्वारा अपनायी गयी रण-नीति, अर्थात् छापामार-दस्तों का संगठन। मुग़ल-सेना विशाल थी इसलिए उसको जहां चाहें तुरन्त भेजा न जा सकता था, वह पूरे साज-सामानके साथ कूच करती थी, इसलिए उसकी गति धीमी रहती थी। इसके अतिरिक्त पहाड़ी प्रदेशमें यातायात की कठिनाइयां थी ही। मुग़ल-सेनाके सैनिक अब बाबर की सेनाके मजबूत और कष्ट-सहिष्णु सैनिक नहीं रह गये थे। विलासिताके कारण उनमें भ्रष्टाचार फैल गया था; वे दिखावेकी सामग्री अधिक रह गये थे, कामके कम। परन्तु दूसरी ओर मरहठे बहुत फुर्तीले थे, अपने छोटे-छोटे पहाड़ी टट्टुओं पर चढ़कर और जीन पर ही ज़रूरतकी चीजें कसकर वे बड़ी तेज़ीके साथ आगे बढ़ते थे और अचानक छापा मारकर मुग़ल-सेनाको हक्काबक्का कर देते थे। वे कभी आमने-सामने होकर लड़ने का खतरा नहीं उठाते थे। जहां-कहीं मुग़ल-सेना जाती, उस प्रदेशको चारों ओरसे मरहठा सैनिक घेर लेते थे और कोशिश करते थे कि मुग़लों के पास रसद न पहुंचने पाये। सहायतार्थ जो कुमुक पीछेसे भेजी जाती थी, उसे वे बीचमें ही आक्रमण करके समाप्त कर देते थे। जहां उनके पहुंचनेकी कोई आशा न कर सकता था, वहां अचानक पहुंचकर और लूट-मार करके वे नौ दो ग्यारह होते थे, खासतौरसे उन ज़िलोंको लूटने की ओर उनका अधिक ध्यान रहता था, जिन ज़िलोंसे मुग़लोंको रसद मिलती थी। इस प्रकार छापामार (गुरिल्ला) युद्धके कारण मुग़लोंकी सारी शक्ति पंगु हो गयी थी और ऐसे काइयां शत्रुसे पार पानेमें मुग़ल-सेना अपनेको सर्वथा असमर्थ पाती थी।

मुग़ल-सेना की अयोग्यता

मरहठोंकी छापामार लड़ाई

मुग़ल-सेना की मरहठों से तुलना

शिवाजी का जीवन: मरहठोंका उदय. मुग़ल-इतिहासके रंगमंच पर मरहठोंका उदय शाहजहां के शासनके प्रारम्भिक दिनोंसे होता है। हम पहले बता चुके हैं कि शाहजी भोंसला नामक एक मरहठा सरदारने, जो अहमदनगर-राज्यकी नौकरीमें था, एक बार निजामशाही राजवंश को पुनः स्थापित करनेकी कोशिश की थी। इस वंशका पतन शाहजहां के आक्रमणोंसे हो गया था। अहमदनगर के मुग़लोंके हाथमें चले जानेके बाद शाहजी ने अपनी सेवाएं बीजापुर के सुल्तानको समर्पित कीं। जिन दिनों औरंगज़ेब दक्षिणका वाइसरॉय था, शाहजी ने उसे बहुत परेशान किया था। सन् १६२७ में उसके एक पुत्ररत्नकी उत्पत्ति हुई। वही आगे

शिवाजी के पिता शाहजी भोंसला

चलकर « शिवाजी » के नामसे प्रसिद्ध हुआ।

शिवाजी का प्रारम्भिक जीवन. जब शाहजी ने बीजापुर के सुल्तान की नौकरी कर ली, तब उन्होंने शिवाजी की शिक्षा-दीक्षाका भार दादा जी कोंणदेव नामक एक ब्राह्मणको दे दिया। कोंणदेव ने शिवाजी को हिन्दूधर्मकी अच्छी शिक्षा दी और उनमें यह भाव भरनेकी चेष्टा की कि मुसलमानोंके अपमानसे हिन्दूधर्मका उद्धार करना बहुत आवश्यक है। बचपनसे ही शिवाजी को वन-पर्वतों पर चढ़ने-घूमने तथा युद्ध-कला की शिक्षा लेनेका शौक़ था। उन्होंने पश्चिमी घाटकी एक पहाड़ी जाति—मावली—युवकोंकी सेना संगठित की और छापामार लड़ाईका अभ्यास प्रारम्भ कर दिया। जब वे केवल १९ वर्षके थे तभी उन्होंने बीजापुर के एक पहाड़ी दुर्ग तोरण पर अधिकार कर लिया। बीजापुर के अन्य कई क़िले एकके बाद एक उनके हाथमें आने लगे। अपनी सफलताओंसे उत्साहित होकर शिवाजी ने बीजापुर का ख़ज़ाना रास्तेमें लूट लिया और बहुत शीघ्र अपनेको कोंकण के उत्तरी भागका स्वामी बना लिया। शिवाजी के कार्योंसे क्रोधित होकर सुल्तानने शाहजी को क़ैदमें डाल दिया। समझा तो उसने यह था कि शिवाजी अपने पिताको छुड़ानेके लिए लूट-मार बन्द कर देगा, परन्तु शिवाजी दूसरी मिट्टीके बने थे। उन्होंने शाहजहां की सहायता लेकर सुल्तानको शाहजी को मुक्त करनेके लिए बाध्य कर दिया। शिवाजी ने अपनी लूट-मार जारी रखी, यहां तक कि वह अब मुग़ल-प्रदेश पर भी धावा मारने लगे। इस पर औरंगजेब नाराज़ हो गया, परन्तु शिवाजी ने उसे बीजापुर के मामलेमें सहायता देनेका वादा करके शान्त कर दिया। जब शाहजहां की नाजुक बीमारीका समाचार पाकर औरंगजेब उत्तरकी ओर चला गया, तब बीजापुर वालोंने यह समझकर कि अब मुग़लों और शिवाजी में गठबन्धन होना असम्भव है, इस दुर्दमनीय विद्रोहीके विरुद्ध कारवाई करनेका इरादा किया।

बीजापुर से प्रदेश छीनकर उन्होंने अपनी शक्ति बढ़ा ली

पहाड़ी दुर्गों पर अधिकार

सन् १६५९ में बीजापुर ने अफ़ज़लखां के सेनापतित्वमें शिवाजी को दबानेके लिए एक बड़ी सेना भेजी। शिवाजी ने अफ़ज़ल को एक व्यक्तिगत मुलाक़ातके लिए राज़ी कर लिया और उसी समय उसके पेटमें बघनखा (एक शस्त्र) घुसेड़कर मार डाला। तत्पश्चात् अफ़ज़लखां की सेना पर अचानक आक्रमण करके उसे तितर-बितर कर दिया। तीन वर्ष बाद (१६६२) बीजापुर ने शिवाजी से सन्धि कर ली और उस समय तक जो प्रदेश उनके अधिकारमें थे, उन्हें उनके पास ही रहने दिया। इस प्रकार पूना से लेकर गोआ तक एक लम्बी पट्टी शिवाजी के हाथमें आ गयी।

अफ़ज़लखां की हत्या

औरंगज़ेब के विरुद्ध शिवाजी का युद्ध. बीजापुर के विरुद्ध शिवाजी को सफलता मिली, उससे उनकी हिम्मत बढ़ गई। वह मुग़ल-प्रदेश तक धावा करने लगे, यहां तक कि सूरत को लूट लिया। इससे औरंगज़ेब बहुत उत्तेजित हो उठा और उसने उनके विरुद्ध लम्बा संघर्ष छेड़ दिया। शिवाजी ने भी शाइस्ताखां को हराकर औरंगज़ेबकी अधीनता कुछ समयके लिए स्वीकार करके और फिर आगरा से भागकर लड़ाई पुनः जारी करके औरंगज़ेब को सुलह करने पर बाध्य कर दिया। औरंगज़ेब ने शिवाजी के 'राजा' की उपाधिको मान्यता दी, लेकिन शिवाजी ने शत्रुता न छोड़ी। उन्होंने खानदेश से, जो मुग़लोंका प्रान्त था, 'चौथ' वसूल की, सूरत को दुबारा लूटा और औरंगज़ेब के विरुद्ध बीजापुर के सुल्तानकी मदद की (आगे देखिए)।

शिवाजी की दक्षिण-विजय

शिवाजी का राज्याभिषेक. अब शिवाजी ने अपने को इस योग्य पाया कि वे स्वतंत्र शासकका पद ग्रहण कर सकें। अतः सन् १६७४ में बड़ी धूमधामसे उनका राजतिलक हुआ। रायगढ़ को शिवाजी ने अपनी राजधानी बनाया। यह उनके सफल जीवनकी एक महत्त्वपूर्ण घटना थी।

मुग़लोंके विरुद्ध बीजापुर से गठबन्धन

शिवाजी के जीवनके शेष दिन, यानी १६७४ से १६८० तक, अधिकतर मुग़लोंके विरुद्ध सफलतापूर्वक लड़ते और दक्षिणको विजय करते ही बीते। उन्होंने नर्वदा पार करके मुग़ल-प्रदेश को लूटा और चौथ वसूल की। इसके बाद उन्होंने गोलकुंडाके सुल्तानसे समझौता कर लिया और अपने पिताकी दक्षिण-स्थित जागीर पर, जो बीजापुर की नौकरी करते समय उनको मिली थी, क़ब्ज़ा करनेके लिए आगे बढ़े। उस जागीर पर आंशिक रूपसे उनके छोटे भाई व्यंकजी का क़ब्ज़ा था। शिवाजी ने जिंजी और बेलूर पर अधिकार करके अपने भाईको तंजौर के इलाक़ेमें से हिस्सा देनेके लिए बाध्य किया। तत्पश्चात् उन्होंने बिलारी पर भी अधिकार कर लिया और अपने शत्रु बीजापुर के सुल्तानसे समझौता करके तथा उसे मुग़लोंके विरुद्ध सहायता देनेका वचन देकर कुछ इलाक़ा और पा लिया। सन् १६८० में तिरपन वर्षकी आयुमें शिवाजी का देहान्त हो गया।

अपने पिता की जागीर पर कब्ज़ा

१६८० में शिवाजी की मृत्यु

शिवाजी का शासन-प्रबन्ध. शिवाजी महान् विजेता ही न थे, बल्कि एक महान् संगठनकर्त्ता तथा शासक भी थे। उनकी सरकार विशुद्ध हिन्दू थी। राज्यकी सर्वोपरि सत्ता राजाके हाथमें रहती थी और राजाकी सहायता के लिए ८ व्यक्तियोंकी एक मंत्रिपरिषद् थी। प्रधान मंत्री «पेशवा» कहलाता था। मंत्रियोंके ज़िम्मे एक-एक विभाग था, जैसे अर्थ, परराष्ट्र और सैन्य आदि। मंत्री लोग अधिकतर सेनापतित्वका

८ मंत्रियोंकी परामर्शदात्री परिषद्

भार ग्रहण करते थे, नागरिक शासनका उत्तरदायित्व उनके उपमंत्रियों पर रहता था। शिवाजी ने बड़े-बड़े पदोंको वंशपरम्परागत नहीं किया, क्योंकि बड़े-बड़े अफ़सर अक्सर राजाके विरुद्ध विद्रोह खड़ा कर देते थे। «पंचायतों» के हाथमें न्यायका अधिकार था, वही दीवानी मुक़दमोंका भी फ़ैसला करती थी। फ़ौजदारी मुक़दमोंका फ़ैसला पटेल या गांवका मुखिया करता था।

जिलोंका संगठन

मरहठा-राज्य जिलोंमें बँटा हुआ था, प्रत्येक जिलेका एक अधिकारी और उसके नीचे कई अफ़सर होते थे। हर गांवका एक मुखिया (पटेल) होता था। जिलोका शासन भी केन्द्रीय शासनके नमूने पर होता था। हर जिलाधिकारीके नीचे ८ अफ़सर होते थे, जो पत्र-व्यवहार, हिसाब-किताब और खज़ानेके मामलेकी देखभाल करते थे। जो राज्यका हिस्सा सीधा शिवाजी द्वारा शासित होता था उसको स्वराज्य कहते थे। यह कई जिलोंमें बांटा गया था और ये जिले तीन प्रान्तोंमे विभाजित थे। प्रत्येक प्रान्तमे एक वॉइसराय रहता था।

मालगुज़ारी का तरीक़ा

मालगुज़ारी या लगानकी दर उचित थी और उसकी वसूलीमें किसी तरहकी बेईमानी न होती थी। हर साल मालगुज़ारीका बन्दोबस्त होता था। राज्य उपजका $\frac{2}{5}$ लगानमें ले लेता था। ज़मीनको ठेके पर उठाना बन्द कर दिया गया था। राजा सीधा किसानोंसे समझौता करता था। फ़सलके आधार पर लगान स्थिर किया जाता था। किसानोंको हमेशा यह पता रहता था कि उसको क्या देना है और उसको वह बग़ैर किसी कठिनाईके दे सकता था। शिवाजी ने खेतीको प्रोत्साहन दिया। अकाल के दिनोंमें रैयतको बीज तथा रुपया क़र्ज़के तौर पर दिया जाता था। यह क़र्ज़ा किसान क़िस्तोंके द्वारा अपनी सुविधाके अनुसार अदा कर देते थे। इसके अलावा आमदनीके और भी ज़रिये थे, परन्तु उनको क़ानूनी नहीं कहा जा सकता। वे थे—'चौथ' और 'सरदेशमुखी'। पहिला लगानका चौथा भाग था और दूसरा उसका दसवां भाग। जिन प्रदेशों को मरहठोंकी लूट-मारसे बचना होता था, वे संरक्षणके लिए ये कर उनको देते थे।

शिवाजी गौवों और किसानोंको रक्षाका विशेष ध्यान रखते थे। जो स्त्रियां बन्दी बनाकर उनके पास लाई जाती थीं, उन्हें वह सम्मानपूर्वक उनके घरोंको भिजवा देते थे।

स्थल-सेना

शिवाजी ने अपनी सेनाका अच्छा संगठन किया था। अफ़सरोंमें बड़े-छोटेके दर्जे थे। सेनामें घुड़सवार और पैदल दोनों थे, परन्तु घुड़सवार सेनाकी दृढ़ता ही मरहठोंकी सबसे बड़ी शक्ति थी। विद्रोहोंको

रोकनेके लिए शिवाजी ने जागीर-प्रथाका अन्त कर दिया था और सिपाहियोंको नक़द वेतन मिलता था। सैनिकोंको राजकोषसे नियमित वेतन मिलता था और उन पर कड़ा अनुशासन रखा जाता था। सैनिक शिविरोंमें स्त्रियोंको रखनेका नियम न था। जंजीरा के अबीसीनियन समुद्री डाकुओंकी रोक-थामके लिए और मुग़ल-जहाजोंको लूटनेके लिए शिवाजी ने एक अच्छा जहाज़ी बेड़ा भी तैयार किया था।

जलसेना

क़िलोंकी रक्षा. शिवाजी के सैनिक प्रबन्धकी एक विशेषता थी——वह कई क़िलोंको सुसंगठित रखता था। 'क़िलेके प्रत्येक व्यक्तिको यह सिखलाया जाता था कि वह क़िलेको अपनी माताके समान समझे। सचमुच क़िले माताके ही रूपमें थे, क्योंकि जब कभी कोई आक्रमण होता था तो आस-पासके गांवके लोग क़िलोंमें शरण पाते थे।'

शिवाजी का चरित्र और उनका इतिहासमें स्थान. शिवाजी जनताके, जन्मजात नेता थे। वह योग्य सेनापतिके साथ-साथ योग्य शासक भी सिद्ध हुए। उनके केवल अदम्य साहस ही न था, वरन् चालाकी और सतर्कता भी उसी मात्रामें थी। वह धोकेका धोकेसे और ताक़त का ताक़तसे मुक़ाबला करना भलीभांति जानते थे। उस समय जब मुग़ल-साम्राज्य अपनी उन्नतिके उच्च शिखर पर था, उसका खुल्लमखुल्ला विरोध करके एक हिन्दू-राज्यकी सृष्टि कर देना किसी साधारण प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्तिका काम न था। उसका शासन अच्छा और प्रगतिशील था। तत्कालीन इतिहासकार क़ैफ़ीखां, जो शिवाजी का अनुकूल आलोचक न था, उसने भी इस बातकी प्रशंसा की है कि शिवाजी अपने हाथमें पड़ी मुस्लिम स्त्रियों और बच्चोंके सम्मानका बड़ा ध्यान रखते थे। उन्होंने एक भी मस्जिदको बरबाद न होने दिया और जब कभी क़ुरान की कोई प्रति उनके हाथ लग जाती थी, वे उसे बड़े आदरके साथ सुरक्षित रखते थे। इस तरहकी सहिष्णुता उस समय और महत्त्वपूर्ण हो उठती है जब कि हम देखते हैं कि शिवाजी का विरोधी औरंगजेब हिन्दुओंका जानी दुश्मन और उनके मन्दिरोंको बरबाद करनेवाला था। किन्तु शिवाजी के कुछ काम ऐसे थे जिनको बुरा बताए बिना नहीं रहा जा सकता। उन की लूट-मारसे हिन्दुओं और मुसलमानोंको समान रूपसे बेहद तकलीफ़ें उठानी पड़ीं। अपने उद्देश्यको पूरा करनेके लिए वे धोखाधड़ीसे भी काम ले सकते थे, परन्तु ऐसा वे तभी करते थे जब इसके अलावा कोई दूसरा चारा न रह जाता था। अपने देशभक्तिपूर्ण उद्देश्योंकी पूर्तिके लिए उन्हें उपाय सोचने पड़ते थे, इसलिए अनुचित ढंगसे रुपया इकट्ठा करनेकी आवश्यकता भी पड़ जाती थी। जो कुछ हो, वे एक महान् व्यक्ति थे

उनके गुण

क़ैफ़ीखां की श्रद्धांजलि

उनके दुर्गुण

उनके कार्य

और उनके कट्टर शत्रु औरंगज़ेब ने भी उनकी प्रशंसा की है। शिवाजी में कार्य करनेकी अद्‌भुत प्रतिभा थी, इसीलिए वे बिखरी हुई मरहठा-जाति को राष्ट्रीयताके सूत्रमें बांध सके। यह कार्य उन्होंने ऐसे समयमें सम्पन्न किया जब कि विरोधी दल बड़ा ज़बरदस्त था। उनका सबसे बड़ा कार्य यह रहा कि अपनी प्रजामें उन्होंने राष्ट्रीयताकी भावना भर दी जो उनके मरनेके बाद भी बहुत दिनों तक रही और जिसने एक समय तो मरहठों को हिन्दुस्तान की एक ज़बरदस्त ताक़त बना दिया।

शिवाजी हिन्दूधर्मके पक्के भक्त थे और वे हिन्दूधर्मके एक दृढ़ स्तम्भ गिने जाते हैं। महान् महाराष्ट्रीय सन्तों—रामदास और तुकाराम—का सत्संग करके उन्होंने हिन्दूधर्मका गहरा ज्ञान प्राप्त किया था।

गद्दी पानेके लिए उसने जो कार्य किये, उनका औचित्य

औरंगज़ेब का चरित्र और उसका मूल्यांकन. यद्यपि सिंहासन तक पहुंचनेके लिए औरंगज़ेब ने खूनकी नदी पार की थी, परन्तु वह खूनका प्यासा न था, जैसा कि मुहम्मद बिन तुग़लक़ था। वास्तविक या अवास्तविक प्रतिद्वन्द्वियोंको रास्तेसे हटा देनेकी परम्परा मुसलमानी इतिहासमें कोई नयी चीज़ नहीं रही है और फिर औरंगज़ेब के सामने तो उसके पिताका ही उदाहरण था। गद्दी पर बैठनेके समय उसने जो पाप किए उनके मूलमें उसकी महत्वाकांक्षा तो थी ही, परन्तु साथ ही आत्म-रक्षाकी भावना भी थी, क्योंकि यह बहुत सम्भव था कि अगर उसके भाइयोंमें से कोई उस उत्तराधिकारके युद्ध में सफल हो गया होता तो उसे भी मौतका सामना करना पड़ता।

उसके चरित्र की अच्छाइयां

एक बार अपनी स्थितिको अडिग बना लेनेके बाद औरंगज़ेब ने व्यर्थ का रक्तपात कभी नहीं किया। इसके विपरीत उसका झुकाव सख्तीके बजाय नरमीकी ओर अधिक था। उसने अपना आचरण कट्टर सुन्नी मुसलमानके आदर्शोंके अनुसार बनाया। उसका व्यक्तिगत जीवन बहुत सादा, साधु-सन्तोंको तरह था। वह बहुत संयमी था; उसने एक धार्मिक मुसलमानके लिए वर्जित सभी भोजनों और पेय पदार्थोंका परित्याग कर दिया। बहुत हद तक वह साहसी और अध्यवसायी तो था ही वह सुसंस्कृत और सुरुचिपूर्ण व्यक्ति भी था। परन्तु इन प्रशंसनीय गुणोंके अतिरिक्त उसमें एक बड़ा दुर्गुण यह था कि वह शक्की और संकुचित मनोवृत्तिका आदमी था और इस एक दुर्गुणने उसके सारे सद्‌गुणों पर पर्दा डाल दिया था। इस पृथ्वी पर वह किसीका विश्वास न करता था और परिवारके प्रति उसमें तनिक प्रेम न था। अपने पिता, भाइयों तथा लड़कोंके साथ उसने समान रूपसे निष्ठुरताका व्यवहार किया। वह स्वयं जैसा षड्‌यंत्र-प्रेमी रह चुका था, वैसे ही दूसरोंकी ओरसे भी

उसके चरित्र के दोष

उसे षड्यंत्रोंकी आशंका बनी रहती थी। इस सन्देहशील प्रवृत्तिके साथ धर्मान्धता ने मिलकर उसे अदूरदर्शी बना दिया था और वह अपने साम्राज्यके हितको प्रमुखता न दे पाया। उसका मजहबी जोश गुमराह तो जरूर था, लेकिन उसकी ईमानदारीमें शक नहीं किया जा सकता। मजहबके लिए उसने सबको खतरेमें डाला, लेकिन इसका नतीजा बड़ा बुरा हुआ।

शासक के रूपमें औरंगजेब की असफलता. औरंगजेब के शासन-काल में मुग़ल-साम्राज्य अपनी चरम सीमा पर पहुंच गया। बीजापुर और गोलकुंडा पर अधिकार तथा अन्य सैनिक सफलताओंके कारण मुग़ल-साम्राज्यकी सीमा दक्षिणमें इतनी दूर तक विस्तृत हो गयी थी, जितनी दिल्ली के किसी शासकके जमानेमें नहीं हुई थी। सन् १६६१ में औरंगजेब ने तंजौर और त्रिचनापल्ली से टैक्स वसूल किया, इसलिए उस वर्षको मुग़ल-साम्राज्यके दक्षिणमें अधिकतम विकासका वर्ष मान सकते हैं।

उसके शासन-कालमें साम्राज्य अपनी चरम सीमा पर पहुंच गया

यह बड़ी दयाजनक बात है कि जिस बादशाहका राज्य सारे हिन्दुस्तान की लम्बाई-चौड़ाई में फैला हुआ हो, वह सर्वोच्च सत्ताधिकारीके रूपमें असफल सिद्ध हो। औरंगजेब के शासनकी असफलताके लिए कारण ढूंढ़ने दूर न जाना होगा। जिन दो बातोंने उसकी नीतिको असफल बनानेमें सबसे अधिक योग दिया, वे थीं उसकी असहिष्णुता और अत्यधिक शंकाशीलता। अपनी धर्मान्धताके कारण उसने हिन्दुओं पर जजिया पुनः लगा दिया और उनके मन्दिरोंको निर्ममतापूर्वक नष्ट-भ्रष्ट किया। इस नीतिसे सभी हिन्दू विरुद्ध हो गए और उसे राजपूतोंकी स्वेच्छिक सहायता नहीं मिल पायी। सुन्नी सम्प्रदायके प्रति उसकी कट्टर आस्था ने उसको बीजापुर और गोलकुंडा की शिया-रियासतोंका शत्रु बना दिया। इन दोनों राज्योंका विनाश करके उसने दक्षिणमें मुस्लिम-शक्तिको बिखरा दिया और मरहठोंके उदयके लिए मार्ग सरल कर दिया। यह एक ऐसी बात हुई, जिससे बिलकुल उल्टी चीज उसने सोची थी। संक्षेपमें यह कहा जा सकता है कि वह ऐसे साम्राज्यका शासन करनेके अयोग्य था जहां भिन्न-भिन्न जाति तथा मतमतान्तरके लोग रहते हों और जहां पर ऐसी समस्याएं हों जिनका निपटारा केवल विशाल दृष्टिकोण तथा सहानुभूतिसे हो सकता हो। दूसरे अपने शक्की मिजाज के कारण वह किसीका प्रिय न बन सका; चूंकि वह किसी पर विश्वास न करता था, इसलिए किसीने अपनेको उसके विश्वासके योग्य सिद्ध करनेकी कोशिश भी नहीं की। उसकी यह नीति थी कि एक

उसकी धर्मान्धता और शंकाशीलता

गोलकुंडा और बीजापुर के नाशका प्रभाव

शक्तिशाली सामन्तको दूसरे सामन्तसे, हिन्दूको मुसलमानसे लड़ा दिया जाय। उसके गुप्तचरोंकी संख्या अधिक थी और उन्हींके बल पर वह शासन करता था। इस तरहकी गुप्तचर्याको राज्यकी नीति बनाकर चलना असम्भव था। उसके असीम अविश्वास तथा समय-कुसमय शासन-विभागोंके कार्यमें हस्तक्षेप करनेसे अफ़सरोंमें अपनी निजी कार्यपटुता न रह गई। वे हमेशा अपना काम करनेके लिए सम्राट्का मुंह ताका करते थे। अपने-आप कुछ न कर सकते थे। दक्षिणका संघर्ष भी बहुत लम्बा खिंच गया, इससे उसकी सारी आर्थिक व्यवस्था चौपट हो गयी; फलतः शासनमें गड़बड़ी होने लगी। खाफ़ीखां ने इन कारणोंमें एक कारण और भी जोड़ा है और वह है शासन-प्रबन्धकी अयोग्यता। क़ुरान की आयतकें अनुसार चलकर औरंगजेब ने दंड-व्यवस्थाको बहुत कम लागू किया। इस नरमीका प्रभाव यह हुआ कि सामन्तोंमें फूट फैल गयी और शासन-सूत्र अस्त-व्यस्त हो गया। «सक्षेपमें यह कह सकते हैं कि औरंगजेब इसलिए असफल हुआ, क्योंकि उसने धर्मको राजनीतिज्ञता पर हावी हो जाने दिया।»

दक्षिणकी लड़ाइयोंका विनाशकारी प्रभाव

कुशासन

कुछ फुटकर बातें

डॉक्टर गेमेल्ली-करेरी का लेख. इटालियन वकील डॉक्टर गेमेल्ली-करेरी ने दक्षिण-संघर्षके समय औरंगजेब के शिविर और दरबारका अच्छा चित्रण किया है। यह यात्री सन् १६६५ में गलगुला में औरंगजेब के सामने उपस्थित किया गया। उस समयका वर्णन करते हुए यात्रीने लिखा है कि वृद्ध बादशाह सादी, सफ़ेद पोशाक पहने हुए था, जिसमें एक रेशमी कमरबन्द लिपटा हुआ था। उसके ताजमें सोनेकी पट्टी लगी हुई थी और एक लालके चारो ओर चार छोटे जवाहरात जड़े हुए थे। औरंगजेब ने इटालिन यात्रीकी अच्छी आवभगत की और उससे उन दिनों तुर्की और हंगरी में चलनेवाली लड़ाईके सम्बन्धमें समाचार पूछे। यात्रीने लिखा है कि 'बादशाहका क़द छोटा, नाक लम्बी और धड़ बुढ़ापेके कारण झुका हुआ था, परन्तु इस वृद्धावस्था में भी वह बिना चश्मेकी सहायताके आज्ञापत्रों पर हस्ताक्षर कर लेता था। बादशाहका व्यक्तिगत स्वभाव बहुत सादा था। 'वह बहुत कम सोता था, अधिकांश समय नमाज़में बिताता था, शाकाहार करता था और बहुधा उपवास रखता था।' यह एक उल्लेखनीय बात है कि इस बुढ़ापे में भी अपने दिमाग़में जंग लगने देना या अपने शरीरको परिश्रमसे

औरंगजेब की वृद्धावस्था

उसकी आदतें

जुगाना उसे बरदाश्त न था। यद्यपि व्यक्तिगत जीवनमें सीध-सादे ढंगसे रहता था, परन्तु दरबारके समय वह शान-शौकतमें किसी तरहकी ढील न आने देता था।

शाही खेमेका घेरा ही लगभग तीन मीलमें था और पूरे शिविर का क्षेत्रफल तो ३० मीलसे कम न था। शिविर में ५ लाख आदमी रहते थे। कई बाज़ार थे, जिनमें हर तरहकी चीजें बिकती थीं। शिविरोंका वर्णन

जाटों, अफ़ग़ानों और सिक्खोंके साथ संघर्ष. औरंगज़ेब के शासन-कालमें मथुरा के जाट बहुधा उत्पात मचाया करते थे। पहला विद्रोह गोकुल नामक व्यक्तिके नेतृत्वमें सन् १६६९ में हुआ था, परन्तु काफ़ी लड़ाईके बाद उसे दबा दिया गया। लेकिन जाटोंने अपनी आदत न छोड़ी और जिन दिनों औरंगज़ेब दक्षिण गया हुआ था, उन दिनों उन्होंने कई विद्रोह किये। सन् १६९१ ई० में उन्होंने अकबर की क़ब्रको खोद डाला। असलमें औरंगज़ेब के शासन-कालमें जाटोंको दबाया नहीं जा सका। जाटोंका विद्रोह

सन् १६७२ के लगभग सरहद पर अफ़ग़ान उपद्रव मचाने लगे। शाही सेना उनका कुछ बिगाड़ न पाती थी। अफ़ग़ानोंसे सन् १६७८ तक संघर्ष चलता रहा, अन्तमें उसी साल उनसे सुलह हुई। अफ़ग़ान-युद्धका राजनीतिक परिणाम बड़ा हानिकार रहा। प्रोफ़ेसर सरकार के शब्दोंमें 'सर्वोत्तम मुग़ल-सेनाके उत्तरी-पश्चिमी सीमान्तकी ओर चले जानेसे शिवाजी को आरामसे सांस लेनेका अवकाश मिल गया।' अफ़ग़ान-युद्ध और उसका परिणाम

सिक्ख एक सम्प्रदायके रूपमें संगठित हो गये थे और उन्होंने पंजाब में शाही हुकूमतकी उपेक्षा करना शुरू कर दिया था। नवें गुरु तेग़बहादुर को औरंगज़ेब ने सन् १६७५ में इसलिए मरवा डाला, क्योंकि उन्होंने इस्लाम क़बूल करनेसे इनकार कर दिया था। सिक्खोंके गुरु तेग़बहादुर की हत्या

उत्तराधिकारके युद्धमें औरंगज़ेब की सफलताके कारण. यह कुछ विचित्र मालूम होगा कि जिस औरंगज़ेब ने अपने पिताके साथ इतना दुर्व्यवहार किया, अपने भाइयों और भतीजोंके खूनसे तलवार रंगी, उसको शक्तिशाली सामन्तों और सेनापतियोंका सहयोग राजगद्दी हथियानेमें कैसे मिल पाया! इसका रहस्य यही है कि वह कट्टर मुसलमानोंकी धर्मान्धताको दाराशिकोह के उदार और इस्लाम-विरोधी विचारों पर प्रहार करके अपने अनुकूल बना सकता था। अकबर के जमानेसे ही शाही दरबारमें मुसलमानोंका एक ऐसा दल था जिसे बादशाहकी धार्मिक उदारता पसन्द न थी। उसकी मृत्युके बाद कट्टर मुसलमानोंकी यह पार्टी शक्तिशाली हो गयी और उसका प्रभाव बढ़ता गया। ऐसे मज़हबकी आड़में औरंगज़ेब ने सफलता प्राप्त की

मुसलमानोंकी दृष्टिमें दारा की तरह स्वतंत्र विचारक, शुजा की तरह विलासप्रिय और मुराद की तरह मदिराभोगी व्यक्ति राजगद्दीके लिए सर्वथा अयोग्य थे। दूसरी ओर औरंगजेब के सादे जीवन, धार्मिक कट्टरता, बल्कि धर्मान्धता, ने उन मुसलमानोंका ध्यान अधिक आकर्षित किया और उनकी दृष्टिमें वही एक ऐसा व्यक्ति था जो आदर्श मुसलमान शासक हो सकता था। चूंकि वह बहुत चालाक था, इसलिए अनुचित काम करते हुए भी वह ऐसा दिखाता था मानों धार्मिक श्रद्धा-वश वह यह कर्म कर रहा हो। अतएव वे मुसलमान हमेशा उसके वफ़ा-दार रहे। इस प्रकार हम देखते हैं कि उत्तराधिकारके युद्धमें मज़हब एक प्रमुख कारण था और औरंगजेब ने चालाकीसे उसका उपयोग अपने हितमें किया।

अंग्रेजोंके साथ सम्बन्ध. यह पहले ही बताया जा चुका है कि बंगाल का गवर्नर शाइस्ताखां अंग्रेजों पर नाराज हो गया था और सन् १६८८ में उसने उन्हें बंगाल से बाहर निकाल दिया था। सूरत के प्रेसीडेण्ट सर जान चाइल्ड ने इतनी उतावली की कि औरंगजेब की सत्ता की भी उपेक्षा कर दी। फलतः औरंगजेब बड़ा नाराज हुआ। उसने सूरत-स्थित अंग्रेजोंकी फ़ैक्टरी पर क़ब्जा कर लिया और उनको अपने राज्यसे निकाले जानेकी आज्ञा दे दी। अंग्रेजोंने किसी तरह बादशाहसे समझौता किया। औरंगजेब ने जॉब चारनक को कलकत्ता में एक फ़ैक्टरी खोलनेकी अनुमति दे दी (१६९०)।

अध्याय १४

औरंगज़ेब के उत्तराधिकारी

[बहादुरशाह (१७०७-१७१२)]

उत्तराधिकारके लिए लड़ाई. औरंगज़ेब की मृत्युके बाद राजगद्दी पानेके लिए उसके लड़कोंमें संघर्ष छिड़ गया। गृहयुद्ध रोकनेके लिए औरंगज़ेब ने एक वसीयतनामा लिख दिया था, जिसमें उसने अपने पुत्रोंमें साम्राज्यके बंटवारेकी एक योजना सुझाई थी, लेकिन उनमें से कोई लड़का पूरेसे कम लेनेको तैयार नहीं था। सबसे बड़ा शाहज़ादा मुअज्ज़म उस समय काबुल में था और शाहज़ादा आज़म तथा शाहज़ादा कामबख़्श दक्षिणमें थे। उनमें से हरेकने अपनेको बादशाह घोषित कर दिया और शाही पदवी धारण कर ली। मुअज्ज़म तेज़ीके साथ काबुल से चला और लाहौर के योग्य गवर्नर मुनीमख़ाँ की मदद पाकर उसने आगरा के निकट जाजो नामक स्थानमें सन् १७०७ ई० में आज़म को हरा दिया। आज़म की मृत्यु युद्धमें ही हो गई और मुअज्ज़म «बहादुरशाह» के नामसे गद्दी पर बैठा। नये बादशाह ने शाहज़ादा कामबख़्श को अपने पक्षमें लाने के लिए काफ़ी रियासत देनी चाही, लेकिन वह राजी न हुआ, इसलिए बहादुरशाह ने उसके विरुद्ध कूच किया और हैदराबाद के निकट उसे हरा दिया। कामबख़्श घायल होकर सन् १७०९ में मर गया।

औरंगज़ेब के तीन लड़कों ने गद्दी पानेकी कोशिश की

बहादुरशाह की नीति. बहादुरशाह ने समझौता-नीति अपनाकर अपने पिताके द्वारा बिगड़ी हुई बाजीको बना लेना चाहा। उसने शाहू को रिहा करके मरहठोंको खुश कर लिया। औरंगज़ेब ने शाहूको उसके पिता शम्भाजी के साथ ही गिरफ़्तार किया था। शाहू की रिहाई मरहठों से समझौता रखनेकी नीतिका परिचायक तो थी ही, किन्तु उसका एक कूटनीतिक परिणाम भी हुआ। शाहू के पहुंचते ही उसके चाचा राजाराम की विधवा «ताराबाई» उसकी प्रतिद्वन्द्विनी हो गई। इस सिलसिलेमें जो गृहयुद्ध हुआ, उसमें मरहठे उलझे रहे, इसलिए उन्होंने शाही सरकारको परेशान न किया।

उसने राजपूतों और मरहठोंसे समझौता कर लिया

बहादुरशाह ने ऐसी शर्तों पर राजपूतों के साथ समझौता किया, जिनसे एक तरहसे उसने उनकी स्वतंत्रता स्वीकार कर ली। राजपूत पुनः उसी

राजपूतोंके साथ उसका सम्बन्ध

स्थितिमें आ गये, जिस स्थितिमें वे अकबर के शासन-कालमें थे।

बन्दा की विनाश-लीला रोकी गयी

सिक्खोंका विद्रोह. बहादुरशाह को सबसे बड़ा खतरा सिक्खोंकी ओरसे झेलना पड़ा। औरंगजेब की दमनात्मक नीतिके कारण सिक्ख एक सैनिक जातिके रूपमें संगठित हो गये थे। अपने नेता बन्दा बैरागीके नेतृत्वमें उन्होंने सरहिन्द शहर पर हमला किया और वहांके मुसलमानोंसे भयंकर प्रतिशोध लिया। उनका खतरा इतना बढ़ा कि स्वयं बहादुरशाह को उनको दबानेके लिए कूच करना पड़ा। उसने सिक्खोंको हरा दिया और उन्हें पहाड़ोंमें भगा दिया, किन्तु बन्दा बच निकला।

बहादुरशाह का चरित्र

उसकी मृत्यु. बहादुरशाह सन् १७१२ ई० में मर गया। जब वह गद्दी पर बैठा तब क़ाफ़ी बूढ़ा हो चुका था। वह अच्छे स्वभावका उदार, क्षमाशील तथा व्यक्तिगत जीवनमें निष्कलंक चरित्रका व्यक्ति था। उसका प्रमुख दुर्गुण यह था कि वह राज्य-कार्यकी ओरसे बहुत उदासीन रहता था, इसीलिए उसको लोग 'लापरवाह बादशाह' के नामसे भी जानते हैं। अगर वह नौजवान होता तो इसमें सन्देह नहीं कि अपनी समझौतावादी नीति और धार्मिक सहिष्णुताके कारण उसने तेज़ीसे बिखरते हुए साम्राज्यको स्थिर रखनेकी दिशामें बहुत-कुछ सफलता प्राप्त कर ली होती।

/त्तराधिकार के लिए संघर्ष

जहांदारशाह. बहादुरशाह के देहान्तके बाद पूर्ववत् उसके चारों लड़कोंमें उत्तराधिकारके लिए युद्ध हुआ। उनमेंसे सबसे योग्य बंगाल का गवर्नर «अज़ीमुश्शान» सबसे पहिले मारा गया। दो और शाहज़ादे लड़ाईमें मारे गये। जहांदारशाह, जो उन सबमें बड़ा और सबसे निकम्मा था, ज़ुलफ़िक़ारखां की सहायतासे बादशाह बन बैठा। वह निकम्मा और ऐयाश था। ग्यारह महीने तक गौरवहीन-शासन करनेके बाद वह अपने भतीजे फ़र्रुखसियर द्वारा हराया और मार डाला गया। फ़र्रुखसियर की मदद दो प्रसिद्ध सैयद भाई कर रहे थे, जिनमें से एक हुसेनअली बिहार का गवर्नर था और दूसरा अब्दुल्ला इलाहाबाद का गवर्नर था।

सैयद-बन्धुओं का उदय

फ़र्रुखसियर. (१७१३-१७१९). नया शाहंशाह तो नाममात्रके लिए था, वास्तविक सत्ता तो सैयद-बन्धुओंके हाथमें थी, जिन्होंने उसे गद्दी पर बैठाया था। अब्दुल्ला वज़ीर बन गया और हुसेन दक्षिणका वाइसराय नियुक्त हुआ।

ये दोनों भाई इतने शक्तिशाली हो गये कि वे जिसे चाहते, उसे गद्दी पर बैठाते और जिसे चाहते उसे गद्दीसे उतार देते थे, इसीलिए ये इतिहास में 'राजा बनानेवाले' ('किंग मेकर्स') के नामसे प्रसिद्ध हैं।

फ़र्रुख़सियर के शासन-कालकी सबसे प्रमुख घटना रही सिक्खोंके विरुद्ध सफल संघर्ष। काफ़ी मार-काटके बाद वे हरा दिए गए और उनके नेता बन्दा की निर्मम हत्या की गयी। उनके लगभग एक हज़ार अनुयायियोंको पीछा करके उन्हें मार डाला गया। सिक्ख कुछ समयके लिए कुचल दिए गए (१७१५ ई०)।

सिक्खोंका विद्रोह पूर्णतया कुचल दिया गया

दक्षिणमें मरहठोंने हुसेनअली को बहुत परेशान किया। अन्तमें उसे एक असम्मानप्रद सन्धि करनेके लिए बाध्य होना पड़ा। उसने शाहू का समस्त दक्षिण पर चौथ और सरदेशमुखी वसूल करनेका अधिकार मान लिया, परन्तु फ़र्रुख़सियर ने इस सन्धि पर अपनी अनुमति नहीं दी।

मरहठोंके साथ सम्बन्ध

बादशाह सैयद-बन्धुओंके चंगुलसे छुटकारा पानेके लिए उनके विरुद्ध षड्यंत्र करने लगा। उसकी योजनाओंको असफल बनानेके लिए हुसेन अली दक्षिणसे कुछ मरहठा घुड़सवारोंके साथ चला और फ़र्रुख़सियर को गद्दीसे उतारकर उसकी हत्या कर दी (१७१९ ई०)।

फ़र्रुख़सियर की हत्या

फ़र्रुख़सियर के शासन-कालमें ही ईस्ट इंडिया कम्पनी ने महत्वपूर्ण व्यापारिक सुविधाएं प्राप्त कीं, जैसे चुंगीसे छूट। एक अंग्रेज़ डॉक्टर हैमिल्टन ने बादशाहकी चिकित्सा की थी, उसीके बदलेमें उसने कम्पनीको ये सुविधाएं प्रदान कीं।

ईस्ट इंडिया कम्पनीके साथ सम्बन्ध

मुहम्मदशाह (१७१९-१७४८). फ़र्रुख़सियर की हत्याके बाद सैयद-बन्धुओंने एक-एक करके चार कठपुतली बादशाहोंको गद्दी पर बैठाया, लेकिन उनमें से सभी छः महीनेके भीतर ही मर गए। तब सैयद-बन्धुओंने औरंगजेब के एक दूसरे वंशज मुहम्मदशाह को गद्दी पर बैठाया, जिसने सन् १७४८ तक शासन किया।

सैयद-बन्धुओंका प्रभुत्व कई सामन्तोंको अखरता था, इसलिए दक्षिण के भूतपूर्व गवर्नर «चिन किलिचखां» के नेतृत्वमें एक प्रतिद्वन्द्वी दल बन गया, जिसे अवधके गवर्नर सहादतखां का सहयोग भी प्राप्त था। चिन किलिचखां ने खुला विद्रोह कर दिया और सैयदोंकी सेनाको दो बार शिकस्त दी। बादशाह गुप्त रूपसे चिन किलिचखां की सहायता कर रहा था, क्योंकि उसे सैयदोंके चंगुलसे छूटनेका यही एक उपाय दिखाई दिया। हुसेनअली विद्रोह दबानेके लिए आगे बढ़ा, परन्तु रास्तेमें ही उसकी हत्या कर दी गयी। अब्दुल्ला भी हरा दिया गया और गिरफ़्तार कर लिया गया। इस प्रकार सैयदोंकी प्रभुताका अन्त हुआ।

सैयद-बन्धुओं का पतन

चिन किलिचखां वज़ीर बना दिया गया, परन्तु बादशाहकी अयोग्यता और दुर्व्यवहारसे वह असन्तुष्ट होकर दक्षिण चला गया और वहां अपने को स्वतंत्र घोषित कर दिया। हुसेनअली ने मरहठोंके साथ जो सन्धि

मरहठोंकी मांगें मान ली गयीं

की थी, जिसे फ़र्रुखसियर ने स्वीकृत नहीं किया था, उसे मुहम्मदशाह ने मंजूर कर लिया। इस सन्धिके अनुसार मरहठोंको समस्त मुग़ल-साम्राज्य-गत दक्षिण प्रदेशमें 'चौथ' और 'सरदेशमुखी' वसूल करनेका अधिकार दे दिया गया।

साम्राज्यकी कड़ियाँ बिखरने लगीं. मुहम्मदशाह के शासन-काल में मुग़ल-साम्राज्य विशृंखलित होने लगा। यों तो बहादुरशाह के शासन में ही साम्राज्यकी कड़ियां टूटनी शुरू हो गयी थीं, परन्तु मुहम्मदशाह के जमानेमें इसकी पूर्ण परिणति हो गयी। दक्षिणमें चिन किलिचखाँ ने, जो «आसफ़जाह निज़ामुल्मुल्क» के नामसे अधिक प्रख्यात है, अपना स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिया (१७२४), जिसकी राजधानी हैदराबाद हुई। आसफ़जाही राजवंशका संस्थापक चिन किलिचखाँ ही था। अभी तक हैदराबाद में इसी वंशका निज़ाम था। इसी समय अवध के गवर्नर सआदतखां ने भी अवध में स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिया, जो ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासनके अन्त तक रहा। इसी प्रकार बंगाल के गवर्नर «अलीवर्दीखां» ने भी बादशाहकी वफ़ादारी छोड़कर अपने सूबेको स्वतंत्र सल्तनतका रूप दे दिया। आजकल जिस प्रदेशको हम रुहेलखंड कहते हैं, उसमें रुहिल्ला नामक एक अफ़ग़ान-क़बीलेने स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिया।

दक्षिण, अवध और बंगाल दिल्ली के नियंत्रणसे स्वतंत्र हो गए

शाही सरकारके कमज़ोर हो जानेसे न केवल सूबोंमें विद्रोह होने लगे वरन् अन्य दिशाओंसे भी आक्रमण होने लगे। पेशवा बाजीराव के नेतृत्व में मरहठे दिल्ली के आस-पास तक लूट-मार करने लगे। इसी बीच ईरान का बादशाह नादिरशाह हिन्दुस्तान में आया और उसने दिल्ली को बुरी तरह बरबाद कर दिया। अहमदशाह अब्दाली ने भी पहली बार भारत पर आक्रमण किया। अपने दूसरे आक्रमणमें उसने पंजाब को मुग़ल-साम्राज्यसे छीन लिया। ह्रासका यह क्रम चलता रहा; दिल्ली की गद्दी पर कोई ऐसा शक्तिशाली शासक न था, जो इसकी तेज गतिको रोकता।

साम्राज्यकी निर्बलतासे आक्रमण-कारियोंको प्रोत्साहन मिला

नादिरशाह का हमला. मुग़ल-साम्राज्यकी हिलती हुई दीवारको एक विदेशीके आक्रमणने आखिरी धक्का दिया। वह विदेशी था—नादिरशाह। इसने एक लुटेरेकी हैसियतसे अपनी जिन्दगी शुरू की और सैनिक योग्यताके बल पर ईरान का बादशाह बन बैठा। दिल्ली-सरकार की कमज़ोरीसे उसे इस देशको लूटनेका लोभ हुआ। उसने ग़ज़नी और काबुल पर अधिकार कर लिया और एक मामूली बहाना लेकर पंजाब पर हमला कर दिया। वहांसे वह दिल्ली की ओर बढ़ा। दिल्ली जब

केवल सौ मील रह गयी थी, तब तक उसका किसीने विरोध न किया। करनाल के निकट उसका सामना शाही सेनासे हुआ, जिसके पैर उसने पूरी तरह उखाड़ दिये (१७३९)। मुहम्मदशाह ने प्रतिरोधका कोई परिणाम निकलता न देखकर विजेताके आगे आत्मसमर्पण कर दिया। नादिरशाह ने उसका सम्मान किया। इसके बाद नादिर मुहम्मदशाहके साथ दिल्ली में घुसा, उसने नागरिकोंसे किंचित् दुर्व्यवहार न किया, परन्तु किसीने उसके मारे जानेकी झूठी खबर फैला दी, इस पर नागरिकों ने बहुतसे ईरानी सैनिकोंको मार डाला। इस घटनासे क्रुद्ध होकर नादिरशाह ने क़त्लेआमकी आज्ञा दे दी। नौ घंटे तक दिल्ली शहर में आगजनी, क़त्ल, लूट और बलात्कार का दौरदौरा रहा। अन्तमें मुहम्मदशाह के अनुरोध पर उसने यह विनाश-लीला बन्द करायी। नादिरशाह ने दिल्ली के प्रत्येक वर्गके नागरिकसे कठोरतापूर्वक धन वसूल किया और ५८ दिन यहां ठहरनेके बाद धन-सम्पत्तिसे मालामाल होकर ईरान लौट गया। साथमें वह शाहजहां का जगत्-प्रसिद्ध मयूर-सिंहासन भी लेता गया। मुहम्मदशाह से उसने एक समझौता किया, जिसके अनुसार सिन्धु नदीके पश्चिमके सारे प्रदेश पर उसका अधिकार हो गया और इस प्रकार अफ़ग़ानिस्तान मुग़ल-साम्राज्यसे निकल गया।

करनाल में शाही सेना की हार

दिल्ली की बरबादी

नादिरशाह की सफलतासे मुग़ल-साम्राज्यका खोखलापन स्पष्ट हो गया और उसकी सारी प्रतिष्ठा धूलमें मिल गयी। उत्तर-पश्चिमसे अफ़ग़ानोंने और दक्षिणसे मरहठोंने अपना आक्रमण जारी रखा। मुग़ल-साम्राज्यमें इतनी ताक़त न थी कि उनका मुक़ाबला करता। वह क्रमशः समर्पण करता गया। जिन प्रान्तों पर अभी तक मरहठोंका धावा न हुआ था, उनको भी बरबाद करके नादिरशाह ने साम्राज्यमें पहलेसे ही फैली हुई आर्थिक अव्यवस्थाको और बढ़ा दिया। वास्तवमें नादिर के हमलेने मुग़ल-साम्राज्यको मरणान्तक चोट पहुंचायी।

परिणाम

नादिरशाह के हाथों मुग़ल-साम्राज्यको मरणान्तक धक्का लगा

अहमदशाह दुर्रानी का पहला आक्रमण. सन् १७४७ में नादिरशाह की मृत्यु हो गयी। उसके बाद उसके राज्यके पूर्वी प्रदेशों पर दुर्रानी या अब्दाली नामक अफ़ग़ान-क़बीलेके सरदार अहमदशाह ने अधिकार कर लिया। नादिरशाह की तरह उसने भी पंजाब पर सन् १७४८ में आक्रमण किया, परन्तु सरहिन्द के निकट युवराज अहमद और वज़ीर ने उसको गहरी शिकस्त दी। उसी साल मुहम्मदशाह मर गया।

अहमदशाह अब्दाली पीछे हट गया

अहमदशाह (१७४८-१७५४). मुहम्मदशाह की मृत्युके बाद उसका लड़का अहमदशाह गद्दी पर बैठा। उसके संक्षिप्त शासन-कालमें कई उपद्रव हुए। रुहेलोंने विद्रोह कर दिया। उनको दबानेके लिए शाही

अहमदशाह अब्दाली का दूसरा हमला

सरकारको मरहठोंकी सहायता लेनी पड़ी। अहमदशाह दुर्रानी ने पंजाब पर दूसरी बार आक्रमण किया और इस बार पूरे पंजाब प्रान्तको छीन लिया। ये आपत्तियां तो आयी हुई थीं ही, इसी बीच नवाब वज़ीर और आसफ़जाह के पोते ग़ाज़ीउद्दीन में गृहयुद्ध छिड़ गया। ग़ाज़ीउद्दीन विजयी हुआ और उसने नवाबको अवध की ओर खदेड़ दिया। इसके बाद उसने स्वयं वज़ीर का पद ग्रहण किया और सन् १७५४ में अहमदशाह को अन्धा बनाकर गद्दीसे उतार दिया।

अहमदशाह अब्दाली का तीसरा आक्रमण

आलमगीर द्वितीय (१७५४-१७५६ ई०). ग़ाज़ीउद्दीन ने जहांदारशाह के एक लड़के को गद्दी पर बैठाया, जिसने आलमगीर (द्वितीय) की उपाधि धारण की। अब ग़ाज़ीउद्दीन राज्यमें सर्वशक्तिशाली व्यक्ति हो गया। उसने षड्यंत्र करके पंजाब पर अधिकार कर लिया और इस प्रकार अहमदशाह दुर्रानी को पुनः आक्रमण करनेके लिए उकसाया। अहमदशाह ने दिल्ली पर क़ब्जा कर लिया और बुरी तरह उसे बरबाद किया। मथुरा में भी उसने लूट-मार की (१७५६ ई०)। अहमदशाह अब्दाली का यह तीसरा आक्रमण था। सन् १७५९ में आलमगीर (द्वितीय) की हत्या कर दी गयी और उसके बाद उसका लड़का शाहआलम गद्दी पर बैठा।

दिल्ली पर मरहठोंका आधिपत्य

शाहआलम. अहमदशाह दुर्रानी के चले जानेके बाद ग़ाज़ीउद्दीन ने शासनकी बाग़डोर अपने हाथमें सम्हाली। शाहआलम तो नाम मात्रके लिए बादशाह था। अपने दुर्व्यवहारके कारण ग़ाज़ीउद्दीन ने अपने चारों ओर कई शत्रु उत्पन्न कर लिये। अपने प्रतिद्वन्द्वियोंको दबानेके लिए उसने मरहठोंकी सहायता ली। पेशवा बालाजीराव के भाई राघोबा के नेतृत्वमें मरहठे दिल्ली में प्रविष्ट हुए। इसके बाद उन्होंने समूचे पंजाब को जीत लिया। मरहठोंकी इस उन्नतिसे मुस्लिम-शक्तियोंके कान खड़े हो गये और वे अहमदशाह दुर्रानी के नेतृत्वमें संगठित हुईं। पानीपत के ऐतिहासिक मैदानमें मरहठोंकी ताक़त कुचल दी गयी और उनके साम्राज्यवादी सपने धूलमें मिल गये (१७६१)।

पानीपत की तीसरी लड़ाई

पानीपत की लड़ाईके बाद अहमदशाह दुर्रानी ने शाहआलम को दिल्ली का बादशाह स्वीकार कर लिया। सन् १७६५ में शाहआलम ने सालाना पेंशनके बदले अंग्रेजोंको बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी सौंप दी। परन्तु जब वह ब्रिटिश छत्रच्छाया से निकलकर मरहठोंकी शरण में चला गया तब उसकी पेंशन अंग्रेजोंने बन्द कर दी।

मुग़लोंका अन्त. शाहआलम सन् १८०६ में मर गया और उसके बाद उसका लड़का «अकबर» गद्दी पर बैठा, जिसका नाममात्रका

शासन १८२७ तक रहा। उसका लड़का बहादुरशाह (द्वितीय) इन कठपुतली बादशाहोंकी श्रेणीका अन्तिम बादशाह हुआ। उसने सन् १८५७ के सिपाही-विद्रोहमें भाग लिया। इस अपराधके लिए अंग्रेजों ने उसे गिरफ्तार करके रंगून में निर्वासित कर दिया। वहां सन् १८६२ में उसका देहान्त हो गया। इस प्रकार बाबर के राजवंशका अन्त हुआ।

मरहठा-शक्तिका विकास

(सन् १७६१ तक मरहठों और मुग़लोंका सम्बन्ध)

(क) हम पहिले ही देख चुके हैं कि औरंगजेब मरहठोसे संघर्ष करनेमें किस बुरी तरह असफल रहा। उसने शम्भाजी को मरवा डाला और जमानतके रूपमें उसके नाबालिग़ लड़के शाहू को रोक रखा। कुछ मरहठा-क़िले भी अधिकारमें कर लिए। परन्तु मरहठोंकी छापामार युद्ध-पद्धतिने उसकी नाकमें दम कर दिया। शम्भाजी के भाई राजाराम के नेतृत्वमें और उसकी मृत्युके बाद उसकी वीर विधवा ताराबाई के नेतृत्वमें मरहठों ने मुग़ल-सेनाको इतना परेशान किया कि अन्तमें औरंगजेब को हार मान कर अहमदनगर वापस लौट जाना पड़ा। ताराबाई अपने नाबालिग़ पुत्र शिवाजी (तृतीय) की संरक्षिका बनकर शासन-कार्य चलाती रहीं।

बहादुरशाह के जमानेमें शाहू और ताराबाई के लड़के शिवाजी (तृतीय) में गृहयुद्ध छिड़ गया

(ख) औरंगजेब के मरनेके बाद उसके लड़के बहादुरशाह ने मरहठों से समझौता करनेके लिए शाहू को रिहा कर दिया। यह एक बड़ी कूटनीतिक चाल थी, क्योंकि इसने मरहठोंको दो विरोधी दलोंमें बांट दिया, एक दल शाहू का पक्ष ले रहा था, दूसरा ताराबाईके लड़के शिवाजी (तृतीय) का। शाहू सतारा में अपनी कचहरी करता था और शिवाजी (तृतीय) कोल्हापुर में। इस मामलेको लेकर मरहठोंमें जो गृहयुद्ध हुआ, उसने उन्हे कमजोर कर दिया और वे उस बीच मुग़ल-साम्राज्यको भी कोई हानि न पहुंचा सके।

(ग) **पेशवाओंका उदय: बालाजी विश्वनाथ.** शाहू का लालन-पालन मुसलमानी तरीक़े पर हुआ था, इसलिए वास्तवमें उसको मरहठों की महत्त्वाकांक्षासे कोई सहानुभूति न थी और वह स्वभावका भी आलसी था, इसलिए उसने राज्य-कार्यका सारा भार कोंकण के एक ब्राह्मण बालाजी विश्वनाथ, जिसे उसने सन् १७१४ में अपना पेशवा नियुक्त किया था, के हाथोंमे छोड़ दिया। बालाजी विश्वनाथ असाधारण योग्यता-सम्पन्न व्यक्ति था। उसका प्रभाव भीतर-बाहर सर्वत्र फैल गया। उसने आपसी फूटके कारण जर्जरित राज्यमें व्यवस्था और

उसने समस्त दक्षिणसे चौथ और सरदेशमुखी वसूल करने का अधिकार प्राप्त कर लिया

सुशासन स्थापित किया। अपने कौशलसे उसने राज्यमें पेशवाको सर्वोच्च अधिकारी बना दिया, यहां तक कि राजा भी पृष्ठभूमिमें पड़ गया। इसके बाद उसने हुसेनअली (सैयद-बन्धुओंमें से एक) से समस्त दक्षिण पर चौथ और सरदेशमुखी-कर लगानेका अधिकार प्राप्त करके मरहठा-प्रभावमें वृद्धि की। तत्पश्चात् उसने फ़र्रुखसियर को राज्यच्युत करनेमें हुसेनअली की सहायता की। दिल्ली के राजकाजमें मरहठोंके हस्तक्षेपका यह पहिला उदाहरण था। उसने मुहम्मदशाह से हुसेनअली के साथ की हुई सन्धिको स्वीकार कराके मुग़ल-दरबारमें भी अपने प्रभावका सिक्का जमा लिया। सन् १७२० में उसकी मृत्यु हो गयी।

मरहठा-सरकारमें परिवर्तन. पेशवाओंके उदयके पश्चात् मरहठा-सरकारमें उल्लेखनीय परिवर्तन हुए। सन् १७२७ में राजा शाहू ने अपने पेशवा बाजीराव को पूरे अधिकार दे दिए। तबसे पेशवा, जो उस समय तक उपमंत्री ही समझा जाता था, राज्यका सबसे शक्तिशाली व्यक्ति बन गया, यहां तक कि राजा भी छायावृत्त हो गया। राजाके हाथसे पेशवा के हाथमें सत्ता आनेके बाद राज्यकी नीति भी बदली। अब मरहठों का मुख्य प्रयत्न दूसरे देशोंको छीनना न होकर उनसे बलात् 'चौथ' और 'सरदेशमुखी' वसूल करके उन्हें अपने प्रभाव-क्षेत्रमें लाना हो गया। ('चौथ' और 'सरदेशमुखी' दो तरहके टैक्स थे, जिनमें से पहिला तो मालगुजारीका एक-चौथाई होता था और दूसरा एक प्रकारका अतिरिक्त कर था, जो मालगुजारीमें से 'चौथ' की रक़म घटानेके बाद शेषका $\frac{1}{10}$ होता था)। मरहठों द्वारा सीधे शासित प्रदेशोंकी संख्या तुलनात्मक दृष्टिसे कम थी, परन्तु उनको कर देनेवाले प्रान्तोंकी संख्या बढ़ती चली गयी।

राज्योंको छीननेके बजाय मरहठोंने चौथ वसूल करना अधिक पसन्द किया

बाजीराव (१७२०-१७४०). बालाजी विश्वनाथ के बाद उसका लड़का बाजीराव उसके स्थान पर पेशवा नियुक्त किया गया, इससे यह स्पष्ट हो गया कि पेशवा की गद्दी वंशगत हो गई। बाजीराव सभी पेशवाओंमें सबसे अधिक महत्त्वाकांक्षी और योग्य था। उसका सबसे बड़ा उद्देश्य था जर्जरित मुग़ल-साम्राज्यके स्थान पर शक्तिशाली मरहठा-साम्राज्यकी स्थापना। रहे-सहे मुग़ल-राज्य पर चोट करनेकी दिशामें पहिला क़दम उसने गुजरात पर आक्रमणके रूपमें उठाया। गुजरात के राजाने चौथ और सरदेशमुखी देनेकी मरहठोंकी मांग मान ली। हैदराबादके निज़ाम आसफ़जाह भी बाजीराव की इस बढ़ती शक्तिको देखकर चौकन्ना हो गया। उसने मरहठोंमें फूट डालनेकी चाल चली, लेकिन बाजीराव ने उसकी दाल न गलने दी और उसे भी समझौता करनेके लिए

उसका लक्ष्य और नीति

मुग़ल-साम्राज्यके प्रदेशों पर बाजीराव की विजय

बाध्य किया। इसके बाद रास्तेमें मालवा और बुन्देलखंड को जीतता हुआ बाजीराव दिल्ली के सामने उपस्थित हुआ। भयभीत मुहम्मदशाह ने निजाम को अपनी सहायता के लिए बुलाया। निजाम आया तो सही, लेकिन उसको इतना परेशान किया गया कि उसने मरहठोंको मालवा और नर्वदा तथा चम्बल के बीचका प्रदेश सौंप दिया। इसी बीच बाजीराव के भाईने पुर्तगीजोंसे सालसेट और बेसीन जीत लिया। बाजीराव का देहान्त सन् १७४० में हो गया।

स्वतंत्र मरहठा सरदारोंका उदय

मरहठा-राज्य संघ. जिन दिनों बाजीराव साम्राज्यका विस्तार करनेमें व्यस्त था, उन दिनों उसने विजित प्रदेशोंसे कर वसूल करनेका भार अपने कुछ योग्य अफ़सरों पर डाल दिया था; ये थे—राणोजी सिन्धिया; मल्हारराव होल्कर और पिलाजी गायकवाड़। प्रथम दो मालवा में नियुक्त हुए थे और गायकवाड़ गुजरात में। उसी समय राजा शाहू ने भी एक मरहठा-सरदार को इसी कार्यके लिए बरार में नियुक्त किया, उसका नाम रघुजी भोंसला था। जल्दी ही ये मरहठा-सरदार स्वतंत्र शासककी तरह कार्य करने लगे, पेशवा से इनकी राजभक्ति नाममात्रको रह गई। पेशवा और इन चारों सरदारोके राज्यको मिला कर तथाकथित मरहठा-राज-संघ बना था, जिसका नेता पेशवा माना जाता था। परन्तु जैसा हम कह चुके हैं, यह राज-संघ नाममात्रको था, क्योंकि इसने संगठित होकर कभी कोई काम नहीं किया और न राष्ट्रीय हितोंकी उन्नतिके लिए इसने मिल-जुलकर कभी कोई प्रयत्न किया। इसके विपरीत परस्पर ईर्षा-द्वेष के कारण ये प्राय: झगड़ते रहते थे, यही कारण था कि वे भारत में हिन्दू-साम्राज्यकी स्थापना करनेमें असफल रहे। सिन्धिया ने ग्वालियर को, होल्कर ने इन्दौर को, गायकवाड़ ने बड़ौदा को और भोंसला ने नागपुर को अपनी राजधानी बनाया।

बालाजीराव (१७४०-१७६१). बाजीराव के देहान्तके बाद उस का पुत्र बालाजीराव पेशवा बना। उसके समयमें मरहठे हिन्दुस्तान में सर्वशक्तिशाली हो गये। उसके गद्दी पर बैठनेके कुछ दिन बाद ही रघुजी भोंसले ने बंगाल पर आक्रमण करके उसके गवर्नर अलीवर्दीखां को हराया और लूटमें बहुत-सा माल पाया। मुग़ल-बादशाह मुहम्मदशाह ने भोंसला के विरुद्ध बालाजीराव की मदद मांगी। बालाजीराव ने रघुजी भोंसला को कुछ समयके लिए लौट आनेको बाध्य किया। परन्तु रघुजी अलीवर्दीखां के पीछे पड़ा रहा और लगातार उसको इतना परेशान किया कि अन्तमें उसे कटक या उड़ीसा का प्रान्त भोंसला के हवाले करना पड़ा।

राजा शाहू की मृत्युके बाद बालाजीराव पूना चला गया और तबसे

निज़ाम के विरुद्ध युद्ध

वही महाराष्ट्र की राजधानी बन गई, सतारा की स्थिति नगण्य हो गयी। बालाजीराव ने सलावतजंग के, जो आसफ़जाह की मृत्युके बाद निज़ाम बना, विरुद्ध युद्ध किया और सफलता प्राप्त की। सन् १७५८ में कठपुतली बादशाह आलमगीर (द्वितीय) के वज़ीर ग़ाज़ीउद्दीन ने अपने प्रतिद्वन्द्वियोंके विरुद्ध मरहठोंकी सहायता मांगी। पेशवा का भाई राघोबा एक बड़ी सेना लेकर दिल्ली गया। राजधानी पर कब्ज़ा करके राघोबा ने दुर्रानी अफ़ग़ानोंको भी पंजाब से निकाल दिया। « उस समय मरहठा-शक्ति अपने गौरवकी चरम सीमा पर थी।» हिमालय से लेकर सिन्धु नदी तकका लगभग सारा पश्चिमी भारत और सुदूर दक्षिण तकका प्रदेश अब मरहठोंके आधिपत्यमें था। दिल्ली हाथमें आ ही गयी थी और पंजाब से दुर्रानी-अफ़ग़ान निकाल ही दिये गये थे, अतः कुछ समयके लिए तो ऐसा लगा कि मरहठे सारे देशको अपने अधिकारमें कर लेंगे।

पंजाब पर मरहठों का आधिपत्य

१७६० में मरहठा-शक्ति चरम सीमा पर पहुंच गयी थी

पानीपत की तीसरी लड़ाई (१७६१). मरहठोंका इस तरह प्रभुत्व बढ़ता देखकर उत्तरी भारत के सभी मुस्लिम-राज्य सतर्क हो गये। मरहठा-विपत्ति से बचनेके लिए उन्होंने अपना संयुक्त मोरचा बनाया। अवध के नवाब शुजाउद्दौला ने रुहिल्लोंसे मेल करके मरहठोंको सन्धि करनेके लिए विवश किया। अहमदशाह दुर्रानी भी पंजाब के हाथसे निकल जानेके कारण जला-भुना बैठा था, उसने भारत पर चौथी बार आक्रमण किया और सन् १७५९ में पंजाब पर अपना अधिकार कर लिया।

मरहठोंके विरुद्ध मोरचाबन्दी

सन् १७६० में मरहठोंने उत्तरी भारत पर अपने आक्रमणोंका नया दौड़ शुरू किया और दिल्ली पर पुनः अधिकार कर लिया। मरहठा-सेना का सेनापतित्व उस समय पेशवा बालाजीराव के चचेरे भाई सदाशिवराव भाऊ के हाथमें था। इसी बीच अहमदशाह अब्दाली दिल्ली की ओर बढ़ आया; रुहिल्ले तथा अवध के नवाब भी उससे आ मिले। इस प्रकार मरहठोंके विरुद्ध एक ज़बरदस्त मोरचा बन गया। शत्रु-सेनाएं पानीपत के ऐतिहासिक मैदानमें सन् १७६१ में आमने-सामने आयीं। कुछ समय तक दोनोंमें से कोई पक्ष आक्रमण करनेका खतरा उठानेको तैयार न था, परिणाम यह हुआ कि पड़े-पड़े मरहठा-सेना के भूखों मरने की नौबत आ गयी। इसलिए भाऊ के सामने दो ही रास्ते रह गये, या तो लड़े या भूखों मरे। उसने अपनी सेना को आगे बढ़नेकी आज्ञा दी। भयंकर युद्ध हुआ। पहले तो मरहठा जीतते मालूम पड़े, परन्तु शीघ्र ही पासा पलट गया; मरहठे पूर्णतया हरा दिये गये और उनके कई नेता युद्धमें काम आये। पेशवा का भाई विश्वासराव भी मारा गया। मरहठोंकी असीम हानि हुई।

युद्धके परिणाम. पानीपत में हार खानेके बाद मरहठोंका भारत में साम्राज्य स्थापित करनेका स्वप्न टूट गया। मरहठोंकी सर्वोच्च शक्ति, अर्थात् पेशवा का प्रभाव जाता रहा और उसके साथ ही मरहठोंकी एकता भी चली गयी। यद्यपि वे आगे भी एक जबरदस्त दुश्मन गिने जाते रहे, परन्तु एकछत्र अधिकारकी बात अब नहीं रही। बालाजी की मृत्युके बाद मरहठा-राज-संघ भंग हो गया और मरहठा-सरदारोंकी पारस्परिक एकता भी समाप्त हो गयी। यद्यपि आगे चलकर उन्होंने अपने पूर्व विजित प्रदेशोंमें से कइयोंको पुनः जीत लिया, तो भी यह मरहठा-सरदारोंके अलग-अलग प्रयत्नोंका परिणाम था। मरहठा-सरदारोंकी इस आपसी फूटके कारण अंग्रेजोंको उन्नति करनेका अवसर मिला।

पानीपत की हार ने मरहठोंके साम्राज्य स्थापित करने के स्वप्नको भंग कर दिया

मरहठोंकी हारके कारण. मरहठोंकी हार मुख्यतः सदाशिवराव भाऊ की नीतिके कारण हुई। जिस छापामार रण पद्धतिको अपनाकर मरहठोंने औरंगजेब के दांत खट्टे किए थे, उसको भाऊ ने अपने अन्य सेनापतियोंकी सलाहकी उपेक्षा करके त्याग दिया और आमने-सामनेकी लड़ाई लड़ी। युद्धकी नाजुक घड़ीमें होल्करका नाराज होकर अपनी सेना सहित रण-क्षेत्रसे चला जाना भी मरहठोंकी हारका एक कारण था।

राष्ट्रीय सरकारका कोई आधार न था

मरहठोंके पतनके कारण. मरहठे एक स्थायी साम्राज्य स्थापित करनेमें असफल रहे और इस असफलताके कारणोंके लिए कुछ अधिक दूर न जाना होगा। पहली बात तो यह कि शिवाजी के परिश्रमोंके बावजूद भी मरहठोंमें एकता न उत्पन्न हो सकी। कभी विचारपूर्वक इस बातका प्रयत्न न किया गया कि उन बातोंके ऊपर जोर दिया जाय, जिनसे राष्ट्र मजबूत हो। शिक्षाके प्रसारके लिए, या व्यापारकी वृद्धिके लिए अथवा जनताकी दशाको सुधारनेके लिए कोई विशेष प्रयत्न न हुए।

कोई साम्राज्य तब तक स्थायी नहीं हो सकता जब तक जनताकी भलाई उसका आधार न हो। दूसरी बात यह कि मरहठोंने कोई सुदृढ़ आर्थिक प्रणाली स्थापित न की और ऐसी प्रणालीकी अनुपस्थितिमें राजनीतिक विकास नहीं हो सकता। वे लोग जबरदस्ती उगाही हुई आय पर अवलम्बित रहते थे जो कभी कम और कभी अधिक होती थी। उन्होंने अपनी आयके लिए स्थायी स्रोत पैदा करनेका कोई प्रयत्न न किया। आखिरी बात यह कि शिवाजी की मृत्युके उपरान्त मरहठोंमें जागीरदारी की प्रथा फिरसे चालू हो गयी और परिणाम यह हुआ कि साम्राज्यमें अर्द्ध-स्वतंत्र राज्य स्थापित हो चले। ऐसे राज्यके अन्दर राज्य बनानेसे केन्द्रीय सरकार कमजोर हो गयी और मरहठोंकी शक्ति जल्दी ही पतनोन्मुखी

अच्छी आर्थिक प्रणालीका अभाव

सामन्तशाही के कारण मरहठा-सरदारोंमें खुदग़रजी आ गयी

हो गई। मरहठा-सामन्त राष्ट्रीय हितोंको भूलकर अपनी-अपनी शक्ति तथा धनके अर्जनके लिए आपसमें लड़ने लगे। यही खुदग़रज़ीकी भावना मरहठोंको पतनकी ओर ले गयी।

एक आलोचनात्मक दृष्टि

सीमा के अफ़ग़ान-क़बीले बड़ी गड़बड़ मचाते रहते थे

मुग़लोंकी उत्तर-पश्चिमी सीमा-नीति. अफ़ग़ानिस्तान तथा भारत की सीमाओंके बीचके भागमें अफ़ग़ान-क़बायली जातियां रहती हैं जो सदा भारत की सरकारको भूतकाल तथा वर्तमानमें बाधा पहुंचाती रही हैं। ये पहाड़ी क़बीले बड़े खूंख्वार तथा धर्मान्ध हैं और स्वतंत्रताके बड़े भक्त हैं, इसलिए वे किसी सुव्यवस्थित सरकारके अन्तर्गत रहना नहीं पसन्द करते। पहाड़ियोंके एकान्तमें निवास करनेके कारण वे किसी को अपने ऊपर हावी नहीं होने देते, परन्तु वे अपनी तरफ़से कोई मौक़ा सरहद पर विप्लव करनेका नहीं छोड़ते, इसीलिए मुग़ल-सम्राटोंको इसके ऊपर बड़ी निगरानी रखनी पड़ती थी।

क़न्धार का महत्त्व

अफ़ग़ान-क़बीलोंके सरकश होनेसे मुग़ल-सम्राटोंको तकलीफ़ तो होती ही थी, परन्तु इसके अतिरिक्त काबुल के शासक होनेके कारण उनको क़न्धार पर अधिकार रखना भी आवश्यक था। अफ़ग़ानिस्तान और फ़ारस के मध्यमें क़न्धार की सैनिक दृष्टिसे बड़ी महत्ता है। इसके अतिरिक्त वह उस समय व्यापारिक केन्द्र भी था। 'उस समयमें जब काबुल दिल्ली साम्राज्यका एक हिस्सा था, तब क़न्धार (मुग़लोंके) बचावकी पहली क़तार थी।' पूर्वी व्यापारका एक बड़ा केन्द्र होनेके कारण क़न्धार फ़ारस तथा हिन्दुस्तान के बीच युद्धका बड़ा कारण बन गया था।

अकबर की उत्तर-पश्चिमी सीमा-नीति

अकबर ने, जो एक पक्का साम्राज्यवादी शासक था, सीमाके क़बीलों की सरकश आदतोंको दबानेका प्रयत्न किया। अपने भाई मिर्ज़ा हकीम के मर जाने पर उसने क़ाबुल अपने साम्राज्यमें मिला लिया (१५८५ ई०)। काबुल की सुरक्षाके लिए यह बहुत आवश्यक था कि सरकश क़बीले दबाये जायं। उसने उज़बेगोंका सफलतापूर्वक दमन किया था जो अब्दुल्ला के नेतृत्वमें बहुत शक्तिशाली हो गए थे। उसने रोशनियां सम्प्रदायवालों को भी दबाया। उनका नेता जलाल, जो भारत पर आक्रमण करना

यूसुफ़ज़इयों की बग़ावत

चाहता था, ग़ज़नी में १६०० ई० में मार डाला गया। एक दूसरे क़बीले यूसुफ़ज़ई ने अकबर को बहुत तंग किया। उन्होंने सम्राट्की एक फ़ौज को हरा दिया और ८००० सिपाही तथा राजा बीरबल को मार डाला। अकबर ने तब राजा टोडरमल तथा शाहज़ादा मुराद को अफ़ग़ानियोंको

सज़ा देनेके लिए भेजा, टोडरमल ने विद्रोहियोंको बुरी तरह हराया और स्वात, बैजोर तथा बोनर के ज़िले बाग़ियोंसे खाली कर दिये गये। मुग़लों की इस बड़ी सफलतासे अब्दुल्ला उज़बेग डर गया और उसने अकबर से मित्रता कर ली। अकबर ने क़न्धार-विजय करके सब तरफ़से अपनी सीमा सुरक्षित कर ली।

क़न्धार के मामलेमें फ़ारस से सम्बन्ध

यह पहिले ही बताया जा चुका है कि क़न्धार सैनिक दृष्टिसे दिल्ली तथा अफ़ग़ानिस्तान के शासकोंके लिए बड़े महत्त्वकी जगह थी। बाबर ने इस महत्त्वको समझा था, इसीलिए उसने सन् १५२२ ई० में क़न्धार को विजित किया और काबुल तथा बादको जीता हुआ हिन्दुस्तान सुरक्षित बनाया। उसके मरने पर उसके पुत्र कामरान ने उस पर अधिकार रखा। हुमायूं ने फ़ारस की मददसे अपने भाई असकरी से क़न्धार को छीन लिया, परन्तु हुमायूं के मरने पर फ़ारस के शाह ने उस पर अधिकार कर लिया। परन्तु क़न्धार पर उज़बेगोंके आक्रमण होते ही रहते थे, इसलिए वहांके फ़ारसी गवर्नरने यह देखकर कि वह दुर्गकी रक्षा नहीं कर सकता, उसको अकबर को समर्पित कर दिया (१५९५)।

जहांगीर के समयमें क़न्धार पर फ़ारस का आक्रमण

क़न्धार के हाथसे निकल जानेसे फ़ारसवालोंको बुरा लगा, क्योंकि वह एक महत्त्वशाली जगह थी। अकबर की मृत्युके उपरान्त शाहज़ादा ख़ुसरो के विद्रोहसे जो देशमें गड़बड़ी फैल गई, उससे फ़ारसवालोंको क़न्धार वापस लेनेके लिए प्रोत्साहन मिला। फ़ारस के शाह अब्बास ने, जो उस समय एशिया के बड़े-बड़े शासकोंमें गिना जाता था, क़न्धार पर आक्रमण करनेके लिए एक फ़ौज भेजी, परन्तु मुग़ल-सेनापतिने उस फ़ौज को बड़ी बहादुरीसे हरा दिया। जहांगीर ने भी जल्दी ही वहां मददके लिए कुमुक पहुंचाई, इस पर फ़ारसवालोने घेरा उठा लिया और वापस चले गये। चालाक शाह ने यह कहा कि उसके सीमा-प्रान्तीय अफ़सरोंने उसकी रायके बग़ैर यह सब काम किया है और इस तरहसे सम्राट् जहांगीर को प्रसन्न कर लिया। उसने उस उद्देश्यकी कूटनीतिसे सिद्ध करना चाहा, जो युद्धसे सफल न हुआ था। उसने कई मरतबा मुग़ल-दरबारमें अपने दूत भेजे और क़ीमती नज़रानों तथा दोस्तीके बचनों द्वारा जहांगीर को धोखा देनेकी ठानी। मीठे-मीठे शब्दों तथा बड़े-बड़े नज़रानों ने मुग़लोंको भुलावेमें डाल दिया और उन्होंने क़न्धार के बचावकी तरफ़ ध्यान देना छोड़ दिया। इस लापरवाहीका शाह अब्बास ने फ़ायदा उठाकर क़न्धार के दुर्ग पर घेरा डाल दिया (१६२०)। जहांगीर ने क़न्धार मदद पहुंचानी चाही और शाहजहां को वहां जानेके लिए हुक्म दिया, परन्तु शाहज़ादाने जानेसे इनकार कर दिया और विद्रोह खड़ा कर दिया, क्योंकि उसको यह

शाह अब्बास ने क़न्धार पर फिरसे अधिकार कर लिया

डर था कि जब तक वह क़न्धार में रहेगा उसी बीचमें नूरजहां अपने दामाद शहरयार को ऊपर उठानेके लिए प्रयत्न करेगी और उसके हित खतरेमें हो जायंगे। शाहजहां के विद्रोहसे जहांगीर की कन्धार-सम्बन्धी योजना असफल हो गई और क़न्धार फ़ारसवालोंके अधिकारमें हो गया। शाह अब्बास ने फिर एक राजदूत जहांगीर के पास भेजा और कहा कि क़न्धार पर उसका अधिकार ठीक ही है, इसके साथ-साथ यह भी कहा कि वह सम्राट्का हमेशा दोस्त रहेगा।

शाहजहां के कालमें क़न्धार फिर से मुग़लोंके अधिकारमें आया, परन्तु पुनः हमेशा के लिए निकल गया

जब शाहजहां सम्राट् हुआ तो उसने अपना ध्यान कन्धार की ओर दिया। उसने वहांके गवर्नर अलीमर्दान को अपनी तरफ़ मिलाना चाहा परन्तु वह अडिग रहा, इस पर शाहजहां ने क़न्धार पर आक्रमण करनेकी सोची। अलीमर्दान ने दुर्गको मजबूत किया और फ़ारस के शाहको सहायता के लिए लिख भेजा, परन्तु शाह ने उसके उद्देश्यको न समझा और यह विचार करके कि वह धोखा देना चाहता है, अलीमर्दान को क़ैद करना चाहा। शाह की यह बड़ा भारी ग़लती थी। अलीमर्दान मुग़लोंसे मिल गया और सन् १६३८ ई० में दुर्गको मुग़लोंके हाथ सुपुर्द कर दिया। इस सफलतासे शाहजहां की हिम्मत बहुत बढ़ गई और उसने मध्य एशिया को जीतनेकी सोची। उसने अपने तैमूरी पुरखोंकी राजधानी समरक़न्द को जीतना चाहा, परन्तु कोई सफलता न मिली और बहुतसे आदमी मारे गये तथा बहुत-सा रुपया खर्च हुआ (देखो पृ० १४८-१४६)। फ़ारसवालों ने मुग़लोंकी इस जबरदस्त असफलताका लाभ उठाया और सन् १६४६ ई० में क़न्धार पर पुनः अधिकार कर लिया। सम्राट्ने औरंगजेब को क़न्धार वापस लेनेके लिए भेजा। औरंगजेब ने दो मरतबा आक्रमण किया, परन्तु असफल रहा। तीसरी बार दारा के नेतृत्वमें १६५३ ई० में फ़ौज भेजी गई, परन्तु उसको भी विजय प्राप्त न हुई। इस प्रकार क़न्धार हमेशाके लिए मुग़ल-साम्राज्यसे निकल गया।

क़न्धार पर आक्रमणोंकी असफलताके परिणाम

क़न्धार के तीनों आक्रमणोंकी असफलतासे सम्राट् शाहजहां को बड़ी क्षति हुई। धन तथा जन की तो हानि हुई ही, वरन् शाही सैनिक दबदबे को भी बड़ा धक्का लगा। मुग़लोंके विरुद्ध सफल होनेसे फ़ारसवालों के हौसले बढ़ गये और बादको कई वर्ष तक फ़ारसवालोंका डर एक काले बादलकी तरह भारत की पश्चिमी सीमा पर मंडराता रहा। यह बादल १८ वीं सदी के मध्य फूट पड़ा, जब फ़ारसके बादशाह नादिरशाह ने हिन्दुस्तान पर आक्रमण किया और दिल्ली को निर्दयतापूर्वक लूटा। वास्तवमें मुग़ल-साम्राज्यका पतन फ़ारसी तथा अफ़ग़ानी हमलोंके कारण शीघ्रतासे होने लगा। ये आक्रमण मुग़लोंकी सैनिक अयोग्यताके कारण

हुए और इस सैनिक अयोग्यताका प्रथम परिचय क़न्धार के आक्रमणोंमें मिलता है।

औरंगजेब की उत्तर-पश्चिमी सीमा-नीति

यद्यपि शाहजहां को उत्तर-पश्चिमी सीमा पर अपनी नीतिमें सफलता नहीं मिली, फिर भी सीमाके क़बीलों पर उसकी शान-शौकतका बड़ा दबाव रहा और उसके कालमें उन्होंने कोई उपद्रव नहीं किया, परन्तु जब शाहजहां के शासनके अन्तिम दिनोंमें राज्यकी बागडोर ढीली हो गयी, तब सीमाके ग़ैरज़िम्मेदार क़बीलोंने उपद्रव आरम्भ किये। औरंगजेब जब गद्दी पर बैठा, तब इन उपद्रवोंने उग्र रूप धारण किया। सन् १६६७ ई० में यूसुफ़ज़इयोंने अपने नेता भागू के नेतृत्वमें विद्रोह खड़ा कर दिया। इन्होंने सिन्ध नदीको पार करके हज़ारा ज़िले पर आक्रमण कर दिया और वहांके किसानोंसे लगान भी वसूल किया। उन्होंने मुग़ल-चौकियों पर हमला कर दिया, तब वहांके मुग़ल-अफ़सरोंने औरंगजेब को मददके लिए लिखा। सम्राट्ने तीन सेनापतियोंको फ़ौज लेकर भेजा। जल्दी ही यूसुफ़ज़इयोंका विद्रोह शान्त कर दिया गया और शाही सेनाने गांवोंको लूटकर उनको बड़ा नुक़सान पहुंचाया। कुछ समयके लिए विद्रोही शान्त हो गये। औरंगजेब ने राजा जसवन्तसिंह को जमरूद की चौकीकी रक्षा करनेके लिए भेजा।

यूसुफ़ज़इयों का विद्रोह दबा दिया गया

सन् १६७२ ई० में अफ़रीदियोंने अपने नेता एकमालखां के नेतृत्वमें विद्रोह कर दिया। उसने अपने आपको राजा घोषित कर दिया और अन्य क़बीलोंको साथ देनेको निमंत्रित किया। एक शाही सेनापतिने बिना सोचे-समझे विद्रोहको दबानेका प्रयत्न किया, परन्तु बुरी तरहसे हारा। दस हज़ार मुग़ल सैनिक खेत रहे और बहुतसे पकड़कर मध्य एशिया को गुलामोंकी तरह बेचनेके लिए भेज दिये गये। इसके बाद खटक नामके एक क़बीलेने विद्रोह कर दिया। खटकोंने एकमालखां से मिलकर एक मुग़ल-सेनाको लगभग काट ही डाला। खतरा इतना भयंकर हो गया था कि औरंगजेब को स्वयं सीमा-प्रान्तमें आना पड़ा। उसने अपने उद्देश्यकी सफलताके लिए बल तथा छल दोनोंसे ही काम लिया। बहुत-सी जातियोंको उसने नज़राना, पेंशन, जागीर आदिके लालचमें फंसा लिया और बाक़ी ज़िद्दी जातियोंको तलवारके जोरसे दबाया। फिर भी लड़ाई चलती रही और मुग़लोंको बड़ा नुक़सान उठाना पड़ा, परन्तु सब मिलाकर मुग़लोंने अपनी चौकियों तथा महत्वशाली सैनिक जगहों के कारण अपनी स्थितिको क़ायम रखा। सन् १६७५ ई० के खतम होते-होते विद्रोहियोंकी शक्ति बहुत कम कर दी गयी और सम्राट् दिल्ली जा सका। इस प्रकार औरंगजेब ने सीमा-प्रान्तमें अपना रोब-दाब क़ायम

अफ़रीदियों तथा खटकों ने मुग़ल सेना को हराया

औरंगजेब की रुपया खिलाने की तथा एक क़बीलेको दूसरे क़बीले से लड़ानेकी नीति

औरंगजेब की उत्तर-पश्चिमी सीमा-नीति के परिणाम

रखा। उसने क़बायली सरदारोंको रुपया देनेकी तथा एक क़बीलेको दूसरेसे लड़ानेकी नीतिको अपनाकर विद्रोहियोंको विद्रोहियों द्वारा ही दबाया।

औरंगजेब का सीमा-प्रान्तमें सैनिक संचालन कोई बड़े मार्केका नहीं रहा। बार-बार मुग़लोंको हार खानी पड़ी। बलवान् पहाड़ी क़बीले कोई तलवारसे नहीं, वरन् छल तथा रुपयेसे क़ाबूमें आये। इस अफ़ग़ानी युद्ध से शाही कोष खाली हो गया। साम्राज्यके सभी आर्थिक स्रोतोंसे अधिक-से-अधिक टैक्सके रूपमें सहायता ली गयी, परिणाम यह हुआ कि अन्य भागोंमें मुग़लोंकी योजनाएं कमजोर पड़ गयी। दक्खिनसे बढ़िया-बढ़िया सैनिक बुला लिए गये, जिसका नतीजा यह हुआ कि शिवाजी को अपनी शक्ति बढ़ानेमें सुविधा हो गई। इसके अतिरिक्त यह हुआ कि अफ़ग़ानी सिपाही राजपूतोंके विरुद्ध न भरती किये जा सके, यद्यपि अफ़ग़ानी सैनिक ही एक ऐसे सैनिक थे जो राजपूताना-जैसे बीहड़ तथा रेगिस्तानी जगहोंमें शाही सेनाको विजय दिला सकते थे।

१. औरंगजेब की धर्मान्ध नीतिके कारण हिन्दू असन्तुष्ट हो गये और उसे राजपूतों की सेवाएं प्राप्त न हो सकीं

२. गोलकुंडा और बीजापुर का नाश हो जानेसे मरहठोंको उन्नति करने का अवसर मिला

मुग़ल-साम्राज्यके पतनके कारण. मुग़ल-साम्राज्यके पतनके कारणोंको जाननेके लिए हमें औरंगजेब के कृत्यों पर दृष्टि डालनी होगी, क्योंकि उसी सम्राट्की भूलों और धर्मान्ध नीतिने साम्राज्यकी कड़ियोंको तोड़नेमें सर्वाधिक कार्य किया। उसने हिन्दुओं पर घृणास्पद कर—जजिया—लगाया और हिन्दू-मन्दिरोंको नष्ट-भ्रष्ट किया, इसलिए हिन्दुओंका सहयोग उसे न मिला। राजपूतोंकी भावनाओं पर कुठाराघात करके उसने उनके सहयोगसे भी अपनेको वंचित कर दिया; वह यह भूल गया कि इस वीर जातिकी सहायता और वफ़ादारी ही मुग़ल-साम्राज्यकी रीढ़ रही है। गोलकुंडा और बीजापुर—दक्षिणकी एक-मात्र मुस्लिम रियासतोंको जीतकर उसने मरहठोंको रोकनेवाला बांध तोड़ डाला। स्थानीय प्रतिद्वन्द्विता से मुक्त होकर मरहठे बड़ी ज़बरदस्त ताक़त बन गये और मुग़ल-साम्राज्यके कट्टर शत्रु हो गये। मरहठोंके विरुद्ध उसने काफ़ी लम्बे समय तक संघर्ष किया, परिणाम यह हुआ कि उसकी सेनाकी कमज़ोरीकी पोल सब पर खुल गयी, साम्राज्यकी अर्थ-व्यवस्था जर्जर हो गयी, अफ़सरोंमें भ्रष्टाचार फैला और शासन-प्रबन्ध गड़बड़ हो गया। इसके अलावा उन लड़ाइयोंके कारण वह बहुत दिनों तक राजधानीसे दूर रहा, और इस बातसे उसकी सरकारके मूलाधार पर ही आघात हुआ, क्योंकि औरंगजेब सन्देहशील प्रवृत्तिका होनेके कारण किसी पर विश्वास न करता था और हर चीज पर अपना निरीक्षण रखता था। इस प्रकार हम देखते हैं कि साम्राज्यके विनाशके चिह्न औरंगजेब

३. दक्षिणके लम्बे संघर्षके कारण मुग़ल-साम्राज्यकी प्रतिष्ठा को धक्का लगा और साम्राज्य की आर्थिक स्थिति शोचनीय हो गयी

के जीवन-कालमें ही स्पष्ट होने लगे थे, परन्तु अपने अथक परिश्रमके कारण वह उन पर किसी तरह क़ाबू बनाए रहा।

४. औरंगजेब के उत्तराधिकारियोंकी कमजोरीके कारण साम्राज्य बिखरने लगा और विदेशी आक्रमणकारियोंको प्रोत्साहन मिला

औरंगजेब की मृत्युके बाद उसकी दमनात्मक नीतिके दुष्परिणाम प्रकट होने लगे। उसके लड़के उसके नियंत्रणमें इतने दबे रहे कि वे अपनी शक्तियोंका विकास न कर पाए, उनकी आत्मा कुचल दी गयी इसलिए शासनकी योग्यता उनमें थी ही नहीं। बादशाह बनने पर अपने वजीरों या अन्य षड्यंत्रकारी सामन्तोंके हाथकी कठपुतली बननेके सिवाय उनसे दूसरी बातकी आशा ही कैसे की जा सकती थी। औरंगजेब का एक भी उत्तराधिकारी योग्य सिद्ध नहीं हुआ। इसका फल यह हुआ कि केन्द्रीय सरकार कमजोर हो गयी और फूट डालनेवाली शक्तियोंको प्रोत्साहन मिला। इस स्थितिका लाभ विदेशी आक्रमणकारियोंने उठाया। साम्राज्य के अच्छे-अच्छे प्रान्त दिल्ली के नियंत्रणसे स्वतंत्र होने लगे। मरहठोंने दक्षिणसे मुग़ल-साम्राज्यकी जड़ काटनी शुरू की, उधर नादिरशाह और अहमदशाह अब्दाली के आक्रमणोंने जर्जरित साम्राज्यको मरणान्तक चोट पहुंचायी।

५. मुग़लोंका चारित्रिक पतन

पतनके इन कारणोंमें एक कारण मुग़लोंका चारित्रिक पतन भी था, जो उनमें धन-ऐश्वर्य और विलासिता के कारण आ गया था। 'औरंगजेब के पूर्वज उत्तरकी ओरसे भारत पर लड़ाकू योद्धाओंके वेशमें टूटे, किन्तु जिन दरबारियोंके बीच औरंगजेब का लालन-पालन हुआ वे नाजुक तबियत के आदमी थे। साम्राज्यके संस्थापक जहीरउद्दीन बाबर ने अपने ३० साल के संघर्षमें राहमें पड़ी एक भी नदीको ऐसा न छोड़ा जिसे उसने तैरकर न पार किया हो, परन्तु नौजवान औरंगजेब के साथ रहनेवाले विलासी सामन्त पालकी पर चढ़कर लड़ाईके मैदानमें जाते थे।'

निरंकुश राजतंत्रके कुपरिणाम

अन्तिम बात यह कि मुग़लोंकी सरकार निरंकुश राजतंत्र थी और इस तरहकी सरकारोंका जनताका समर्थन नहीं मिला करता। इसकी सफलता मुख्यत: निरंकुश शासकको व्यक्तिगत योग्यता पर निर्भर रहती है। औरंगजेब के भी उत्तराधिकारी अशक्त और अयोग्य शासक सिद्ध हुए, वे न तो साम्राज्यकी पिछली बुराइयोंको दूर करनेमें समर्थ थे और न उनमें इतनी शक्ति थी कि वे ह्रासकी प्रक्रियाकी तीव्र गतिको कुछ समय के लिए रोक सकते।

मुग़लोंकी सरकार पूर्णतया निरंकुश थी

मुग़लोंका शासन. मुग़ल-सरकार पूर्णतया निरंकुश राजशाहीका नमूना थी। बादशाहके अधिकारों पर बहुत कम या बिलकुल नहीं नियंत्रण था, इसलिए बादशाहके व्यक्तिगत चरित्र पर बहुत कुछ शासनका स्वरूप निर्भर करता था। प्रारम्भिक मुग़ल-सम्राट् अपनी प्रजाके प्रति

उदार थे और उसकी तकलीफ़ोंकी देख-भाल रखते थे। हिन्दुओंके साथ भी उनका व्यवहार अच्छा था। उनको सेना या शासनके उत्तरदायित्व-पूर्ण उच्च पदों पर नियुक्त किया जाता था।

सम्राट् शासन-यंत्रका मुखिया था। सिद्धान्तसे उसकी शक्ति असीम थी, परन्तु असलमें उसे अपने मंत्रियोंकी सलाह माननी ही पड़ती थी। सभी प्रकारके सुधार तथा शासन-नीतियां राजाके द्वारा ही संचालित होती थीं। सम्राट् के नीचे एक वकील होता था, जो समस्त कार्योंकी देख-भाल करता था और सभी महत्त्वशाली बातोंमें उसकी सलाह ली जाती थी। अन्य बड़े अफ़सरोंमें दीवान या वज़ीर होता था, जो राजस्वके मामलोंमें आला अफ़सर माना जाता था। इसके बाद बख़्शी तथा सदर होते थे। बख़्शी वेतन बँटवाता था तथा सदर धार्मिक विभागोंकी देख-भाल करता था।

न्याय-पद्धति

सम्राट् न्यायका स्रोत माना जाता था और उसीके पास प्रत्येक मुक़दमे की अन्तिम अपील होती थी। उसके नीचे सदर होता था, जो बड़े-बड़े दीवानीके मुक़दमे फ़ैसल करता था और खासतौर से धार्मिक मुक़दमे उसी के पास आते थे। मुख्य क़ाज़ी न्यायका सबसे बड़ा अफ़सर होता था, अन्य न्यायाधिकारियोंमें मुफ्ती तथा मीर-ए-अदल होते थे। मुफ्ती क़ानून का अर्थ लगाता था और मीर-ए अदल फ़ैसला सुनाता था। उस कालमें कोई कचहरियां न होती थीं और न कोई लिखे हुए क़ानून। क़ुरान के अनुसार ही सब फ़ैसले होते थे और उसीके अनुसार सब समस्याओंका निर्णय होता था। हिन्दुओंके दीवानी मुक़दमे उन्हींके रीति-रिवाजोंके अनुसार फ़ैसल होते थे। क़ानून फ़ौजदारी सबके लिए एक था। सजाएं कठोर दी जाती थीं, परन्तु प्राण-दंड बग़ैर सम्राट्की अनुमतिके नहीं दिया जा सकता था।

प्रान्तीय सरकार

शासनकी सुविधाके लिए सारा साम्राज्य कई प्रान्तोंमें विभक्त था, जिन्हें 'सूबा' कहा जाता था। हर एक सूबे पर एक गवर्नर शासन करता था, जो «सूबादार» कहलाता था। जब तक सूबादार शाही टैक्स नियमित रूपसे समय पर चुकाता जाता था, तब तक केन्द्र की ओरसे उसके शासन में किसी तरहका हस्तक्षेप नहीं किया जाता था। अपने भीतरी मामलों में वह पूर्ण स्वतंत्र था। सूबादारके नीचे «दीवान» होता था, जिसका काम मालगुज़ारी इकट्ठा करना होता था; सूबेकी फ़ौजका सेनापति «फ़ौजदार» कहलाता था और प्रान्तमें शान्ति तथा व्यवस्था बनाए रखने की ज़िम्मेदारी उसकी समझी जाती थी। शहरोंमें 'क़ाज़ी' होते थे, जो दीवानीके मुक़दमोंका फ़ैसला करते थे। शहर-पुलिसके इंचार्जको 'कोतवाल' कहते थे।

जागीरदार और जमींदार

इनके अतिरिक्त और भी अफ़सर थे, जैसे जागीरदार और जमींदार, जिनसे राज्यका बहुत काम निकलता था। जागीरदार जागीरोंके मालिक होते थे, ये जागीरें उनको बादशाह ने या तो अनुग्रहपूर्वक दी थीं या उनकी कुछ सेवाओंके लिए पुरस्कार-स्वरूप। शाही मालगुज़ारी चुकाने और राज्य द्वारा उनके जिम्मे सौंपे हुए कार्योंके करनेके बाद वे बाक़ी मालगुज़ारीसे ऐश-आराम करते थे। जमींदार मालगुज़ारी इकट्ठा करने वाले वंशानुगत मध्यस्थ या बिचवैये थे। राज्यको मालगुज़ारी चुकानेके बाद वे बची हुई मालगुज़ारीका उपयोग निजी कार्योंमें करते थे। अपनी जागीरमें जागीरदार और जमींदार सर्वोच्च अधिकारी थे, वे अपने इलाक़ेमें शान्ति और व्यवस्था रखते थे। उन्हें फ़ौजदारीके मामलेमें फ़ैसला करने और अपनी पुलिस रखनेका भी अधिकार था।

दिल्ली के सुल्तानोंसे मुग़ल-बादशाहोंकी तुलना

मुग़लोंकी शासन-पद्धतिमें यद्यपि कई कमियां थीं, तो भी दिल्ली के सुल्तानोंके शासनसे वह अच्छी थी। दिल्ली के सुल्तानोंकी सरकार एक प्रकारसे सैनिक सरकार थी, जिसका उद्देश्य कुछ दिनोंके लिए किसी स्थान पर अधिकार किए रखना था, परन्तु मुग़ल-बादशाहोंने प्रायः योग्य अफ़सरोंको शासन-प्रबन्धके लिए नियुक्त किया और मालगुज़ारी वसूल करनेका सुधरा हुआ तरीक़ा इस्तेमाल किया। अकबर ने मनसबदारी-प्रथाको सुव्यवस्थित करके शासन और सैनिक कार्योंके लिए सुयोग्य अफ़सर सुलभ कर दिये। मुग़लोंके इस नागरिक शासनको देखकर ही उनके शासन-प्रबन्धको दिल्ली के सुल्तानोंके शासन-प्रबन्धसे बढ़कर कहा जा सकता है।

व्यापार और व्यवसायकी स्थिति

देशकी दशा. मुग़लोंके शासन-कालमें देश काफ़ी समृद्ध और सम्पन्न था। व्यापार और व्यवसाय उन्नति पर थे और भारतीय माल की विदेशोंमें अच्छी कीमत लगती थी। योरोपीय देशोंमें इसीलिए भारत के साथ व्यापार-सम्बन्ध स्थापित करनेकी होड़ लगी रहती थी। कम-से-कम हिन्दुस्तान अपनी ज़रूरतकी चीज़ोंके लिए किसी दूसरे देश का मोहताज न था। अकबर के कृषि-सुधारोंके कारण खेतीको प्रोत्साहन मिला और उसके शासन-कालमें अनाज अत्यधिक सस्ता था। जिन विदेशी यात्रियोंने मुग़ल-कालमें भारत की यात्रा की, उन्होंने भारतीय व्यापार, व्यवसाय और उस काल की उन्नत स्थितिकी बड़ी प्रशंसा की है।

जनताकी दशा

जनता की दशा दिल्लीके सुल्तानोंके ज़मानेसे काफ़ी अच्छी थी। औरंगज़ेब के शासन-कालको छोड़कर अन्य बादशाहोंके शासनमें उसको धार्मिक स्वतंत्रता थी और वह बिना किसी आतंक-भयके अपना व्यापार-व्यवसाय कर सकती थी। कभी-कभी और कुछ स्थानीय क्षेत्रोंमें जनता

को अवश्य प्रान्तीय गवर्नरों—सूबादारों—के अत्याचारोंका शिकार होना पड़ता था। मजदूर सुखी न थे। उनसे बेगार ली जाती थी। अमीर या कोई अफ़सर उनको पकड़कर अपना काम करवा लेता था और मन-मानी उनको मजदूरी देता था। फ्रांसीसी यात्री « बर्नियर » ने लिखा है कि उत्तरी भारत के प्रान्तोंके किसानों और कारीगरोंको क्रूर दमनका सामना करना पड़ता था, फलतः कृषिकी उपेक्षा हो रही थी। परन्तु ऐसी दशा सर्वत्र न थी। उसी यात्रीने बंगाल की उर्वरता और व्यापारकी जी भरकर प्रशंसा की है। हम यह कह सकते हैं कि भारतीय किसानोंकी स्थिति यदि ईर्षा करने योग्य न थी तो भी तत्कालीन योरोपीय किसानों की स्थितिसे काफ़ी अच्छी तो थी ही। योरोप के किसान उन दिनों गुलामोंसे बेहतर न थे, जिन पर सामन्तशाहीका निष्ठुर प्रहार हमेशा होता रहता था।

उस कालके प्रमुख इतिहासकार

कला और साहित्य. मुग़लोंने भारतीय संस्कृतिको सबसे बड़ी देन कला और साहित्य-क्षेत्रमें दी है। मुग़ल-सम्राट् विद्याके प्रेमी थे और साहित्यकारोंको वे उदारतापूर्वक प्रोत्साहन देते थे। यही कारण है कि उस कालमें कई अच्छे इतिहासकार हुए। प्रमुख इतिहासकारोंमे फ़िरिस्ता, अबुलफ़ज़ल और खाफ़ीखां का नाम लिया जा सकता है। इनमें से पहले दो तो अकबर के ज़मानेमें हुए थे और तीसरा औरंगज़ेब के शासन-काल में, जिसका सुन्दर इतिहास उसने लिखा है।

शानदार इमारतें

मुग़ल-कालके भवन स्थापत्य-कलाके उत्कृष्ट उदाहरण हैं और अभी तक उनकी सभ्य संसारमें प्रशंसा की जाती है। फ़तेहपुर सीकरी तो कलात्मक प्रतिभाका विचित्रालय है। ताजमहल को 'संगमरमर जड़ित स्वप्न' कहा जाता है। उसके विषयमें लोग प्रायः कह देते हैं कि 'देवदूतों ने उनका नक़शा बनाया और जौहरियोंने उसे मूर्त्त रूप दिया।' शाहजहां के शासन-कालमें कला और चित्रकारी भी अपनी चरम सीमा पर थी। मुग़ल-स्थापत्यमें एक निराली शान और भव्यता है, उसमें हिन्दू और मुसलमान शैलीका सम्मिश्रण है (विस्तृत विवरणके लिए अकबर और शाहजाहां के शासन-कालका वर्णन देखिए)।

सिक्खोंका उदय

नानक सिक्ख सम्प्रदायके संस्थापक थे

यदि सच कहा जाय तो सिक्ख कोई अलग जाति नहीं, वरन् हिन्दुओंका ही एक सम्प्रदाय है, जिसकी स्थापना गुरु नानक (१४६९-१५३९) ने की थी। 'सिक्ख' शब्दका अर्थ है शिष्य। नानक की शिक्षाएं कबीर की

शिक्षाओंसे मिलती-जुलती है। उन्होंने ईश्वर की एकतामें विश्वास प्रकट किया, जाति-पांतिके बन्धनोंको व्यर्थ माना और ब्राह्मणोंकी प्रभुता माननेसे इनकार कर दिया। नानक ने अधिकतर पंजाब के जाटोंको अपना शिष्य बनाया। प्रारम्भमें तो यह सम्प्रदाय विशुद्ध धार्मिक था, परन्तु मुसलमानोंके अत्याचारोंने इस जातिको सैनिक जातिके रूपमें परिणत कर दिया।

सन् १५७७ में सिक्खोंके चतुर्थ गुरु ने अमृतसरमें अकबर द्वारा वह जमीन प्राप्त की, जहां आजकल 'स्वर्णमन्दिर' गुरुद्वारा और तालाब स्थित हैं। तबसे यह सिक्खोंका प्रधान केन्द्र हो गया। पांचवें गुरु अर्जुनदेव ने सिक्खोंकी पवित्र धर्म-पुस्तक 'आदि ग्रन्थ' की रचना की। अर्जुन को जहांगीर ने मरवा डाला, क्योंकि उन्होंने विद्रोही खुसरो की सहायता करनेके कारण जहांगीर द्वारा लगाये जुर्मानेको चुकानेसे इनकार कर दिया था। छठे गुरु हरगोविन्दसिंह ने ही पहले-पहल इस धार्मिक सम्प्रदाय को सैनिक शिक्षा दी, ताकि मुसलमानोंके विरुद्ध वह अपनी रक्षा कर सकें। जहांगीर उन पर भी अप्रसन्न हो गया और फलस्वरूप बारह वर्ष तक उन्हें जेलमें सड़ना पड़ा। छूटने पर वे बराबर शाहजहां के अफ़सरों से लड़ते रहे। नवें गुरु तेग़बहादुर का औरंगजेब ने इस्लाम धर्म न स्वीकार करने पर मरवा डाला।

अर्जुनदेव पांचवें गुरु थे

गुरु गोविन्दसिंह सिक्खोंके दसवें और अन्तिम गुरु थे। उनकी संगठन-शक्ति अद्भुत थी। उन्होंने सिक्खोंको एक सैनिक भाई-चारेका रूप दे दिया। उन्होंने सिक्खोंके लिए रहन-सहनके कुछ नियम बनाये, जिनके कारण सिक्ख शेष जनतासे अलगसे दिखाई देने लगे। सिक्खोंको केश, कच्छ, कंघा, कड़ा और कृपाण हर समय रखना अनिवार्य था। कृपाण इस बातकी सूचक थी कि वे हर समय युद्धके लिए तैयार हैं। सिक्खोंको शराब और तम्बाकू पीनेकी मनाही है। इस प्रकार एक ऐसी जातिका निर्माण हो गया जो धार्मिक और सैनिक साथ-साथ है। उसको 'खालसा' या शुद्ध भी कहते हैं। अपने अनुयायियोंका सैनिक संगठन करके और उनमें एक नई भावना, नया जोश भरकर गुरु गोविन्दसिंह ने मुसलमानों के विरुद्ध संघर्ष छेड़ दिया, परन्तु औरंगजेब के जीते-जी उनको विशेष सफलता न मिली। औरंगजेब के मरनेके बाद गोविन्दसिंह ने उसके लड़के बहादुरशाह को गद्दी प्राप्त करनेमें सहायता पहुंचाई, जिसके बदलेमें बहादुरशाह ने गोविन्दसिंह को एक सैन्य दलका सेनापति बना दिया। जब वे दक्षिणमें सेनापतित्व कर रहे थे, तभी एक अफ़ग़ान ने सन् १७०८ में उनकी हत्या कर दी। उनकी मृत्युके बाद उनके अनुयायियोंने उनके

गुरु गोविन्दसिंह ने सिक्खों को पूर्णतया सैनिक राष्ट्र के रूपमें बदल दिया

बहादुरशाह के साथ उनका सम्बन्ध

उपदेशोंको 'गुरु ग्रन्थ साहब' के परिशिष्टके रूपमें संग्रह कर दिया।

बन्दा का प्रतिशोध

चूंकि गोविन्दसिंह ने मरते समय किसीको अपना उत्तराधिकारी नहीं नियुक्त किया था, इसलिए उनके स्थान पर दूसरा गुरु न हुआ, लेकिन उन्होंने अपनी सेनाका सेनापतित्व बन्दा नामक अपने एक शिष्यको सौंप दिया था। बन्दा का मुख्य उद्देश्य था सरहिन्द के शासकसे बदला चुकाना क्योंकि उसके सूबेदारने गुरु गोविन्दसिंह के दो नाबालिग बच्चोंको जीते-जी दीवारमें चुनवा दिया था। बन्दा ने सरहिन्द पर आक्रमण किया और मुसलमानों पर अकथ अत्याचार किये। इसके बाद उसने लाहौर से दिल्ली के बीचके इलाक़ेको रौंद डाला। बहादुरशाहने उसे दंड देनेके लिए कूच किया, परन्तु बन्दा अपनी सेना सहित पहाड़ोंमें जा छिपा। परन्तु फ़र्रुख़सियर के शासन-कालमें वह पुनः बाहर निकला और मुग़ल-साम्राज्यको बरबाद करने लगा। इस बार उसे पूरी तरह हरा दिया गया और उसे गिरफ़्तार करके निर्दयता-पूर्वक मार डाला गया। बन्दा के कई अनुयायी भी, जिन्होंने आत्मसमर्पण कर दिया था, मार डाले गये (१७१५)।

सिक्ख और अहमदशाह अब्दाली

सिक्खोंकी शक्ति कुछ समयके लिए कुचल दी गई, परन्तु उसे निर्मूल न किया जा सका। नादिरशाह के आक्रमणके बाद उत्तरी भारत में जो अराजकता और अव्यवस्था फैली, उसका उपयोग करके उन्होंने पंजाब पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। छोटी-छोटी टुकड़ियों—'मिसलों'—में बँटकर उन्होंने अधिकांश पंजाबको अपने अधिकारमें कर लिया। इससे उनका संघर्ष अहमदशाह अब्दाली से हो गया। सिक्खों और अफ़ग़ानोंमें कई युद्ध हुए, जिनमें बहुधा अफ़ग़ान ही विजयी हुए, परन्तु सिक्ख इस बुरी तरह बदला लेते थे कि अफ़ग़ानोंको अपनी जीतसे विशेष लाभ न हो पाता था। अहमदशाह अब्दाली की अन्तिम बड़ी विजय १७६१ ई० में हुई, परन्तु वह अपनी सफलताको स्थायी न रख सका। सिक्खोंने शीघ्र ही सरहिन्द और लाहौर के गवर्नरोंको मार भगाया। इसके पश्चात् 'मिसल' के नेताओंने सारे पंजाब को आपसमें बांट लिया। आगे चलकर रणजीतसिंह ने सतलज के पश्चिमके सभी 'मिसलों' को एक सर्वोच्च सत्ताके अन्तर्गत संगठित किया और सिक्ख-शक्तिको गौरव के उच्चतम शिखर पर पहुँचा दिया।

परिशिष्ट १

पूरक टिप्पणियां

अलबेरूनी. वह ख्वारिजम का रहनेवाला था। वहांसे वह दास या युद्ध-बन्दी बनाकर गज़नी लाया गया। वह सुलतान महमूद के साथ भारत आया और यहां उसने मन लगाकर संस्कृत साहित्य तथा भाषाका अध्ययन और अभ्यास किया। उसने हिन्दू दर्शन-शास्त्र और अन्य भारतीय विज्ञानों का गहरा अध्ययन किया। भगवद्गीता ने उसे विशेषतः प्रभावित किया। अपनी विद्वत्ता, सत्यान्वेषण और चिन्तन के कारण वह संसारके सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक व्यक्तियोंमें गिना जाता है। उसकी रुचिके विशिष्ट विषय ये थे—गणित, ज्योतिष, भौतिक-शास्त्र, रसायन-शास्त्र और धातु-विज्ञान। उसने 'भारतकी खोज' नामक एक ग्रन्थ लिखा है, जिसका बड़ा ऐतिहासिक महत्त्व है, क्योंकि उसमें तत्कालीन हिन्दुओंके इतिहास, रीति-रिवाज, रहन-सहन और चरित्र पर प्रामाणिक तथ्यपूर्ण सामग्री संगृहीत है।

मलिक अम्बर. जन्मका अबीसीनियन होते हुए भी वह अहमदनगर-राज्यका मंत्री बन गया था। उसने बहुत समय तक निज़ामशाही सरकार की डूबती नावको बचानेकी कोशिश की। वह कुशल योद्धाके साथ-साथ सुयोग्य शासक भी था। उसने दक्षिणमें मालगुज़ारीका एक नया तरीक़ा चलाया, शायद टोडरमल के अनुकरण पर, जिससे उसकी दक्षिणमें सर्वत्र प्रशंसा हुई। सन् १६१० में उसने अहमदनगर-राज्य पर पुनः क़ब्ज़ा कर लिया। स्मरण रहे, सन् १६०० में अकबर ने उसे चांदबीबी से छीन लिया था। अपनी कुशल मरहठा घुड़सवार सेनाके बल पर उसने कई बार जहांगीर की सेनाके छक्के छुड़ाये। अन्तमें जहांगीर ने अपने पुत्र खुर्रम को भेजा। उसने अम्बर को हराया और सन्धि करने पार बाध्य किया, परन्तु जब शाहज़ादा खुर्रम (शाहजहां) ने बादमें अपने पितासे बग़ावत की तब उसने इसका बदला चुका लिया। सन् १६२७ ई० में उसकी मृत्यु हो गयी। वह दक्षिणकी राजनीतिका एक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति था। जब तक वह जीवित रहा, मुग़लोंकी दक्षिणमें दाल न गली।

बर्नियर का लेख. इसने भारत की राजनीतिक तथा सामाजिक दशाका अच्छा विवरण दिया है। वह भारत में उस समय आया, जब शाहजहांके लड़कोंमें राजगद्दीके लिए विघातक गृहयुद्ध हो रहा था। उसने लिखा है कि जनता दाराशिकोह को बहुत प्यार करती थी और उसके मारे जाने पर लोगोंको बहुत शोक हुआ था। औरंगजेब के बारेमें वह लिखता है--'वह बहुमुखी और असाधारण प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति था। वह राजनीतिज्ञ तथा महान् शासक था।' वह दरबारकी शान-शौकत और व्यापार-व्यवसायकी उन्नतिको देखकर बहुत प्रभावित हुआ। उसने भारत को 'सोने और चांदी का पाताललोक' कहा है, जो अन्य देशोंकी बहुमूल्य धातुओंको निगल जाता है--इसका व्यापार इतना बढ़ा-चढ़ा था! वह लिखता है कि क़ानून अच्छे थे, परन्तु उनका यथोचित पालन नहीं होता था। न्यायाधीशोंमें भ्रष्टाचार प्रचलित था। यहांके कारीगर बड़े कुशल थे। स्थानीय गवर्नरों या सूबादारोंके अत्याचारोंसे लोग बहुत पीड़ित थे। मुग़ल-बादशाहके पास एक विशाल सेना थी, क्योंकि जैसा बर्नियर कहता है—'महान् मुग़ल-शासक अपनेको हिन्दुस्तान में परदेशी महसूस करता है। वह समझता है जैसे वह किसी शत्रु-देशमें रह रहा हो।' इस एक बातसे हमें मुग़ल-शासनके स्वरूपकी जानकारी हो जाती है—वह एक फ़ौजी शासनकी तरह था।

टैवर्नियर का लेख. शाहजहां के शासन-कालमें भारत की आर्थिक स्थितिके ज्ञानके लिए उसके संस्मरण बहुत उपयोगी हैं। भारत में यात्रा की स्थितिके सम्बन्धमें वह कहता है कि 'फ़्रांस या इटली में यात्राको आरामदेह बनानेके लिए जो कुछ किया गया है, उससे ज्यादा सुविधाएं यहांके यात्रियोंको मिलती हैं।' वह नागरिक शासनकी प्रशंसा करता है और कहता है कि शाहजहां अपनी प्रजा पर उसी तरह शासन करता है जिस तरह माता-पिता अपनी सन्तान पर करते हैं। उसने औरंगजेब की संयमित और साधुवत् जीवनचर्या का भी उल्लेख किया है।

परिशिष्ट २

प्रश्न-पत्र

Rajputana University : Intermediate Examination

1946

1. What is your estimate of Iltutmish? Can he rightly be called the greatest of the Slave kings?

2. What were the difficulties, internal and external, which Alauddin Khilji had to face during his reign, and how did he meet them?

3. In what respects can you compare Firoz Shah Tughlaq with (*a*) Akbar, and (*b*) Aurangzeb?

4. Comment briefly on any two of the following:

(*a*) 'The effects of the Arab conquest of Sind upon Muslim culture were profound and far-reaching.'

(*b*) 'Shahab-uddin Muhammad Ghori was the first Muslim who laid the foundations of permanent Muslim rule in India.'

(*c*) 'Balban was the saviour of the infant Muslim State in India.'

(*d*) 'For a handful millets, I would have lost the Empire of Hindustan' (Sher Shah).

5. Sketch the character of Humayun and show why he lost the Imperial throne.

6. What do you know about Akbar's Din-i-Ilahi? Smith says that it was a movement of his folly. Do you agree?

7. Discuss the Deccan policy of the Mughal Emperors.

8. Write a note on either Mughal Painting or Mughal Architecture.

1947

1. Give an estimate of the achievements of the Slave Dynasty.

2. (*a*) 'The foundations of the political system which Alauddin had built up were unsound.'

(*b*) 'The failure of Mohammad Tughlaq was largely due to circumstances over which he had no control.'

Do you agree with the above statements? Give reasons for your views.

3. 'An ideal ruler.' Is this a correct estimate of Firoz Tughlaq?

4. Give a brief account of the administrative institutions of the Bahamani Empire. What improvements were made by Mahmud Gawan?

5. How far do you consider Babar responsible for the misfortunes of his son, Humayun?

6. 'India attained the zenith of her prosperity in the reign of Shahjahan.' Do you accept this view?

7. Contrast the Rajput policy of Akbar with that of Aurangzeb. What were the results in each case?

8. Analyse the causes of the rise of the Maratha power

1948

1. Give an estimate of the personality and achievements of Mohammad Ghori.

2. Describe the 'mad' projects of Mohammad Tughlaq and indicate their effects on the Delhi Sultanate.

3. Explain the chief features of the Indo-Islamic culture as it was developed in the period of Delhi Sultanate.

4. How far did Akbar contribute to the building up of a national India?

5. Examine the claims of Shivajee to be regarded as a great figure in Indian history.

6. How far was Aurangzeb responsible for the downfall of the Mughal Empire.

1949

1. Describe the political condition of North India in the 12th century A. D and bring out the causes of the weakness of the Rajput kingdoms.

2. Sketch the career of Balban and discuss his idea of kingship and principles of government clearly.

3. What do you know of the administration of Firoz Tughlaq? How far was he responsible for the downfall of the Tughlaq Empire?

4. Discuss the main contribution of Akbar to the political and cultural life of India.

5. Give a critical account of Aurangzeb's Deccan policy and show how far he alone is responsible for the pursuit of it.

6. Write a critical note either on the growth of art and literature during the Mughal period, or the administration of the Mughal Empire.

1950 A

1. Compare Iltutmish and Balban.

2. Sketch the career of Alauddin Khilji and elucidate his idea of kingship, and principles of government and its weakness.

3. Describe the political condition of India on the eve of Babar's invasion of the country.

4. Explain: 'Jahangir's reign was a continuation of Akbar' *or* 'Sher Shah was the fore-runner of Akbar.'

5. Outline the struggles and achievements of Shivaji.

6. Write short notes on any three of the following:

(*a*) Dr. Gemelli Careri, (*b*) Ibn Batuta, (*c*) The Bhakti cult, (*d*) Sir Thomas Roe, (*e*) The Chauhans.

1950 S

1. Describe the Muslim invasion of Sind, and give an estimate of its effects.

2. Attempt a critical evaluation of Mohammad Bin Tughlaq's character and achievements.

3. Discuss what Akbar's dream was and how he realised it.

4. Give a brief account of social and cultural life under the Mughals.

5. Discuss the causes that contributed to the fall of Mughal power in India.

1951

1. Examine the statement that so far as India is concerned Mahmud of Ghazni was simply a bandit operating on a large scale.

2. Describe the 'mad projects' of Mohammad Tughlaq and show their effects on the Sultanate of Delhi.

3. It is said that Humayun never made 'fullest use' of his victories. Do you or do you not agree with this statement?

4. Outline the history of Mewar during the Mughal period.

5. 'The reign of Shah Jahan marks the climax of the Mughal dynasty and empire.' Discuss.

6. Write short notes on any three of the following:

(*a*) Qutubuddin Aibak, (*b*) The Bhakti cult, (*c*) The Bahmani kingdom, (*d*) Raja Todarmal.

1952

1. Sketch the career of Balban, and give an estimate of his personality and achievements.

2. 'The failure of Mohammad Tughlaq was largely due to circumstances over which he had no control.' Discuss.

3. Write a critical note on the part played by the kingdom of Vijayanagar in the political and cultural history of India.

4. 'Babar failed to build up an enduring political structure. He was merely a general and a soldier.' Is this a correct estimate of Babar's character and achievements?

5. 'Akbar has been called the greatest of the Mughal Emperors.' What are his claims to this title?

6. How far was the Deccan policy of Aurangzeb responsible for the downfall of the Mughal empire?

1953

1. Give an account of Arab invasion of Sindh and show that its effects on Muslim culture were profound and far-reaching.

2. 'He (Alauddin Khilji) possessed the qualities of a born military leader and a civil administrator.' Discuss.

3. Describe the circumstances which brought about the downfall of the Sultanate of Delhi.

4. 'Shershah unconsciously laid the foundations of Akbar's greatness.' Discuss.

5. Write a critical note on either the growth of art and literature during the Mughal period or the administration of the Mughal empire.

6. Give an estimate of the character and achievements of Shivaji. Is it justified to call him the founder of Maratha nation?

1954

1. Whom do you consider to be the greatest ruler of the Slave Dynasty and why? Give an estimate of his career.

2. Firoz Tughlaq is well known in history for his administrative reforms. Examine the statement and show the various reforms introduced by him.

3. Describe the social, economic and religious condition of the people in Medieval India.

4. 'Babar is one of the most interesting figures in the whole range of Medieval history. As a prince, warrior and scholar he is fit to take rank with the greatest rulers of Medieval times.' Discuss.

5. Give an account of Jahangir's rule and show why he has been described as 'mixture of opposites.'

6. Describe the causes of the downfall of the Mughal empire and show how far Aurangzeb was responsible for it.

1955

1. What causes and forces made for the advent and growth of Muslim power in India?

Or

Briefly illustrate by means of a sketch-map the history of the growth and spread of Muslim power in India between 1206 and 1318.

2. 'After my death it will be seen that none of them (my sons) will be found to be more worthy of the heir apparentship than my daughter.'

To what extent did Sultana Rezia fulfil these predictions of Sultan Iltutmish?

3. 'Sher shah anticipated Akbar in several respects but not in building up an Indian nation.' Explain.

4. Briefly describe the stages by which the Deccan was annexed to the Mughal Empire.

5. Why is Shahjahan's reign called the golden age of the Mughals?

6. Write notes on any *three* of the following:

(*a*) Pulkesin II, (*b*) Ajanta Paintings, (*c*) Prithviraj Raso, (*d*) Khilji Imperialism, (*e*) Bhakti cult, (*f*) Mansabdari, (*g*) Mahmud Gawan.

1956

1. 'Balban's career, full of strenuous activity, extending over a period of fourty years, is unique in the annals of medieval India.' Discuss.

2. 'The failure of Mohammad Tughlaq was largely due to circumstances over which he had no control.' Elucidate.

3. Discuss the causes of the downfall of the Sultanate of Delhi.

4. Was Humayun a failure? Illustrate your answer by referring to the events of his reign.

5. Contrast the Rajput policy of Akbar with that of Aurangzeb. What were the results in each case?

6. Give an estimate of the character and achievements of Shivaji.

U.P. Board Intermediate (Mediæval Period)

1950

१. अलाउद्दीन खिलजी के उद्देश्यों का वर्णन कीजिए और यह दिखलाइए कि कहां तक उन्हें पूरा करने मे समर्थ हुआ?

२. सोलहवीं शताब्दी में विजयनगर साम्राज्यके शासन की मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिए और उस साम्राज्य के पतन के कारणों की विवेचना कीजिए।

३. मराठों के साथ औरंगजेब का क्या सम्बन्ध था? इस बात पर प्रकाश डालिए कि वह उन्हें पराजित करने में क्यों असफल रहा?

1951

१. तुग़लक़ सल्तनत के पतन के कारण का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

२. शेरशाह के शासन का संक्षिप्त विवरण दीजिए। उसने क्या सुधार योजनाएं चलाईं, वर्णन कीजिए।

३. राष्ट्रीय वीर शिवाजी के जीवन वृत्तान्तों का क्रमानुसार वर्णन संक्षेप में कीजिए और उनकी वीरता दर्शाइए। मुग़ल बादशाही के अन्तत: पतन के पथ बनाने का कहां तक उनको श्रेय था दिखलाइए।

४. मुग़ल शासकों के समय में भारत के समाज और संस्कृति के विकास का संक्षिप्त विवरण दीजिये।

1952

१. मुहम्मद ग़ोरी के चरित्र तथा कृतियों का वर्णन कीजिए और बताइए कि उसका भारतीय इतिहास में क्या स्थान है ?

२. अलाउद्दीन खिलजी को मध्यकालीन भारत का महानतम् शासक क्यों कहा जाता है ?

३. "मुहम्मद तुग़लक़ एक पागल व्यक्ति था जिसकी योजनाओं से प्रजा को कष्ट पहुंचा और देशका विनाश हुआ", इस कथन का विवेचन कीजिए।

४. विजयनगर-साम्राज्य का संक्षेप में इतिहास लिखिए। उसकी शासन-व्यवस्था तथा सामाजिक जीवन के विषय में आप क्या जानते हैं ?

५. सन् १२०० ई० से १५२६ ई० तक के किसी एक प्रमुख धार्मिक तथा सामाजिक सुधारक के जीवन तथा उसकी शिक्षाओं का वर्णन कीजिए और बताइए कि उनका भारतीय समाज पर क्या प्रभाव पड़ा ?

६. अफ़ग़ान और मुग़लों में जो १५३० और १५४० के बीच भारतवर्ष के राज्य प्राप्त करने के लिए संघर्ष हुआ उसका हाल लिखिए और हुमायूं की असफलता के कारण बताइए।

७. अकबर की राजपूत नीति पर प्रकाश डालिए तथा उसके परिणामों की विवेचना कीजिए।

८. जहांगीर के समय में नूरजहां का तत्कालीन राजनीति पर क्या प्रभाव पड़ा ?

९. औरंगज़ेब की नीति मुग़ल साम्राज्य के पतन का कहां तक कारण हुई ?

१०. मुग़ल साम्राज्य के केन्द्रीय शासन-व्यवस्था की व्याख्या कीजिए।

११. मुग़ल साम्राज्य की भारत को क्या देन है ?

1953

१. मुहम्मद इब्न क़ासिम का सिन्ध पर सरलता से विजय प्राप्त कर लेने के क्या कारण थे ? उसके उत्तराधिकारी साम्राज्य विस्तार करने में क्यों असफल रहे ?

२. मुहम्मद ग़ोरी के आक्रमणों के समय भारत की राजनीतिक दशा कैसी थी ? राजपूतों के विरुद्ध उसकी विजय के क्या कारण थे ?

३. अलाउद्दीन खिलजी के आर्थिक सुधारों का वर्णन कीजिए। उनका जनता पर क्या प्रभाव पड़ा ?

४. तुग़लक साम्राज्य के पतन के क्या कारण थे ? फ़ीरोज़ तुग़लक़ को इसका उत्तरदायी कहां तक ठहराया जा सकता है ?

५. विजयनगर साम्राज्य की शासन व्यवस्था का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

६. भक्ति आन्दोलन से आप क्या समझते हैं? इसकी विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

७. भारत में बाबर की कृतियों का वर्णन कीजिए।

८. अकबर के समय की मालगुज़ारी प्रथा का विवरण लिखिए। उसका कृषकों की आर्थिक दशा पर क्या प्रभाव पड़ा?

९. क्या यह कहना सत्य है कि शाहजहां का समय मुग़ल काल का स्वर्ण युग है?

१०. औरंगज़ेब की दक्षिण-विजय का हाल लिखिए।

११. मुग़ल-कालीन भारत में साहित्य के विकास पर प्रकाश डालिए।

1954 A

१. महमूद गज़नवी के आक्रमणों में पूर्व भारत की राजनीतिक दशा का वर्णन कीजिए।

२. इल्तुतमिश के राज्यकाल की मुख्य घटनाओं का वर्णन संक्षेप में कीजिए। तेरहवीं सदी के शासकों में उसका क्या स्थान है?

३. फ़ीरोज़ तुग़लक़ के चरित्र तथा नीति की आलोचना कीजिए और बताइए कि वह तुग़लक़ साम्राज्य के पतन के लिए कहां तक उत्तरदायी है?

४. दक्षिण के इतिहास में विजयनगर राज्य का क्या महत्व है?

५. पानीपत के युद्ध में बाबर की विजय के क्या कारण थे?

1954 B

१. मध्यकालीन युग में कौन-कौन से प्रमुख धार्मिक तथा सामाजिक सुधारक हुए? उनमें से किसी एक की शिक्षाओं का वर्णन कीजिए और बताइए कि उनका भारतीय समाज पर क्या प्रभाव पड़ा?

२. शेरशाह सूरी को, अपना राज्याधिकार स्थापित करने में क्या-क्या कारण सहायक हुए, सविस्तार बतलाइए।

३. किन कारणों से, सम्राट् अकबर एक 'राष्ट्रीय' सम्राट् माना जाता है?

४. "मुग़ल" सम्राटों की "दक्षिणी" नीति ने मुग़ल साम्राज्य की नींव खोखली कर दी।" क्या आप इस कथन से सहमत हैं?

५. पेशवाओं के काल में मरहठा साम्राज्य के संगठव और शासन व्यवस्था में क्या-क्या परिवर्तन हुए? आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

६. मुग़ल राज्यकाल में भारतीय साहित्य या कला के विकास पर प्रकाश डालिए।

1955 A

१. मुहम्मद ग़ोरी के आक्रमणों के समय भारत की राजनैतिक दशा का वर्णन कीजिए ? राजपूतों के विरुद्ध उसकी सफलता के क्या कारण थे ?

२. कुतुबुद्दीन ऐबक की सफलताओं का स्पष्ट वर्णन कीजिए। भारतीय इतिहास में उसका क्या स्थान है ?

३. अलाउद्दीन खिलजी के दक्षिण विजय का इतिहास संक्षेप में लिखिए।

४. मोहम्मद बिन तुग़लक़ के चरित्र तथा उसकी नीति का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

५. भक्ति आन्दोलन के विषय में आप क्या जानते हैं। इस आन्दोलन का भारतवासियों के जीवन तथा धर्म पर क्या प्रभाव पड़ा ?

1955 B

१. इस कथन से आप कहां तक सहमत हैं कि "बाबर मुग़ल साम्राज्य का निर्माता था"? अपने विचारों की व्याख्या सविस्तार कीजिए।

२. शेरशाह के उत्तराधिकारी सूरी साम्राज्य को सुरक्षित रखने में क्यों असफल हुए ?

३. सविस्तार बताइए कि अकबर ने कला और विद्या के विकास के लिए क्या-क्या कार्य किए।

४. क्या यह कथन सत्य है कि शाहजहां का राज्यकाल मुग़ल साम्राज्य का स्वर्ण-युग है ? सविस्तार विवेचना कीजिए।

५. मराठा युद्ध में औरंगजेब की असफलता के कारण बताइए।

1956 A

१. दसवीं, ग्यारहवीं और बारहवीं शताब्दियों में भारत की सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था में कौन सी कमजोरियां थीं जिनके परिणामस्वरूप तुर्कों की शक्ति उत्तर भारत में स्थापित हो गई ?

२. उन परिस्थितियों का वर्णन कीजिए जिनका सामना अलाउद्दीन खिलजी को करना पड़ा। उनका उसके शासन पर क्या प्रभाव पड़ा ?

३. "तुग़लक़-वंश के विनाश का मुख्य कारण सुलतान फ़ीरोज का निर्बल शासन था।" इस मत की आलोचना कीजिए।

४. पंद्रहवीं और सोलहवीं शताब्दियों में जो धार्मिक सुधारों की लहर देश में फैली उसका संक्षिप्त वर्णन कीजिए। किन्हीं दो प्रमुख सुधारकों के कार्य पर विशेष प्रकाश डालिए।

५. निम्नलिखित विषयों में से किन्हीं चार पर विस्तृत टिप्पणी लिखिए:—

(अ) देवगिरी
(आ) ख्वाजा महमूद गावान,
(इ) जियाउद्दीन बरनी,
(ई) कुतुब मीनार,
(उ) अमीर खुसरो,
(ऊ) वास्कोडीगामा।

1956 B

१. बाबर ने अपनी आत्मकथा-तुज्के बाबरी में भारत की तत्कालीन सामाजिक और राजनैतिक दशाओं का क्या विवरण दिया है? सविस्तार बताइए।

२. शेरशाह सूरी के शासन प्रबन्ध के गुण और दोष बताइये।

३. "दीन इलाही अकबर की बुद्धिमानी का सूचक है"। आलोचना कीजिए।

४. "मुग़ल सम्राटों की दक्षिण नीति उनके साम्राज्यों के पतन का मुख्य कारण बन गई"। आप इस कथन को कहां तक ठीक समझते हैं?

५. छत्रपति शिवाजी किन कारणों से अपना स्वतंत्र राज्य स्थापित करने में सफल हुए।

Patna University Intermediate Examination
Mediæval Period

1946 A

1. How far were the administration and reforms of Sher Shah modern in character?

2. Mark the stages in the expansions of the Mughal Empire during the reign of Akbar.

3. 'The biography of Shah Jahan has slurred over his many crimes and exaggerated such virtues as he possessed.' Examine this statement and attempt a true estimate of his character and achievements.

4. What were the motives of the Peshwas in contesting the sovereignty of India under the later Mughals and by what methods did they try to achieve it?

1946 S

1. How far was Humayun responsible for his misfortunes and how far was he the victim of circumstances?

2. How far did the Mughals deal with the North-western question?

3. 'Shivaji was the last greatest constructive genius and nation-builder that the Hindu race has ever produced.' Discuss.

4. Trace the relation between the Mughals and the Sikhs under their Gurus.

1947 A

1. Show how the second battle of Panipat supplemented what had begun with the first.

2. Describe the revenue administration of the Mughal empire.

3. Give a critical estimate of Aurangzeb as a ruler.

4. Briefly describe the Deccan policy of the great Mughals.

5. Review the political condition of India on the eve of Nadir's invasion and discuss its effects.

1947 S

1. Review the political condition of India at the time of Babar's invasion and indicate its effects.

2. 'In fact Akbar's reign is more a period of Hindu revival than of Muslim advance.' Discuss.

3. Trace the relations of the great Mughals with the Marathas.

4. Examine the statement that the reign of Shah Jahan marks the climax of Mughal dynasty and empire.

5. Account for the rapid dismemberment of the Mughal Empire after the death of Aurangzeb.

1948 A

1. What characteristics of the modern age do you find at the beginning of the sixteenth century?

2. 'Sher Shah was not only a great conqueror but he also showed greater qualities as an administrator.' Elucidate.

3. Depict India as seen through the eyes of foreign travellers in the Mughal period.

4. In what ways did Shah Jahan attempt to give effect to his ambitious schemes of expansion?

5. Wherein lies the constructive statesmanship of Shivaji?

1948 S

1. 'It was no easy throne that Babar left to his eldest son nor was Humayun capable enough to fill it.' Discuss.

2. Review critically the religious policy of Akbar. Show that it was guided by political considerations.

3. What were the chief features of the Mughal administration? Would you call it a mere arbitrary tyranny?

4. Give a critical estimate of the character of Jahangir. How far did he follow his father in the domestic and foreign policy?

5. Write a short history of the relations of Mughals with the Sikhs.

1949 A

1. Explain the reasons of the Afghan revival and the Mughal restoration.

2. Discuss the social and economic reforms introduced by Akbar.

3. Describe the career and character of Nur Jahan. Was her influence all for the good of the Empire?

4. Review briefly the Deccan policy of the great Mughal in the 17th century.

5. 'One prominent factor in the history of India during the 18th century was the revival of the Hindus.' Elucidate.

1949 S

1. How far can Babar be regarded as the real founder of the Mughal Empire in India?

2. 'Kingship knows no kinship.' Illustrate this maxim from Mughal history.

3. To what extent was Aurangzeb responsible for the downfall of the Mughal Empire?

4. Describe the salient features of the military organisation of the Mughals.

5. How far did the foreign invasions of the 18th century affect the fortunes of India?

1950 A

1. Discuss the administrative reforms of Sher Shah and show how far they were modern in character.

2. Review the Rajput policy of the Mughals.

3. Examine the statement that the reign of Shah Jahan marks the climax of the Mughal Empire.

4. Indicate the sources for the study of the Mughal administration and describe briefly the Mughal revenue system.

Rajputana University B.A. Examination
Mediæval Period

1950

1. 'Iltutmish is undoubtedly the real founder of the Slave Dynasty' (Ishwari Prasad). Elucidate.

2. 'Mohammad Tughlaq's reign was a tragedy of high intentions self-defeated' (Lanepoole). Examine the truth of this statement.

3. Give a critical account of the character and achievements of Sikandar Lodi and show how he may be regarded as the king of the Lodi dynasty.

4. 'The impact of Hiduism and Islam could not fail to produce important consequences' (Ishwari Prasad). Elucidate with special reference to religious movements of the mediæval times.

5. What were the main elements of power in the politics of India on the eve of the establishment of Mughal Empire by Babar? Discuss their relative importance.

6. 'Akbar did not shrink from the great task of attempting to found a new society in India neither Hindu nor Muslim merely, but Indian' (Sharma). Explain how Akbar sought to realise this dream.

7. 'Jahangir ever seemed unto me to be a compound of extremes' (Terry). Is this the correct estimate of Jahangir?

8. Discuss the Central Asian policy of the Mughal Empire.

9. Discuss Aurangzeb's responsibility for the downfall of the Mughal Empire.

10. 'The administrative agency in the provinces of the Mughal Empire was an exact miniature of that of the central government' (Sarkar). Explain bringing out the duties of important provincial officials.

1951

1. Attempt an estimate of Mahmud of Ghazni. Did he leave any lasting effects on India by his invasions?

2. 'The policy of Firoz is a curious blending of good and evil' (Ishwari Prasad). Elucidate.

3. Explain the causes for the frequent dynastic changes during the Pre-Mughal period.

4. 'Alauddin was a typical despot.' Explain.

5. 'The Afghans like a king but detest a master.' Can this dictum be applied to Ibrahim Lodi?

6. 'It was no easy throne that Babar left to his son nor was Humayun capable enough to fill it' (Lanepoole). Elucidate.

7. 'When Akbar died he left to his son a settled empire and a people attached to the dynasty' (Panikkar). Explain how Akbar was able to achieve it?

8. 'The reign of Shah Jahan was an epoch of grandest not altogether unmixed with symptoms sf decay' (Sharma). Elucidate.

9. Sketch the relations of the Sikhs with the Mughal Empire in the 17th century.

10. 'The aim of the government was extremely limited, materialistic, almost sordid' (Sarkar). Explain bringing out clearly the nature and functions of the Mughal State in India.

1952 A

1. Write critical or explanatory notes on any *four* of the following –

(*a*) 'Not so fanatical as Mahmud, Muhammad was certainly more *political* than his predecessor.' (*Ishwari Pd.*)

(*b*) 'Alauddin did much to relieve human want and misery by his *control of the market*, and, like Napoleon, found in cheap bread the supreme talisman of statesmanship.' (*Ishwari Pd*)

(*c*) 'Sultan Ghiyas-uddin Tughlaq's death was the result of *pre-meditation* and *conspiracy* and not of accident.' (*Ishwari Pd.*)

(*d*) The battle of Talikota (1565 A.D.) is one of the most *decisive* battles in Indian history.' (*Ishwari Pd.*)

(*e*) 'The Empire of Hindusthan is extensive, populous and rich.... When I conquered that country *five* Mussalman Kings and *two* pagans exercised royal authority.' (*Memoirs of Babar*).

(*f*) 'I had nearly lost the Empire of Hindusthan for a handful of *bajra* (millet).' (*Sher Shah.*)

(*g*) 'Din-I-Ilahi was a monument of Akbar's folly and not of his wisdom.' (*V. Smith*).

(*h*) 'Khusru is one of the most striking and pathetic figures of Indian history.' (*V. Smith*).

(*i*) 'Dara was not deficient in good qualities; he was courteous in conversation, quick in repartee, polite and extremely liberal.' (*Bernier*).

2. 'A great warrior, King and statesman, who saved the infant Muslim State from extinction at a critical time, Balban will ever remain a great figure in mediæval Indian history.' (*Ishwari Pd.*) Elucidate.

3. 'The conquest of the multitudinous races of Hindusthan, accomplished with such marvellous ease by the Mohammadans, requires an explanation.' (*Ishwari Pd.*)

Explain critically the social, political and military weaknesses of the Hindus and analyse the causes of Muslim political ascendancy in India.

4. Trace briefly the history of Mongol invasions of India (from 1222 to 1526 A.D.) and describe their effects on the policy of the Sultans of Delhi.

5. 'That he (Muhammad Tughlaq) was mad is a view of which contemporaries give no hint; that he was a visionary, his many-sided practical and vigorous character forbids us to believe.' (*Gardner Brown.*) Illustrate the truth of this statement with reference to his character and administrative reforms.

6. 'The Vijayanagar empire was the outcome of the revolutionary movement which had begun in the Deccan for the expulsion of the Muhammadans from that country.' Discuss critically the origin of the Vijayanagar empire and account for its downfall.

1952 B

1. 'A soldier of fortune, and *no architect of Empire*, Babar yet laid the first stone of the splendid fabric, which his grandson Akbar achieved.' (*Lanepoole*). Explain and discuss.

2. 'Sher Shah may justly dispute with Akbar the claim of being the first who attempted to build up an Indian nation.' (*Qanungo*). Critically examine the truth of this statement in the light of his character and administrative reforms.

3. 'There could be no Indian empire without the Rajputs, no social or political synthesis without their intelligent and active co-operation.' (*Ishwari Prasad*). Contrast the Rajput policy of

Akbar with that of Aurangzeb and account for the progressive deterioration of the Mughal-Rajput relation under the latter.

4. 'Shivaji was a robber chief and his state was a robber state.' (*V. Smith*).

'Shivaji was the last great constructive genius and nation builder that the Hindu race has produced.' (*Sarkar*). Comment on the above statements and make a correct estimate of Shivaji's character and achievements.

5. 'The Mughal were great builders....and the buildings which they erected in all parts of the country bear testimony to their magnificent architectural tastes.' Analyse the chief characteristics of the Mughal architecture with special reference to the buildings of Akbar and Shah Jahan. Illustrate your answer by concrete examples.

6. Indicate the historical importance of the following:

(*a*) Ranathambhor. (*b*) Sargadwari. (*c*) Rana Kumbha. (*d*) Mirza Raja Jai Singh. (*e*) Malik Ambar. (*f*) Abul Fazl.

1953 A

1. Write critical notes on any three of the following:

(*a*) 'Some modern writers are of opinion that the story of Padmini is a myth.'—(Ishwari Prasad).

(*b*) 'Rana Pratap's patriotism was his offence.' (V. Smith).

(*c*) 'The fall of Bairam Khan is one of the most interesting episodes...of Akbar's reign.' (Ishwari Prasad).

(*d*) 'The murder of Guru Arjun was the punishment...... inflicted as a penalty for high treason and contumacy and was not primarily an act of religious persecution.' (V. Smith).

(*e*) 'The treaty of Purandar was a great diplomatic triumph for Mirza Raja Jai Singh.' (Ishwari Prasad).

(*f*) 'The circumstances of Sher Afghan's death are of a highly suspicious nature.' (Ishwari Prasad).

(*g*) 'Durga Das's name will ever rank among the immortals of Rajput history.' (Ishwari Prasad).

2. 'The name of Mahmud is still one of the most celebrated in Asia while that of Shahabuddin Ghori is scarcely known beyond the countries over which he ruled.' (Elphinstone). Elucidate.

3. 'The administrative measures of Firoz Tughluq seriously undermined the stability of the State.' Justify or criticize this view. Adduce arguments in support of your answer.

4. Give a critical estimate of Sikandar Lodi's character and achievements and show how he may be regarded as 'the greatest of the three kings of his House'.

5. 'The three centuries of Muslim rule (1206-1526) witnessed the rise and fall of five dynasties.' Discuss with examples the factors which contributed to such rapid succession of dynasties.

6. 'The advent of Islam wrought great changes in the religious and social outlook of the people of India.' Elucidate.

1953 B

1. 'Humayun's worst enemy was himself.' In the light of this remark make a critical estimate of Humayun's character and achievements.

2. 'Akbar did not shrink from the great task of attempting to found a new society in India, neither Hindu nor Muslim merely, but Indian.' (Sharma). Explain how far Akbar sought to realise this dream.

3. Describe briefly the relation of the Mughals with the Europeans. What light do the European travellers throw on the social, political and economic condition of the Mughal Empire in the seventeenth century?

4. 'The quadrangular contest between Dara, Aurangzeb, Shuja and Murad, was really between Liberalism, Bigotry, Indulgence and Recklessness.' (Sarkar and Datt). Explain and discuss the causes of Dara's failure and Aurangzeb's success in this struggle.

5. 'The administrative agency in the provinces of the Mughal Empire was an exact miniature of that of the Central Government' (Sarkar). Explain and discuss the important Central and Provincial officials.

1954 A

1. Critically examine any *three* of the following:

(*a*) 'Iltutmish is undoubtedly the real founder of the slave dynasty.' (*Ishwari Prasad*).

(*b*) 'The Brahmanical origin of the Bahman dynasty is nothing more than a myth.' (*Ishwari Prasad*).

(*c*) 'The basic principle of the Muslim state in the fourteenth century was force.' (*Ishwari Prasad*).

(*d*) 'Sher Shah was the apostle of Indian unity.'

(*e*) 'Nur Jahan's influence was not all for the good of the State.' (*Ishwari Prasad*).

(*f*) 'The Sikh religion, founded by Guru Nanak (A D. 1469-1539), was the outcome of the impact of Islam on Hinduism.' (*Sharma*).

(*g*) 'Shivaji was a great warrior and nation-builder.'

1954 B

1. 'He never did anything that was not replete with wisdom and sense.'

He might be said to wear a hundred doctors' hoods under his crown.' (*Amir Khusrau*).

Do you agree with this estimate of Ghiyas-ud-din Tughlaq's work and achievement? Discuss.

2. Examine the contribution of Alauddin Khilji and Mohammad Tughlaq to the ideals of a secular state. Do you agree with the view that the influence of the *mullahs* and *muftis* proved disastrous to the solidarity of the Muslim State in India?

3. 'As a founder of new dynasty and the restorer of the waning prestige of the Delhi monarchy, Bahlol deserves a high place in history.' (*Ishwari Prasad*).

Critically examine the work and achievement of Bahlol Lodi.

4. Describe the Rajput struggle for independence during the period of the Delhi Sultanate.

5. Describe the slave system as it existed under the Delhi Sultans. How did it influence the politics of the times?

1954 C

1. 'Babar is perhaps the most captivating personality in oriental history. He is the link between Central Asia and India, between predatory hordes and imperial government, between Timur and Akbar.'

Amplify the statement with reference to the work of Babar.

2. 'He now is the spiritual guide of the nation and sees in the performance of this duty a means of pleasing God. He has now opened the gate that leads to the right path, and satisfies the thirst of all that wander about panting for truth.' (*Ain*).

In the light of the above, examine the religious views of Akbar. Do you agree with Smith's observations that *Din-I-Ilahi* was a monument of Akbar's folly.

3. Examine the Deccan policy of Jahangir and Shah Jahan. How far was it successfull?

4. Describe the Feudal System as it existed under the Mughals. Discuss its merits and demerits.

5. Carefully examine the causes and consequences of the Rajput War in the reign of Aurangzeb. Why did Aurangzeb fail where Akbar succeeded?

1955 A

1. Critically examine any *three* of the following:—

(*a*) 'Slavery in the Islamic world was just a status not a stigma.' (*Nilkanta Sastri*).

(*b*) 'The government of the Lodis was a human compromise and not a divine dispensation.'

(*c*) 'The establishment of Vijayanagar meant the restoration of Hindu religion and *Dharma*.'—(*Sirinivaschari*.)

(*d*) 'Had there been no Udai Singh between me and Rana Sanga, the Turks could not have become masters of India.' (*Maharana Pratap*).

(*e*) 'Careful to keep himself from selfish ambition, Todar Mal devoted himself to the service of the state, and earned an everlasting fame.' (*Abul Fazl*).

(*f*) 'The reign of Jahangir saw the fruition of the Empire.' (*Sharma*).

(*g*) 'Shah Jahan was neither a great man nor a great ruler.' (*Sinha and Banerji*).

1955 B

1. Compare the work of Iltutmish and Balban as rulers and statesmen.

2. Examine the methods adopted by Alaud-Din Khilji and Sher Shah for achieving the unity and stability of the State.

3. 'The undertaking of administrative responsibility of the Deccan by the Delhi Sultans and the Mughal Emperors proved to be a costly mistake on the part of both. Discuss.

4. 'The successors of Firoz Tughlaq were small men who could not govern a large Empire and absorb the shock of Timur's invasion.'

Critically describe the causes of the downfall of the Delhi Sultanate in the light of this statement.

5. 'The Muslim State in India, as elsewhere, was a theocracy. The King was Caesar and Pope combined in one....' (*Ishwari Prasad*).

Describe the nature of kingship and the organisation of government under the Delhi Sultans.

1955 C

1. 'The Rajputana policies of Babar and Sher Shah proved to be really as futile as the earlier adventures of Alaud-Din Khilji in the same land .....' Discuss.

2. Humayun's end was 'of a piece with his character.... He tumbled through life...and he tumbled out of it.' (*Lanepoole*).

Examine the statement with reference to the events of the reign of Humayun.

3. 'Heresy to the heretic and religion to the orthodox'. But the dust of the rose petal belongs to the heart of the perfume seller.—(*Abul Fazl.*)

Examine the efforts of Akbar to establish a rational and national state in India. How far was he successful in his objectives?

4. Describe the evolution of *Khalsa* as a militant group mentioning in particular the contribution of Guru Gobind Singh to the solidarity of the Sikhs and Hindus.

5. 'Aurangzeb's life had been a vast failure, indeed, but he had failed grandly ..the grant Puritan of India was of such stuff as wins the martyr's crown.'—(*Lanepoole.*)

Critically examine the causes of the failure of Aurangzeb's mission and policies.

1956 A

1. What were the major political problems facing the Turkish ruler in the thirteenth century? Explain how Iltutmish or Balban dealt with them.

2. Explain briefly (a) the revenue policy (b) regulations for the control of the market of Sultan Alauddin Khilji. What measure of success attended his efforts?

3. In what ways did the Indian and Islamic cultures influence each other after the advent of Islam in India?

4. Describe the personality of Sultan Mohammad Tughlaq and briefly discuss the statement that he failed due to circumstances beyond his control.

5. Explain the causes of the fall of the Sultanate of Delhi.

1956 B

1. Trace on the sketch-map supplied to you the political condition of India in 1525 and 1605 and account for the change.

2. Analyse the causes of Shivaji's success in establishing a Maratha state.

3. What was the Mansabdari System? How did it work and how long did it last?

4. What progress was made in the realm of art and literature during the Mughal age?

5. Give a pen-picture of the royal court and general conditions prevalent in India during the reign of Jahangir as given by the foreigners.

6. Amplify or discuss any two of the following statements:—

(a) 'Aurangzeb's life had been a vast failure indeed, but he failed grandly.'

(b) 'The Muslim state in India was a theocracy. The King was Caesar and Pope combined in one.... ....'

(c) 'I had almost lost the throne of Hindusthan for a handful of millets (bajra).'

(d) 'The Sultan among the Lodis was merely a Primus Inter Pares' (chief among equals).'

(e) 'Firoz was Akbar of the fourteenth century.'

Lucknow University B. A. Pass

1950

१. सल्तनत काल में अलाउद्दीन खिलजी के शासन तथा आर्थिक सुधारों का क्या महत्त्व है?

२. शेरशाह के रचनात्मक सुधारों की व्याख्या करो।

३. राष्ट्र की नींवको सुदृढ़ बनानेमें अकबर ने किस नीति का प्रयोग किया, तथा वह अपने उद्देश्यों में कहां तक सफल हुआ?

४. शिवाजी की राजनैतिक योजना का वर्णन करो, और इसकी सफलता के कारण का उल्लेख करो।

५. मुग़ल साम्राज्य का पतन क्यों हुआ?

1951

१. "इल्तुतमिश गुलाम वंश का सर्वोत्तम शासक था।" विवेचना कीजिए।

२. "फ़िरोज़ तुग़लक़ अच्छा शासक था; किन्तु उच्चकोटिका शासक नहीं था।" विवेचना कीजिए।

३. "जहांगीर अकबर का संक्षिप्त संस्करण था।" आप इस कथन से कहां तक सहमत हैं?

४. शाहजहां के पुत्रों के उत्तराधिकार युद्ध के क्या कारण थे? राजनैतिक दृष्टिकोण से उसका क्या महत्व था?

५. राजपूत-सम्बन्धी-नीति में औरंगजेब का अपने पूर्वजों की नीति से क्या प्रभेद था? उसके क्या परिणाम हुए?

1952

१. यदि आपकी रुचि पर यह बात छोड़ दी जाती, तो आप अलाउद्दीन खिलजी और मुहम्मद तुग़लक़ इन दोनों में से किसके शासनकालमें रहना पसन्द करते?

२. "ऐक्य तथा सबके प्रति शान्ति का व्यवहार—यही अकबर के शासन के मूल सिद्धान्त थे।" विवेचना कीजिए।

३. क्या शिवाजी प्रबुद्ध स्वेछाचारी शासक कहे जा सकते हैं?

1953

१. उन राजनैतिक और सामाजिक कारणोंकी विवेचना कीजिए जिनसे बारहवीं और तेरहवीं शताब्दियों में भारत पर तुर्कों का क़ब्ज़ा हो सका।

२. "फ़ीरोज शाह तुग़लक़ के शासनकालमें रैयत और अमीर संतुष्ट थी। दिल्ली का सारा राज्य दैवी समृद्धियों से परिपूर्ण था।" (अफ़ीफ़) यह स्थिति किन उपायों से पैदा हुई थी?

३. लोदी वंश के पतन और मुग़ल शासन की स्थापना के कारणों का उल्लेख कीजिए।

४. अकबर ने किन उपायों द्वारा संयुक्त हिन्दुस्तानी राष्ट्रीयता क़ायम करनेका प्रयत्न किया ? उसके सामाजिक सुधारोंका विशेष रूपसे उल्लेख कीजिए।

५. विजयनगर साम्राज्यके इतिहास का आलोचनात्मक वर्णन कीजिए। इसके पतनके क्या कारण थे ?

६. शिवाजी के उद्देशों की आलोचना कीजिए और उन स्थितियोंकी विवेचना कीजिए जिनके कारण स्वतंत्र महाराष्ट्र शासन क़ायम हो सका।

1954

१. "मुहम्मद तुग़लक़ के शासन की असफलता का वास्तविक कारण उसका अपना चरित्र था।" क्या आप इस कथन से सहमत हैं ?

२. सल्तनत कालमें राजवंशोंके शीघ्र परिवर्तन के क्या कारण थे ?

३. क्या शेरशाह और अकबर "प्रबुद्ध स्वेच्छाचारी शासक" कहे जा सकते हैं? उनकी शासन सम्बन्धी नीति की तुलना कीजिए।

४. किन बातों के कारण मुग़ल शासन महत्त्वपूर्ण समझा जाता है ?

५. मुग़लकालीन भारतमें साहित्य तथा वास्तुकलाकी उन्नतिका वर्णन कीजिए।

1955

१. उन कारणों की समीक्षा कीजिए जिन से बारहवीं और तेरहवीं शताब्दियोंमें भारत पर तुर्कों का अधिकार हो सका।

२. अलाउद्दीन खिलजी की शासन-सम्बन्धी नीति की आलोचनात्मक रूपरेखा दीजिए।

३ "अकबर मुग़ल-साम्राज्य का वास्तविक निर्माता था।" क्या आप इस कथन से सहमत हैं ?

४. शाहजहां और औरंगजेब की दक्षिण-प्रदेश सम्बन्धी नीति की तुलना कीजिए।

५. मुग़ल राजनीति और शासन में वे कौन से दोष थे जिनके कारण मुग़ल-साम्राज्य चिरस्थायी न रह सका।

1956

१. दसवीं, ग्यारहवीं और बारहवीं शताब्दियों में भारत की सामाजिक व्यवस्था

में कौन सी कमजोरियां थीं जिसके परिणामस्वरूप तुर्कों की शक्ति उत्तर भारत स्थापित हो गई?

२. उन परिस्थितियों का वर्णन कीजिए जिनका सामना अलाउद्दीन खिल को करना पड़ा। उनका उसके शासन पर क्या प्रभाव पड़ा?

३. "तुग़लक़ वंश के विनाश का मुख्य कारण सुल्तान फ़ीरोज़ का निर्बल शा था।" इस मत की आलोचना कीजिए।

४. पंद्रहवीं और सोलहवीं शताब्दियों में जो धार्मिक सुधारों की लहर देश फैली उसका संक्षिप्त वर्णन कीजिए। किन्हीं दो प्रमुख सुधारकों के कार्य पर वि प्रकाश डालिए।

५. निम्नलिखित विषयों में से किन्हीं चार पर विस्तृत टिप्पणी लिखिए:—

(अ) देवगिरी
(आ) ख्वाजा महमूद गवान,
(इ) जियाउद्दीन बरनी,
(ई) कुतुब मीनार,
(उ) अमीर खुसरो,
(ऊ) वास्कोडीगामा।